भगवान रो रहा है

भगवान रो रहा है

विमल मित्र
रूपान्तर
सुशील गुप्ता

अपनी बात

इस युग का यही सच है। 'भगवान रो रहा है' का सच, आज घर-घर, लोग-बाग की जिन्दगी में उतर आया है। होश की पहली घूंट भरते हुए, मुझे भी प्यार और ईमानदारी ही जिन्दगी के सबसे बड़े सच लगे थे, लेकिन तजुर्बों ने उससे भी बड़ा सच मेरी हथेली पर रखा—वह है रुपया ! सच ही, इसान धन-दौलत की हवस में, इंसानियत और नैतिकता का खून करता है; मक्कारी और देह-ईमान के धंधे में जुटा हुआ, अपने वहशी नाखून गड़ाकर, इंसानियत को पर्त-पर्त खुरच डालता है। दूसरों की धन-दौलत भी निहायत नामुरादी से समेटकर, अय्याशी की अश्लील तस्वीर बने, गली-मुहल्लों के चौराहों पर टंगे रहते हैं।

इसीलिए, यह किसी उपन्यास का अनुवाद नहीं, सच की अनुकृति है। मेरा दावा है, प्रत्येक पाठक को इसमें अपने-अपने चेहरे नजर आयेंगे। कोई देवव्रत··· कोई मिनति या झरना ! सच तो आखिर सौ फीसदी सच ही होता है न ?

162/83, लेक गार्डेंस
कलकत्ता-600045
फोन : 468171

—सुशील गुप्ता

भगवान रो रहा है

भगवान नामक कोई हस्ती भला है भी ? अगर है, तो क्या वह भगवान रोता भी है ? और भगवान अगर सच ही रोता है, तो उसकी सिसकियां क्या इस दुनिया के इंसान सुन पाते हैं ? इंसान अगर सुनता भी है, तो देश के बड़े-बड़े नेता क्यों नहीं सुन पाते ? समाज-सुधारक क्यों नहीं सुन पाते ? संविधान-निर्माता क्यों नहीं सुन पाते ? देश के नामी-गिरामी कर्ता-धर्ता क्यों नहीं सुन पाते ?

यह रुलाई एक-अकेले देवव्रत सरकार को ही क्यों सुनायी देती है ? देवव्रत सरकार की कहानी सुनते-सुनते, मेरे मन में बार-बार यह सवाल उठता रहा। सच्ची तो, देवव्रत सरकार में ऐसी क्या खासियत है, जो अकेले उसी को भगवान की रुलाई सुनायी देती है ?

लेकिन हर नदी गंगा नहीं होती, हर पहाड़ हिमालय नहीं होता, हर मृग कस्तूरी-मृग नहीं होता, उसी तरह हर शख्स देवव्रत नहीं होता।

देवव्रत अगर आम इंसान होता, तो उस पर कहानी लिखना आसान होता। आम इंसानों की तरह देवव्रत के भी दो पैर, दो हाथ थे; एक अदद सिर था, नाक और माथा था। जो-जो होने से इंसान को इंसान कहा जाता है, देवव्रत सरकार में वह सारा कुछ मौजूद था।

लेकिन फिर भी देवव्रत सरकार एक अन्यतम शख्स था।

चूंकि देवव्रत सरकार अन्यतम शख्स था, इसलिए उस पर कहानी लिखना बहुत मुश्किल काम है। विधाता पुरुष उसे रचते समय शायद कुछ अन्यमनस्क हो गया था। उसके भंडार में जो-जो मान-मसाले थे, सारा कुछ उसने देवव्रत सरकार में भर दिया था। लेकिन चूंकि उसे गढ़ते समय भगवान अन्यमनस्क था, इसलिए देवव्रत जब इस दुनिया में आया, वह बेहद असाधारण हो उठा।

एक दिन वही देवव्रत सरकार सड़क पर पैदल-पैदल चला जा रहा था। उन दिनों उसकी उम्र कम थी। हां, तो रास्ते पर चलते-चलते उसने अचानक महसूस किया कि लोग उसे घूर-घूरकर देख रहे हैं।

उसे कुछ समझ नहीं आया। अच्छा, उसकी तरफ यूं घूर-घूरकर देखने को क्या है ? इस रास्ते से होकर तो वह रोज ही गुजरता है। लेकिन ऐसी चुभती निगाहों से तो उसे कोई, कभी नहीं घूरता।

उसके बदन पर वही हमेशावाली शर्ट है, वही धोती। फिर ?

'खैर, छोड़ो ! मरने दो।' उसने सोचा। लोग उसे घूर-घूरकर देख रहे हैं, तो उसकी बला से। उसने अगर कोई गलती की हो, तो भी कोई बात थी। लेकिन उसने तो कोई गलती नहीं की। जिन्दगी में कभी पान-बीड़ी-सिगरेट तक नहीं छुई। सिर के बालों में कभी कंघी तक नहीं फेरी। फिर किस बात का संकोच ?

लेकिन नहीं, उसे घूर-घूरकर देखने की कोई और ही वजह थी।

काफी देर बाद वह वजह भी पकड़ में आ गयी। उस वक्त वह किसी खास काम से अपने दोस्त के घर जा रहा था। उस दोस्त के पास एक किताब थी। उसने कहा था, अगर वह उसके घर आ जाये, तो वह किताब उसे पढ़ने को दे देगा। वह किताब थी—अश्विनी कुमार दत्त का 'भक्तियोग' !

उस जमाने में एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में जाने का एकमात्र जरिया था, पैदल जाना। कोई और उपाय भी नहीं था। खैर, उपाय जानने की किसी को जरूरत भी नहीं थी। वह दोस्त उसी के स्कूल में, उसी की क्लास में पढ़ता था। बातचीत के दौरान एक दिन उसी ने बताया था, उसके बापू के पास एक किताब है—भक्तियोग।

देवव्रत ने कहा, "मुझे एक बार वह किताब उधार दे सकता है ?"

दोस्त ने जवाब दिया, "ना, भई, मेरे बापू अपनी किताब किसी को भी घर से बाहर नहीं ले जाने देते। अगर किताब पढ़ने का इतना ही मन हो, तो मेरे घर आकर पढ़ सकता है। इसमें मेरे बापू को कोई एतराज नहीं।"

देवव्रत वही किताब पढ़ने के लिए उसके घर जा रहा था। गर्मी के दिन ! चिलचिलाती धूप ! सड़कों पर आग बरस रही थी। स्कूलों में भी गर्मी की छुट्टियां हो चुकी थीं। देवव्रत जिस वक्त अपने दोस्त के यहां पहुंचा; दोपहर के दो बज रहे थे। सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाते ही, उसके दोस्त ने ही दरवाजा खोला।

"अरे, तू ? क्या बात है ?"

"हां, मैं ! तूने कहा था न, तू वह किताब मुझे पढ़ने देगा।"

दोस्त को बात याद आ गयी। उसने उसे अन्दर आने का रास्ता दिखाते हुए कहा, "आ ! अन्दर तो आ। वह बात तो आयी-गयी हो गयी। हां, मैंने कहा तो था। तुझे अब तक याद है ? तू भी न गजब है।"

सचमुच, देवव्रत अद्भुत लड़का था। उसके दोस्त ने अपने बापू की किताबों में से खोज-खाजकर वह किताब उसे थमा दी। देवव्रत वह किताब लेकर पास ही लकड़ी की बेंच पर बैठ गया और किताब के पन्ने उलट-पुलटकर देखता रहा। कुछ ही पलों में वह उस किताब में पूरे मन से डूब गया।

"क्यों रे, दिखायी दे रहा है ?"

देबू की तरफ से कोई जवाब नहीं आया।

दोस्त ने दुबारा पूछा, "मैं तुझसे ही पूछ रहा हूं, अंधेरे में कुछ नजर भी आ रहा है तुझे ? खिड़की खोल दूं ?"

देवू की तरफ से फिर भी कोई जवाब नहीं आया।

दोस्त ने फिर सवाल किया, "क्या, रे, इतना क्या पढ़ रहा है ?" उसने देवू को टहोका मारा।

देवव्रत को मानो होश आया। उसने चौंककर कहा, "क्या तूने मुझसे कुछ कहा ?"

"तुझे इस अंधेरे में कुछ दिखायी भी दे रहा है ? अगर तू कहे तो खिड़की खोल दूं ?"

देवव्रत ने किताब में दुबारा आंखें गड़ाते हुए कहा, "रुक जा, देखूं इस पन्ने में क्या लिखा है ?"

अचानक उसके दोस्त ने जोर का ठहाका लगाया। हंसते-हंसते वह लोटपोट हो गया। लेकिन देवव्रत को मानो किसी बात का होश नहीं। वह उसी तरह किताब में तन्मय रहा।

"अरे, यह क्या ? यह क्या किया तूने ?"

इतनी देर बाद मानो देवू की समाधि भंग हुई। किताब से सिर उठाकर उसने अचकचाकर पूछा, "क्यों, क्या किया मैंने ?"

"तूने यह कैसे जूते पहन रखे हैं ? यह क्या है ?"

बंकू ने देवव्रत के पैरों की ओर इशारा किया। देवव्रत के पैरों में दो अलग-अलग डिजाइन के जूते थे।

"जरा अपने जूतों पर तो नजर डाल।" बंकू ने कहा।

देवू ने अपने जूतों पर नजर डाली। वाकई, बायें पैर में काले रंग का जूता और दाहिने पैर में सफेद रंग का! बंकू बेभाव हंसता रहा।

"सच्ची, तेरा दिमाग बिल्कुल ही सनक गया है। तू डॉक्टर को दिखा। रास्ते पर ऐसा पागल-छागल-सा चलते-चलते किसी दिन गाड़ी के नीचे ही आ जायेगा। पांवों में अलग-अलग रंग के जूते पहनते हुए, तुझे इतना भी होश नहीं आया कि तू क्या पहन रहा है ?" बंकू के लहजे में तिरस्कार-भरा विस्मय था।

"असल में तेरे घर आने को मैं इतना उतावला हो उठा था कि जूतों की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। खैर, छोड़, क्या फर्क पड़ता है ? आदमी की परख उसके जूतों से तो नहीं होती।"

"सच्ची, तू न वाकई पागल है। तुझे तो रांची पागलखाने में भेज देना चाहिए।"

देवव्रत उसकी बातों पर कान न देकर, पहले की तरह किताब पढ़ने में जुट गया।

न्ना ! लिखते-लिखते मैं फिर अटक गया। मुझे एक बार फिर सोचना पड़ा, कहानी अगर यहां से शुरू की तो जमेगी नहीं। देवव्रत सरकार ने किस पांव में किस रंग के जूते पहने, इसमें पाठक के नफा-नुकसान में हेर-फेर नहीं है। अच्छा, किसी और बिन्दु से कहानी की शुरुआत की जाये···

वैसे कई चरित्र ऐसे हैं; कई घटनाएं है, जिन पर कहानी लिखी जा सकती है। देवव्रत सरकार ही क्यों···मिनती देवी से ही कहानी शुरू की जा सकती है···या फिर शाहबुद्दीन पर भी कहानी बुनी जा सकती है।

देवव्रत सरकार तो किसी मामूली, मध्यवित्त परिवार का मामूली नौजवान था। लेकिन, किताब पढ़ने की लत कैसे पड़ गयी, बाहरी लोगों को इसकी कोई जानकारी नहीं।

इसलिए, कहानी अगर उस शख्स से शुरू की जाये, तो उसमें किसी की दिलचस्पी नहीं होगी। फिर क्या किया जाये ? मिनती जी से कहानी शुरू करूं ? या शाहबुद्दीन से ?

सच, आजकल कहानी शुरू करना ही काफी मुश्किल काम हो गया है, क्योंकि मैं एक ऐसे युग का लेखक हूं, जहां किसी पाठक को फुर्सत नहीं। वे सुबह से लेकर शाम तक काम-बेकाम व्यस्त रहते हैं। अलसुबह ही एक अदद ऐसे आदमी की जरूरत होती है, जो हरिनघाटा दूध की 'बूथ' में लाइन दे और आजकल ऐसा शख्स भी मिलना मुहाल है। उसके बाद रोजमर्रा के सौदा-सुलुफ की खरीददारी के लिए बाजार जाना; उस पर से सप्ताह में एक दिन चावल-दाल-तेल-चीनी की खरीददारी के लिए राशन की दुकान पर जाना, इसके अलावा घर के बाल-बच्चों को स्कूल पहुंचाने-लाने का काम। जिन लोगों के पास दौलत है, वे लोग अपने घर के बच्चों को मुहल्ले के स्कूल तक में नहीं पढ़ाना चाहते। उनके बच्चे अगर मुहल्ले के स्कूल में गये, तो लोग-बाग उन्हें गरीब कहने लगेंगे और यह कोई नहीं चाहता कि अड़ोसी-पड़ोसी की नजरें उस पर गरीबी का ठप्पा लगा दें। अस्तु, घर में रुपये हों या न हों, बाहरवालों के सामने अमीरी का ढोंग रचाना उसके लिए बेहद जरूरी है। असल में यह इज्जत का सवाल है और आजकल रुपया ही सबसे बड़ी इज्जत है।

अचानक इस वक्त जो इस तरह का ख्याल जागा है, इसकी भी एक खास वजह है।

गणतंत्र दिवस के मौके पर, हर बार की तरह उस दिन के अखबार में भी उपाधि-वितरण की फेहरिश्त प्रकाशित हुई थी। शुरू-शुरू में इस फेहरिश्त को

लेकर लोगों में थोड़ी-बहुत चर्चा होती भी थी, लेकिन बाद में वह भी बंद हो गयी। वैसे, उन दिनों इन उपाधियों के लिए लाखों रुपये खर्च करने की भी जरूरत नहीं थी। लोग उसे अपने सम्मान की स्वीकृति समझते थे।

इस बार 'पद्मश्री' पाने वालों की फेहरिस्त में एक महिला का नाम भी छपा था—झरना देवी।

उसी दिन राह चलते हुए अपने दोस्त सुप्रभात से भेंट हो गयी। उसने छूटते ही कहा, "देखा, झरना देवी भी आखिर 'पद्मश्री' हो ही गयीं।"

"हां, देखा ! लेकिन ये झरना देवी आखिर हैं कौन ?"

"अरे, तूने झरना देवी का नाम नहीं सुना ?"

मुझे स्वीकार करना ही पड़ा, "ना, नहीं सुना !"

जिन्दगी में इतने बड़े-बड़े लोगों का नाम याद रखना पड़ता है कि कहां, किसको, किस बात पर 'पद्मश्री' मिली, उसका नाम भी याद रखने लगो, तो आदमी पगला ही जाये।

सुप्रभात ने बताया, "पता है, झरना देवी को 'पद्मश्री' मिलने के सिलसिले में हम लोग उनकी अभ्यर्थना करने जा रहे हैं ?"

"कब ?"

"अगले इतवार को ! झरना देवी का नाच भी होगा। तू आयेगा नाच देखने ?"

"अरे, भइयो, नाच गाने की समझ मुझे कहां ? लेकिन अगर तू दिखाये, तो देख लूंगा।"

सुप्रभात चला गया। दो दिनों बाद डाक से मेरे नाम एक निमन्त्रण-पत्र भी आ पहुंचा।

हां, नाच-नाच की मुझे कतई समझ नहीं। असल में साहित्य के अलावा मुझे और कुछ आता भी नहीं। अगर कोई साहित्यिक किताब हो, तो उसे पढ़कर मैं झट बता दूंगा कि किताब अच्छी है या बुरी। लेकिन आजकल साहित्य पढ़ने-पढ़ाने का रिवाज बिलकुल उठ चुका है। लोग-बाग सिर्फ कहानी-उपन्यास को साहित्य मान बैठे हैं और छपी-छपाई किताबों को बाइबिल-गीता-कुरान मानने लगे हैं। आजकल तो लोग राजनीति, फुटबॉल-क्रिकेट जैसे खेलों में ही पगलाये रहते हैं, लेकिन मुझे इन तीनों में से एक की भी समझ नहीं। न ही मैं इन्हें इस काबिल समझता हूं कि दिमाग भिड़ाया जाये।

और नाच ?

यह भी एक आर्ट है, जब तक कोई खुद न समझाये, मैं भी समझने की कतई कोशिश नहीं करता। बहरहाल इन झरना जी को अगर 'पद्मश्री' मिलने की खुशी में सम्मान न दिया गया होता, तो मैं भी उसका नाच देखने हरगिज न जाता।

अगर मैं उनका नाच देखने न गया होता, तो झरना देवी की कहानी भी हाथ नहीं लगती और मैं उन पर उपन्यास लिखने का इरादा भी नहीं करता ! मुझे देवव्रत सरकार की कहानी ज्ञात नहीं होती और न यह जान पाता कि आदर्श-पुरुष किसे कहते हैं।

देवव्रत सरकार को 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' वगैरह सम्मान कभी नहीं मिला। उस शख्श को शायद इनकी चाह भी नहीं थी। वैसे उसके पास अगाध धन-दौलत भी नहीं थी। खासियत के नाम पर उसके पास बस, अपना चरित्र भर था। उस निष्काम, निरहंकारी, निर्लोभी और निर्भीक चरित्र का इंसान कहना भी उसकी खासियत को कम करना होगा।

उस जमाने में दुनिया की हवा ही कुछ अजीब थी। आजकल देशभर के तमाम गली-मुहल्लों में क्लब-संघों की जैसे बाढ़-सी उमड़ पड़ी है। उस जमाने में भी यही रंग-ढंग था। लेकिन आजकल क्लब वगैरह में जिस किस्म के काम-काज चलते हैं, उस जमाने में वह कुछ नहीं होता था। आजकल जगह-जगह लाउडस्पीकर वगैरह नजर आने लगे हैं, उस जमाने में इनका आविष्कार तक नहीं हुआ था। इसीलिए उस युग में क्लबों के काम-काज की रीति-पद्धति की खबरें दूसरे मुहल्लों तक नहीं पहुंच पाती थीं। वे लोग मौन कार्यकर्ता थे। चुपचाप काम किये जाना ही उस युग का संकल्प था।

उस जमाने में फिरंगियों के हाथों देश का बंटवारा भी नहीं हुआ था। इसलिए समूचा हिन्दुस्तान ही हमारा देश था। 'बंग मेरी, जननि मेरी' में पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल, दोनों ही शामिल थे।

उसी जमाने में चंद यार-दोस्तों के साथ देवव्रत ने फैसला किया कि अपने देश को अंग्रेजों के शिकंजे से छुड़ाने के लिए इंसान को आदर्श-चरित्र बनना होगा। यानी इंसान को इंसान बनना होगा।

आदर्श इंसान बनने के लिए इंसान को सच्चा, मिताहारी और मिताचारी बनना होगा; शराब और नारी-संसर्ग का त्याग करना होगा; ब्रह्मचर्य पालन करना होगा।

देवव्रत के क्लब का नाम था—चरित्र गठन शिविर। जो शख्स इस चरित्र गठन शिविर के अगुआ थे, उनका नाम था—सुलतान अहमद साहब !

सुलतान अहमद साहब सिगरेट, दारू वगैरह तो दूर, पान तक नहीं खाते थे। अपनी कहने को कुल एक अदद मां थी। वालिद का बचपन में ही इंतकाल हो चुका था। किसी हिन्दू जमींदार ने अपने खर्च से उन्हें पढ़ाया-लिखाया। गांव के ही कॉलेज से बी० ए० करने के बाद, जमींदार साहब की मां के नाम पर स्थापित स्कूल में वे मास्टरी करने लगे और मुहल्ले के तमाम हिन्दू-मुसलमान बच्चों को बटोरकर 'चरित्र गठन शिविर' का शुभारंभ किया।

देवव्रत ने भी उसी शिविर में अपना नाम लिखाया था।

सुलतान अहमद साहब ने उससे दरयाफ्त किया, "तुम जो इस शिविर में अपना नाम दर्ज कराना चाहते हो, बरखुरदार, अपने वालिद की रजामंदी ले ली है ?"

देवव्रत ने कहा, "हां, सर !"

अहमद साहब ने दुबारा सवाल किया, "इस शिविर के कुछेक कायदे-कानून हैं, उन्हें पाबंदी से निभा सकोगे न ?"

देवव्रत ने जवाब दिया, "हां, सर, आप जो-जो हुक्म देंगे, मैं सब करूंगा।"

सचमुच, सुलतान अहमद साहब के चरित्र गठन शिविर के कायदे-कानून बेहद कड़े थे। स्कूल की छुट्टी के बाद, शाम चार बजे से तमाम लड़कों को एक कतार में खड़ा करके ड्रिल कराते थे सर। कभी 'स्टैंड स्टिल', कभी 'मार्च', कभी 'हाल्ट', और कभी 'बायें मुड़-दायें मुड़' !

सिर्फ इतना ही नहीं, उनके साथ रहकर कौन-कौन-से काम किये, डायरी में उनका हवाला भी दर्ज कराना जरूरी था। रोजमर्रा के कामकाज की फेहरिश्त !

डायरी में सबसे ऊपर दिन और तारीख ! उसके नीचे कुछेक सवालों के जवाब लिखने होते—1. आज मैंने कौन-कौन-सा सच बोला, 2. आज मैंने कौन-कौन-से झूठ बोले, 3. स्कूल के पाठ्य-क्रम के अलावा आज मैंने बाहरी किताबें कौन-कौन-सी पढ़ीं, 4. आज सुबह मैं कितने बजे उठा, 5. रात को कितने बजे सोया, 6. घर के अंदर और घर के बाहर मैंने लोगों से कैसा बर्ताव किया, 7. आज स्कूल में मास्टर साहब के सवालों का जवाब कैसा दिया ?

शिविर में कुल मिलाकर चालीस-पैंतालीस सदस्य थे। ये लोग अपनी-अपनी डायरी लिखकर सर को सौंप देते। सर उन डायरियों का मुआयना करके, नीचे दस्तखत करते और उसी दिन वापस कर देते।

सुलतान साहब फर्माया करते थे, "मैं यह देखकर खुश हूं कि सबके चरित्र में वाकई तरक्की हो रही है। अच्छा, बताओ तो, इस चरित्र गठन को मैं इतना महत्व क्यों देता हूं ?"

उनमें से एक लड़के ने जवाब दिया, "क्योंकि चरित्र गठन के बगैर कोई भी इंसान बड़ा इंसान नहीं बन सकता।"

अहमद साहब ने यही सवाल दूसरे लड़के से किया, "ठीक है ! तुम बताओ।"

दूसरे ने जवाब दिया, "चरित्र ही इंसान की जिन्दगी का मेरुदंड है। चरित्र गठन उस मेरुदंड को पुख्ता बनाता है।"

"ठीक है ! अब तुम बताओ—"

इस तरह बारी-बारी से एक-एक लड़का उठा और जवाब देकर बैठ गया।

"और तुम ? तुम क्या सोचते हो ?"

अब देवव्रत की बारी थी। देवव्रत उठ खड़ा हुआ। इतनी देर से भय, उद्वेग और उत्तेजना से वह पसीना-पसीना होकर कांप रहा था। मन-ही-मन छटपटा भी रहा था। उसे लग रहा था कि उसी दम वह बेहोश होकर गिर पड़ेगा।

उसकी जुबान से बमुश्किल निकला, "कुछ पाने की उम्मीद में नहीं, किसी फायदे या ईमान के लालच में भी नहीं, सिर्फ चरित्र के लिए ही चरित्र गठन उचित है।"

जैसे-तैसे जवाब देकर देवव्रत अपनी जगह बैठ गया। उसे याद है···जवाब देने के बाद भी वह थर-थर कांप रहा था। उस दिन सुलतान अहमद साहब ने क्या कहा, क्या राय दी, किसके जवाब को सही ठहराया, यह उसने सुना ही नहीं, न ही जानने की कोशिश की।

उस दिन वह उसी तरह हैरान-परेशान अपने घर लौट गया और अगले दिन से फिर पढ़ाई में जुट गया।

मां ने पूछा, "क्या हुआ रे? आज खाना नहीं खायेगा?"

देवव्रत की आंखें नींद से बोझिल हो आयी थीं। उसने कहा, "मुझे जोरों की नींद आ रही है, मां, मुझसे अब बैठा भी नहीं जा रहा।"

वह किसी तरह एकाध निवाले निगलकर उठ गया और बिस्तर पर ढेर हो गया।

लेकिन हैरत है! जिसे इस कदर नींद आ रही थी, बिस्तर पर लेटते ही वह नींद जाने कहां उड़ गयी। समूची रात जागते बीत गयी। सर की बातें रातभर उसके कान में गूंजती रहीं। सुलतान अहमद साहब की बातें।

उस दिन शाम को जब सभी लड़के क्लब से अपने-अपने घरों की ओर रवाना हुए, देवव्रत भी लौट रहा था।

अचानक सर से मुठभेड़ हो गयी। पश्चिम दिशा के आकाश में जमा अंधेरा अब धीरे-धीरे गहराने लगा था।

सर ने कहा, "तुमसे एक बात कहना चाहता था, देवव्रत!"

देवव्रत भौंचक्का!

"जी, सर, क्या बात है?"

सुलतान साहब ने सवाल किया, "उस दिन मेरे सवाल का तुमने तो जवाब दिया था, वह तुम्हें कहां से पता चला? किसी ने सिखाया था?"

"जी, सर!"

"किसने सिखाया था?"

देवव्रत को समझ नहीं आया कि वह क्या जवाब दे। जिसने उसे यह जवाब सिखाया था, उसकी सख्त हिदायत थी कि उसका नाम हरगिज जाहिर न हो।

अहमद साहब ने दुबारा सवाल किया, "क्या हुआ, भई? कौन साहब हैं ये?...

क्या नाम है उनका?"

देवव्रत ने जवाब दिया, "उन्होंने अपना नाम बताने को मना किया है, सर! मैं उनका नाम नहीं बता सकता, सर!"

इसके बाद अहमद साहब ने नाम जानने की जिद नहीं की। देवव्रत से जवाब न पाकर, वे जिस राह आये थे, उसी राह आगे बढ़ गये। देवव्रत जहां-का-तहां खड़े-खड़े उन्हें एकटक देखता रहा। जब तक वे नजर आते रहे, उसकी निगाहें उन्हीं पर जमी रहीं। जब वे ओझल हो गये, तो उसने भी बड़े बेमन से घर की तरफ पांव बढ़ा दिये।

जिस लड़के में मन का जोर इतना पुख्ता था, वही जब कलकत्ते आया, तो अपने दोस्त के यहां अश्विनी दत्त का भक्तियोग पढ़ने के लिए, दोपहर की चिलचिलाती धूप में, इस मुहल्ले से उस मुहल्ले तक पैदल-पांव पहुंचा गया था। उसे वह किताब पढ़ने की इतनी जल्दी थी कि उसने किस पांव में कौन-से रंग के जूते पहन रखे हैं, इसका भी ख्याल नहीं रहा।

इसीलिए तो मैंने कहा कि विधाता पुरुष जब देवव्रत सरकार को गढ़ रहा था, तो थोड़ा अन्यमनस्क रहा होगा, वरना उस जैसे संसार-त्यागी इन्सान को कैसे गढ़ सका होगा?

वैसे जिस देवव्रत की कहानी मैं लिखने जा रहा हूं, उसे मैंने खुद भी नहीं देखा। आज से पहले कभी उसका नाम तक नहीं सुना।

बात सुप्रभात ने ही छेड़ी थी···

उपलक्ष्य था, झरना देवी का पद्मश्री-सम्मान! यूं भारत की आजादी के बाद से ही प्रजातन्त्र दिवस पर सैकड़ों-हजारों औरत-मर्दों को 'पद्मश्री', 'पद्मभूषण' वगैरह का खिताब मिलता रहा है, लेकिन सुप्रभात ने आज से पहले कभी किसी का जिक्र नहीं छेड़ा।

उस दिन निमन्त्रण-पत्र पाकर मैं भी झरना देवी के सम्मान-समारोह में शरीक हुआ था।

बाकी सब सम्मान-समारोहों में जो-जो होता है, उस समारोह में वही-वही कुछ हुआ। उसी तरह पहले मंगलाचरण, फिर खास-खास लोगों के नीरस, एकरस, गूढ़-गम्भीर भाषण और फूलों के गुलदस्तों के ढेर!

कहा न, मुझे नाच-वाच की जरा भी समझ नहीं। वैसे भी, हर कोई, हर कुछ समझने का हकदार है, ऐसा भी कोई कानून या बंधा-बंधाया नियम नहीं। चलो, नाच की समझ भले न हो, लेकिन नाच देखने में तो कोई बाधा-निषेध भी नहीं और ताली बजाकर अपने को समझदार जाहिर करने की भी मनाही नहीं।

वैसे सिर्फ नाच ही क्यों, कला-कारीगरी के हर मामले में यही बात लागू

होती है। चित्रकला को ही लीजिए, भला कितने लोग समझते हैं इसे? लेकिन फिर भी पत्र-पत्रिकाओं में इसकी समालोचना करते हुए लोग खर्रे-पर-खर्रे लिख डालते हैं।

और साहित्य?

साहित्य समझने के लिए तो किसी विद्या-बुद्धि की जरूरत ही नहीं पड़ती। जो लोग साहित्य के अंधे हैं, वे भी साहित्य पर पोथा रच डालते हैं। उनमें से बहुतेरे साहित्यकार कॉलिजों में साहित्य पढ़ाते भी हैं और घर-घर टीचरी करके अच्छी-खासी दौलत भी कमा लेते हैं।

लेकिन इन झरना देवी के सम्मान-समारोह में एक अजीब बात नजर आयी, जो और किसी सम्मान-सभा में कभी नजर नहीं आयी।

वह थीं—आल्ता मौसी!

वैसे आल्ता मौसी भी भला कोई नाम हुआ?

इसका भी जवाब सुप्रभात ने दिया, "हां! हां! होता है। इस महिला का नाम सच ही आल्ता मौसी है।"

मैंने फिर सवाल किया, "भला ऐसा अजीबोगरीब नाम क्यों कर हुआ?"

"उस औरत का काम है, घर-घर जाकर सुहागिन बहू-बेटियों के पांवों में आल्ता लगाना। जिन्दगी भर वे यही काम करती आयी हैं। यहां तक कि उनका असली नाम तक किसी को याद नहीं रहा।"

"इसमें उनको फायदा?"

"इसमें उनको फायदा-वायदा कुछ नहीं। बस, उनको शौक है।"

हां, तो उस शाम झरना देवी के सम्मान-समारोह में आल्ता मौसी को मैंने पहली बार देखा। बदन पर सुर्ख लाल किनारीदार साड़ी! शमीज! जिस वक्त झरना देवी फूलों के मोटे-मोटे गजरे पहने स्टेज पर आसीन थीं, आल्ता मौसी बेंत की एक डलिया उठाये, बिल्कुल उनके सामने आ बैठीं। उन्होंने अपनी डलिया से एक शीशी निकाली और कटोरी में थोड़ा-सा आल्ता उंड़ेलकर झरना देवी के पांवों में महावर लगाया और पांवों के बीचोंबीच एक बड़ी-सी बिन्दी टांक दी। उसके बाद उनकी मांग में एक लंबी-सी धारी भी खींच दी। झरना देवी ने अपनी वैनिटी-बैग से दस रुपये का एक नोट निकालकर, उन्हें थमाते हुए प्रणाम किया।

वाकई, अनोखा दृश्य था। हॉल में तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। उसके बाद मंच पर पर्दा खींच दिया गया।

अब झरना देवी का नाच शुरू होने वाला था। मंच के भीतर तैयारियां होने लगीं। बाहर इंटरवल का एलान कर दिया। हॉल में बत्तियां दुबारा जल उठीं।

सुप्रभात मेरी बगल में आकर बैठ गया।

उसने पूछा, "क्यों कैसी लगीं?"

"अच्छी लगी। वैसे झरना देवी की उम्र तो काफी होगी, लेकिन बदन पर इसकी छाप बिल्कुल नहीं पड़ी।"

"असल में नाच भी तो एक किस्म का योग-व्यायाम ही है। इसीलिए न झरना देवी की कमसिनी अभी तक ठहरी हुई है?"

मैंने पूछा, "झरना देवी से तुम्हारी जान-पहचान कैसे हुई? फिर पहले भी तो अनगिनत लोगों को पदवी मिली है, तुम लोगों ने अकेली झरना देवी को ही सम्मान के लिए क्यों चुना?"

सुप्रभात के होंठों पर हल्की-सी हंसी खेल गयी! अजब-सी भेदभरी हंसी! उसने उसी तरह हंसते हुए कहा, "यह एक लंबा इतिहास है, भइये!"

"इसमें भला क्या इतिहास हो सकता है?"

"अरे, बिरादर, हर चीज का एक-न-एक इतिहास होता है, तुम्हें नहीं मालूम? आज जो फूल खिला है, उसके पीछे भी तो मिट्टी कोड़ने-गोड़ने, खाद देने, बीज बोने-सींचने का इतिहास होता है।" यह कहते हुए उसकी भेदभरी हंसी कुछ और गहरी हो आयी।

मैंने पूछा, "तो इन झरना देवी की जिन्दगानी के पीछे भी कोई इतिहास छिपा है?"

"हां, कहा तो, इसका भी एक इतिहास है।"

"इतिहास? कैसा इतिहास?"

"बताऊंगा, किसी दिन—"

"और ये...आल्ता मौसी? ये कौन हैं? झरना देवी के इतिहास में इनकी क्या भूमिका है?"

"यह आल्ता मौसी ही तो उनके इतिहास का 'विवेक' यानी सूत्रधार हैं। बंगला यात्रा-पाला में नहीं देखा? नाटक के बीच-बीच में एक अदद पात्र गेरुआ रंग के लबादे-पगड़ी में गाना गाते-गाते मंच पर प्रवेश करता है। अपने गाने में वह नाटक के चरित्रों की व्याख्या करता चलता है। उन्हें आगाह भी करता है, एकाध भविष्यवाणी भी करता है। दुःखान्त नाटकों में कभी-कभी कहानी को चरम सीमा पर पहुंचाकर अन्तर्ध्यान हो जाता है।

सुप्रभात की कोई बात मेरे पल्ले नहीं पड़ी। मुझे तो उसकी रहस्यमय हंसी की तरह ही उसकी बातें भी रहस्यमय लग रही थीं।

मैंने कहा, "भाई, मुझे तो तुम्हारी हर बात पहेली लग रही है।"

सुप्रभात ने समझाया, "जब तुम पूरी कहानी सुनोगे, तो समझ जाओगे कि आल्ता मौसी को मैंने विवेक क्यों कहा।"

हॉल की बत्तियां दुबारा गुल हो गयीं और शुरू हो गया झरना देवी का—

सच्ची, मेरा तो ख्याल है, देवव्रत सरकार की जिन्दगी सांप की तरह ही जटिल थी। सिर्फ जटिल ही नहीं, भयानक भी ! इसीलिए तो मैंने शुरू में ही कहा—हर नदी गंगा नहीं होती, हर पहाड़ हिमालय नहीं होता, हर मृग कस्तूरी-मृग नहीं होता। उसी तरह हर शख्स देवव्रत सरकार नहीं होता।

उन दिनों न मेरा जन्म हुआ था, न सुप्रभात का। अब तो हमारा मुल्क भी पहले जैसा नहीं रहा। पहले यह मुल्क बिल्कुल एक और अविभक्त था। 1947 में अंग्रेज फिरंगी, यह देश छोड़ते समय, इसके तीन-चार टुकड़े कर गये यानी इस देश का सर्वनाश कर गये। अब पचीस साल बाद चार की जगह अब पांच टुकड़े हो चुके हैं देश के।

उस जमाने में ढाका या चटगांव से ट्रेन में सवार होते और कुल एक टिकट पर सीधे कलकत्ते पहुंच जाते थे। बाद में यह संभव नहीं रहा।

लेकिन जब देश का बंटवारा नहीं हुआ था, उसी जमाने में देवव्रत ने 'चरित्र गठन शिविर' में सुलतान अहमद साहब से जो सबक सीखा था, उसका चरित्र गठन पूरा हो चुका था। उन दिनों जितना कुछ उसने सीखा था, बाद में अगर उसे ही भुनाता रहता, तो भी उसकी बाकी जिन्दगी मजे से गुजर जाती। लेकिन मुश्किल आन पड़ी विनय'दा की वजह से।

विनय'दा यानी विनय बोस !

···उस दिन अलसुबह उसकी नींद टूटी ही थी कि कन्हाई ने उसे आवाज दी।

देवव्रत ने खिड़की से झांककर जवाब दिया, "अरे, कन्हाई, तू ? इतनी सुबह-सवेरे ?"

"तू बाहर तो आ। विनय'दा आये हैं, तुझसे मिलना चाहते हैं।"

विनय'दा ढाका से आते थे ! उन्होंने ढाका में 'बंगाल वालेंटियर' नामक एक पार्टी तैयार की थी। पार्टी के बाहर किसी को इसके बारे में खबर नहीं थी।

बहुत दिनों पहले कन्हाई ने ही विनय'दा का जिक्र किया था।

उसकी जुबानी विनय'दा के बारे में ढेरों कहानियां सुनकर देवव्रत ने ही कहा था, "अपने विनय'दा से एक बार मेरी भी भेंट करा दे न।"

कन्हाई ने कहा, "विनय'दा अपने पार्टी मेम्बरों के अलावा और किसी से नहीं मिलते।"

"क्यों ?"

"कब, कौन दगा दे दे, क्या भरोसा !"

"भई, दगा तो अपनी पार्टी के लोग भी दे सकते हैं।"

"नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते।"

"क्यों, कर क्यों नहीं सकते ?"

"अगर उन्होंने दगा किया, तो वे जिन्दा नहीं बच सकते। विनय'दा किसी को

भी बंगाल वालेंटियर का मेम्बर बनाने के पहले, उसे श्मशान घाट ले जाते हैं। काली मैया के सामने अंगूठा काटकर खून से शपथ दिलाते हैं।"

"अगर कहीं वह मेम्बर अपनी शपथ तोड़ दे, तो?" मैंने दरयाफ्त किया।

"शपथ तोड़ी, तो उसकी खैर नहीं। पार्टी मेम्बर के हाथों किसी दिन कत्ल हो जायेगा।"

यह सब सुनने के बाद देवव्रत के मन में विनय'दा से मिलने का तीव्र आकर्षण जाग उठा। उसका मन होता था, काश! वह खुद अपनी आंखों से देख पाता कि वह कैसा इन्सान है, उसकी शक्ल-सूरत कैसी है, वह बातचीत में कैसा है।

यूं कन्हाई से विनय'दा के बारे में ढेरों बातें होतीं, लेकिन उनसे मिलने का सौभाग्य कभी नहीं हुआ।

देवव्रत ने पूछा, "तू भी 'बंगाल वालेंटियर' का मेम्बर है?"

कन्हाई ने जवाब दिया, "ना रे! मैं नहीं हूं मेम्बर। विनय'दा ने मुझे अपनी पार्टी का मेम्बर बनाने से इन्कार कर दिया।"

"क्यों? तेरा कसूर?"

"मेरे इतने सारे भाई-बहन हैं न, इसीलिए उन्होंने मुझे मेम्बर नहीं बनाया। उन्होंने कहा—तुझे मेम्बर बनाने की जरूरत नहीं। देश के काम से भी पहले तुझे अपने घर के कामों पर ध्यान देना चाहिए।"

देवव्रत ने कहा, "लेकिन मेरे तो मां-बापू के अलावा और कोई नहीं।"

"हां, इसीलिए तो तू मेम्बर बन सकता है। तुझे मेम्बर बनाने में उन्हें कोई इतराज नहीं होगा।" कन्हाई ने कहा।

काफी अर्से से उन दोनों में इसी तरह की बातचीत चल रही थी। लेकिन देवव्रत को विनय'दा के दर्शन का कभी मौका नहीं मिला था। उसने तो उनका सिर्फ नाम भर सुना था।

इसलिए जिस दिन सुप्रभात ने अलसुबह उसे विनय'दा के आगमन की खबर दी, वह उसी वक्त घर से बाहर निकल आया। कन्हाई सड़क पर अकेला ही खड़ा था।

देवव्रत ने छूटते ही पूछा, "कहां हैं तेरे विनय'दा?"

"शी, जोर से मत बोल, कोई सुन लेगा।"

देवव्रत ने आवाज धीमी करते हुए इशारे में पूछा, "विनय'दा कहां हैं?"

कन्हाई देवव्रत को एक अंधेरे झोप की ओर खींच ले गया, "हां, अब ठीक है। यहां कोई हमारी बातचीत नहीं सुन सकता। सुन, विनय'दा आये हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"कब? कहां?"

"रात को। नदी किनारे, श्मशान घाट के पास!"

"श्मशान में क्यों? वहां भी तो लोग होंगे?"

"ना, यहां भला कितने लोग मरते हैं रोज-रोज?"

श्मशान घाट के आस-पास बहुत-सी निर्जन जगहें हैं!

वही हुआ! उसी दिन, शाम को 'चरित्र गठन शिविर' में ड्रिल करने के बाद देवव्रत झटपट घर लौट आया। रात घिरते ही, यथारीति मां-बापू के साथ सोने चला गया। मां-बापू गहरी नींद में गुम हो गये, लेकिन देवू अपने बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। कन्हाई से बातचीत तय हो चुकी थी। आधी रात को वह उसकी खिड़की पर हल्की-सी ठक्-ठक् करेगा। ठक्-ठक् की आवाज सुनने के लिए देवव्रत के कान खिड़की की तरफ लगे रहे···

किसी जमाने में जैसोर की सरकार हवेली अपनी शान-शौकत के लिए काफी मशहूर थी। उनके घराने की मान-मर्यादा का भी काफी दबदबा था। दो-तीन पीढ़ी पहले तक वे लोग अथाह धन-दौलत, जमीन-जायदाद और बड़े-बड़े दालान-खलिहानों के मालिक थे। लेकिन उस वंश में चिराग जलाने को रह गये थे सिर्फ मुकुन्द सरकार और उसकी बीवी। बीवी भी अपने मां-बाप की इकलौती सन्तान! जब देवव्रत पैदा हुआ, तो मुकुन्द सरकार की खुशी का ठिकाना न रहा। वैसे मुकुन्द बाबू के सास-ससुर, मरने से पहले अपने नाती देवव्रत को नहीं देख पाये, इसकी कसक देवव्रत के मां-बापू जिन्दगी-भर अपने सीने में दबाये रहे। देवव्रत से पहले उन लोगों ने अनगिनत मन्दिरों के द्वार खटखटाये; देवी-देवताओं से मन्नतें मांगते फिरे। सिर्फ जैसोर में ही नहीं, दूर-दराज गांवों में, जहां कहीं मन्दिर और देवी-देवता प्रतिष्ठित थे, उन्होंने चढ़ावे चढ़ाये। हवेली में पधारने वाले साधु-सन्तों को भोजन खिलाते, सेवा करते और आशीर्वाद मांगते।

खैर, आशीर्वाद मांगने पर शायद मिल भी जाता है, लेकिन ऐसे कितने लोग हैं, जिन्हें अपने जीते-जी उस आशीर्वाद का सुफल भोगने का भी सौभाग्य नसीब होता है?

नकुल सरकार के यहां भी भोग-विलास की सामग्री का अभाव नहीं था। अभाव था, उन्हें भोगने वाले बेटे का! खैर, उनकी जिन्दगी में तो यह आस अधूरी ही रह गयी। बेटे की जगह बेटी पैदा हुई। उन्होंने उसे नाम दिया—सुमति!

जिस दिन सुमति पैदा हुई थी, उसकी मां रो पड़ी थी।

उनके रोने की वजह बाहर वालों की समझ में भले न आयी हो, लेकिन सुमति के बापू बखूबी समझ गये।

उन्होंने पत्नी को तसल्ली देते हुए कहा, "बेटी-बेटे में कोई फर्क थोड़े है, जी! दोनों ही हमारी सन्तान हैं।"

पत्नी ने सिसकते हुए कहा, "लेकिन बेटी तो ब्याह कर पराये घर चली

जायेगी, तब ? तब तो हमारा घर फिर सूना-का-सूना ! तब हमारी गृहस्थी कैसे चलेगी ? बुढ़ापे में हमारी देखभाल कौन करेगा ?"

...उसके बाद, बहुत सारे साल...बहुत सारा वक्त गुजर गया। वक्त के चादर पर बहुत सारी धूल जम गयी। एक दिन उसी सुमति का ब्याह भी हो गया। उस ब्याह में काफी धूमधाम भी रही। जिन लोगों ने वह ब्याह देखा था, वे आज भी उस दिन की रौनक को याद करते हैं।

लेकिन अन्त तक नाती का मुंह देखना उनके नसीब में नहीं बदा था। उन दोनों की मौत के बाद ही देवव्रत सरकार का जन्म हुआ। अपने मां-बाप की जुबानी उसने अपने नाना-नानी की कहानियां भर सुनी थीं। हां, वह उनकी अगाध जर-जमीन का इकलौता वारिस जरूर बन गया।

देवव्रत सरकार के जन्म के साथ-साथ जैसोर के सरकार वंश की मान-मर्यादा मानो दुगुनी हो गयी। लोगों की नजर में वह बच्चा बहुत सौभाग्यशाली माना गया। वह सिर्फ अपनी पैतृक धन-सम्पत्ति का ही मालिक नहीं था, बल्कि ननिहाल की अगाध धन-दौलत का भी इकलौता वारिस था।

बचपन से ही स्कूल या खेल के मैदान में भी उसके भाग्य से ईर्ष्या करने वालों की कमी नहीं थी। लोग उसे सुना-सुनाकर कहते—भगवान जिसे देता है, ऐसे ही छप्पर फाड़कर देता है।

लोगों की ईर्ष्या की वजह उसकी सिर्फ अगाध धन-सम्पत्ति ही नहीं थी, उसकी लिखाई-पढ़ाई भी जैसोर शहर के इतिहास में मिसाल थी।

अड़ोसी-पड़ोसी लंबी उसांस भरकर कहते, "बेटा हो, तो मुकुन्द बाबू के बेटे जैसा। बाप की इज्जत में चार चांद लगाने वाला।"

यूं देवव्रत सरकार से पहले भी अनगिनत छात्र स्कूली परीक्षा में अव्वल हुए थे, लेकिन देबू ? देवव्रत सरकार ? उसकी तरह इतने बढ़िया नम्बरों से कोई फर्स्ट हुआ है ? उससे पहले किसी अध्यापक ने किसी और छात्र को पढ़ाकर इतना गर्व महसूस किया है ?

मुकुन्द बाबू रोज सुबह-सवेरे टहलने निकलते थे।

उस दिन रास्ते में गुलबान अहमद से भेंट हो गयी। उन्हें देखते ही वे उनकी तरफ बढ़ आये, "आपका बेटा देबू...हमारे जैसोर शहर का मुखोज्ज्वल करेगा, सरकार बाबू, आप देख लीजियेगा।"

मुकुन्द बाबू ने चिन्तित लहजे में कहा, "लेकिन वह तो दिन-रात किताब में डूबा रहता है, यह क्या अच्छी बात है ?"

"हर्ज क्या है ? ऐसा लड़का आज के जमाने में दुर्लभ है। आप उस पर कोई रोक-टोक न लगायें। मेरी भविष्यवाणी है—एक दिन वह असाधारण आदमी बनेगा।"

"लेकिन, इतनी पढ़ाई-लिखाई से अगर कहीं उसकी आंखें खराब हो जायें, ो ?"

"आप फिक्र न करें, मैं उसे समझा दूंगा। मैंने तो उसे अपने चरित्र-गठन-शिविर का भी मेम्बर बना लिया है। रोज डायरी लिखने का भी अभ्यास करा रहा हूं। मेरे शिविर में तमाम लड़कों में सबसे अच्छा रिजल्ट उसी ने किया है।"

देवव्रत सरकार शुरू से ही ऐसा दृढ़ चरित्र इन्सान था। इसीलिए तो मैंने शुरू में ही कहा—हर नदी गंगा नहीं होती, हर पहाड़ हिमालय नहीं होता, हर मृग कस्तूरी-मृग भी नहीं, उसी तरह हर इन्सान देवव्रत सरकार नहीं होता। देवव्रत रकार को समझे बिना, सुप्रभात की कहानी अबूझ रह जायेगी।

उस दिन सुबह-सवेरे जब कन्हाई ने देवव्रत को विनय'दा के आगमन की खबर दी, ो पहले तो उसे कोई जवाब ही नहीं सूझा।

कुछेक पलों की चुप्पी के बाद उसने पूछा, "आज···रात को ?"

"हां, आज ही रात को।"

"रात···कितने बजे ?"

"यही कोई···एक बजे।"

"रात एक बजे ? अगर कहीं मां-बापू को पता चल गया तो ?"

"उन्हें कैसे पता चलेगा ? तू हवेली के पिछवाड़े वाली चहारदीवारी लांघकर आ जाना। रात दो बजे तक वापस लौट जाना और चहारदीवारी फलांगकर फिर अपने बिस्तर पर जाकर सो रहना। कुल घंटे भर की ही तो बात है। इसमें इतना डरने को क्या है ?"

कन्हाई की बातों ने देवव्रत को कुछेक पलों के लिए खामोश कर दिया। वह किसी गहरी सोच में पड़ गया। उसे कोई जवाब नहीं सूझ पड़ा।

कन्हाई ने दुबारा कहा, "मैंने विनय'दा को तेरे बारे में सबकुछ बता दिया है। तू मां-बाप का इकलौता बेटा है, भाई-बहन कोई नहीं। तेरे चरित्र के बारे में भी कहा। लिखाई-पढ़ाई में तू हरदम फर्स्ट आता है; सुलतान अहमद साहब के चरित्र गठन शिविर का सबसे बेहतरीन छात्र है, यह भी बता दिया।"

"तेरे विनय'दा ने क्या कहा ?"

"विनय'दा ने कहा—बंगाल वालेंटियर्स के लिए मुझे ऐसे ही लड़कों की जरूरत है। हमारे काम-काज के लिए ऐसे लड़के ही फिट हैं।"

"कैसा काम-काज, रे ?"

"यह सब तुझे विनय'दा ही बतायेंगे। उन्होंने मुझे कुछ नहीं बताया। अब मैं चलूं। कहीं हमें कोई देख न ले।"

जाने से पहले उसने दुबारा कहा, "तो फिर बात पक्की। रात एक बजे मैं

तेरी खिड़की ठकठकाऊंगा तू चौकन्ना रहना।"

कन्हाई के जाने के बाद भी देवव्रत काफी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा उधेड़बुन में फंसा रहा। कन्हाई के विनय'दा ने उसे क्यों बुला भेजा? वह उनके किस काम आ सकता है?

देवव्रत को याद है, उसी शाम उसके बापू ने टोका था, "क्यों, रे, क्या बात है? तेरा चेहरा इतना पीला क्यों लग रहा है? रात को सोया नहीं?"

"ना—"

"रात को देर तक पढ़ता रहा?"

"ना—"

उनके सवालों से बचने के लिए वह आंखें नीची किये अपने कमरे की तरफ चल दिया।

मुकुन्द बाबू की परेशानी और गहरा उठी। इकलौता बेटा! उनके भले-बुरे पर उनके वश'''देवू के नाना-नानी का सुनाम निर्भर करता है। अगर वही कहीं नालायक निकल जाये, तो समाज के लोग उनके नाम की खिल्लियां उड़ायेंगे।

मुकुन्द बाबू ने पत्नी से कहा, "सुनती हो, जी, अपने इस देवू की तरफ जरा ज्यादा ध्यान दो। दिनोदिन वह सूखता क्यों जा रहा है? सारी रात ही क्या पढ़ाई करता रहता है!"

सुमति भी बेटे के रंग-ढंग देखकर, चिन्तित थी। उनके भी कोई भाई नहीं था। इसलिए उनके भी मां-बाप के मन में खासा कष्ट था। जब देवू पैदा हुआ, उससे पहले ही वे दोनों परलोक सिधार गये। उसके मां-बापू, उसकी साधो के बेटे का मुंह देखे बिना ही चले गये, इसका उन्हें बेतरह खेद था।

अपनी पैतृक सम्पत्ति की देखभाल के अलावा, सास-ससुर की सम्पत्ति की देख-रेख का भार मुकुन्द बाबू पर ही आ पड़ा था। जब वे नहीं रहेंगे, तो उनकी देखभाल की जिम्मेदारी, उनके बेटे देवू पर होगी। अत उनकी भरसक कोशिश थी कि देवू सचमुच लायक इन्सान बने। इसीलिए वे हर पल उसे अपनी आंखों के सामने रखते थे। उसका खाना, उसकी लिखाई-पढ़ाई, रातों का सोना-जागना, सेहत'''बस, इन्हीं सब सोच-फिक्र में डूबे रहते। तलैया से ताजी मछली, घर की गाय का दूध-घी-दही वगैरह खिलाकर उसकी सेहत बनाने की कोशिश में जुटे रहते थे।

लेकिन अगर अपनी चेष्टा न हो, तो भला कोई किसी की सेहत सुधर सकती है?

उस दिन रास्ते में अचानक अहमद साहब से भेंट हो गयी।

देवव्रत के बापू ने छूटते ही पूछा, "देवू, कैसा चल रहा है, अहमद साहब? आपका कहना वगैरह मानता है न?"

सुलतान अहमद साहब ने आश्वस्त करते हुए कहा, "उस जैसा लड़का दुर्लभ है, सरकार साहब। समूचे जैसोर शहर में उस जैसा लड़का एक भी नहीं। किसी दिन वह काफी तरक्की करेगा। मैं उसका खास ध्यान रखता हूं।"

"मुझे तो बड़ा डर लगा रहता है। उसकी सेहत दिनोंदिन गिरती जा रही है। वह इतना सूखता क्यों जा रहा है?"

"परीक्षा करीब है! मुमकिन है, रात जाग-जागकर पढ़ाई में लगा होगा, इसीलिए···"

"खैर, पढ़ाई करना तो अच्छी बात है। लेकिन खाना-पीना क्यों कम कर दिया है उसने? हमारे यहां तो किसी चीज की कमी नहीं। आजकल तो वह मुझसे भी नपी-तुली बातें करता है। दिन-रात जाने किस सोच में बेहाल है।"

एक तरफ पिता की तीखी उत्कंठा, दूसरी तरफ देवव्रत का दिनोंदिन अन्तर्मुखी होते जाना—इस खींच-तान में बाप-बेटे का फासला भी क्रमशः बढ़ता जा रहा था। उस रात यह फासला और ज्यादा खिंच गया, जिस रात वह आधी रात को 'बंगाल वालेंटियर्स' के विनय'दा से मिला था।

उस रात बिस्तर पर लेटे रहने के बावजूद उसकी आंखों से नींद मानो उड़ गयी थी। उसके दिमाग में कन्हाई की बातें गूंजती रहीं। कन्हाई कहीं वापस न लौट जाये। कहीं थकान के मारे वह सचमुच सो न जाये।

···रात···ठीक एक बजे, उसकी खिड़की पर हल्की-सी थपथपाहट हुई।

देबू तो तैयार बैठा था। उसने खिड़की खोलकर इशारे में कहा—आता हूं।

सर्दी की कड़कड़ाती ठंड! यह कलकत्ते की ठंड नहीं थी, जैसोर की ठंड थी। जैसोर गर्मी के मौसम में अतिशय गर्म और सर्दी के मौसम में ठंडा बर्फ! स्वेटर के ऊपर शाल ओढ़े रहने के बावजूद कंपकंपी नहीं जाती।

सारी बात पहले ही तय हो चुकी थी। कमरे का दरवाजा धीरे से भेड़कर, वह दबे पांव बरामदे में निकल आया। बरामदे के बाद एक दरवाजा अभी और पार करना था। उस दरवाजे पर हल्की-सी भी आवाज हुई, तो बगल वाले कमरे में सोये मां-बापू की नींद टूट सकती थी। उस दरवाजे पर ताला पड़ा था। चाबी दीवार के ताखे में रखी थी।

यानी सारा काम बेहद खामोशी से करना था। हल्की-सी भी आवाज सर्वनाश कर सकती थी। मां जाग जायेगी और बेटा रंगे हाथों पकड़ा जायेगा।

बहरहाल, बरामदे का ताला भी बेआवाज खुल गया। अब दरवाजा भेड़कर आंगन में पहुंचना था। आंगन की चारों तरफ ऊंची-ऊंची दीवारें। वह चहारदीवारी भी आसानी से लांघी जा सके। इसका भी इन्तजाम पिछले दिन ही कर लिया गया था। चहारदीवारी के पास लकड़ी का एक मोटा-सा कुंदा रख गया था। उस कुंदे पर खड़े होकर चहारदीवारी लांघने में कोई परेशानी नहीं

होती।

निश्चित योजना के अनुसार चहारदीवारी पार होते ही समूचा डर-भय खत्म!

चहारदीवारी के पार, कन्हाई बड़ी बेचैनी से उसका इन्तजार कर रहा था। चारों तरफ अमराई! लेकिन यह आमों का मौसम नहीं था, वरना रातभर राहगीरों का आना-जाना लगा होता। आम के मौसम में लोग-बाग वहां अमिया बटोरने आते।

"क्या, रे? कहां हैं तेरे विनय'दा?"

"चुप! कोई सुन लेगा। मेरे पीछे-पीछे आ!"

कन्हाई के पीछे-पीछे चलते हुए, बरगद के पेड़ तले खड़ी एक धुंधली-सी आकृति पर नजर पड़ी।

उनके करीब जाकर कन्हाई ने दबी आवाज में सूचना दी, "देवू को ले आया, विनय'दा!"

झुटपुटे में विनय'दा का चेहरा साफ नजर नहीं आ रहा था।

विनय'दा ने सवाल किया, "कन्हाई बता रहा था, तुम हमारे 'बंगाल वालेंटियर्स' में शरीक होना चाहते हो।"

"जी—हां!"

"तुम्हारे घर में कौन-कौन है?"

"मैं! मेरे बापू और मां!"

"इन तीनों के अलावा, परिवार में और कोई नहीं?"

"ना—"

"तुम्हें हमारे दल के काम-काज के बारे में मालूम है?"

"जी! कन्हाई मुझे सब-कुछ बता चुका है।"

विनय'दा ने दुबारा दरयाफ्त किया, "तुम्हें क्या हमारे दल के उद्देश्य के बारे में पता है?"

"जी—हां, अंग्रेज फिरंगियों को मार भगाना।"

"नहीं, सिर्फ अंग्रेजों को मार भगाना ही नहीं, उन्हें खदेड़कर देश को आजाद कराना भी हमारी पार्टी का उद्देश्य है। इस काम के लिए पहले हमें अपना निजी चरित्र मजबूत करना होगा। चरित्र गठन के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है—संयम! संयम के बिना चरित्र गठन असम्भव है। दरअसल चरित्र-अर्जन के लिए चरित्र गठन पहली शर्त है।"

देवू खामोश बुत बना रहा। उसे कोई जवाब ही नहीं सूझ पड़ा।

विनय'दा ने दुबारा कहना शुरू किया, "तुम्हारे बारे में मैंने कई लोगों से सुना, इसलिए मैंने कन्हाई से कहा कि तुमसे भेंट करा दे! मेरे हुक्म पर ही वह तुम्हें यहां बुला लाया।"

अब देवू को देना ही पड़ा, "जी, आपने जो मुझे तलब किया, मैं तो उसी में धन्य हो गया। मुझे हुक्म कीजिए, क्या करना होगा?"

"आज तुम्हें कुछ नहीं करना। इस वक्त मैंने तुमसे जो कहा, घर जाकर उस पर विचार करो। सोचकर फैसला करो। तुम्हारे चरित्र का कमजोर पक्ष क्या है और मजबूत पक्ष क्या है? इस पर सोचो। एक बार मेरे आगे संकल्प करने के बाद, तुम्हारे कदम वापस नहीं लौट सकते। तुम्हें अपना सब कुछ त्याग करना होगा, समझे?"

देवू ने सिर झुकाकर सहमति जतायी।

विनय'दा ने दुबारा सवाल किया, "तुमसे एक बात और पूछनी है। मालूम नहीं, तुम यह काम कर सकते हो या नहीं, लेकिन क्या तुम कोशिश कर देखोगे?"

"बताइये, सर, मैं अपने भरसक कोशिश करूंगा।"

विनय'दा ने कहा, "देखो, जैसे आग की लौ को चाकू से काटा नहीं जा सकता, उसी तरह जो सच है, उसे भी चिरकाल तक झूठ की तरह चलाना नामुमकिन है। तुम्हीं बताओ, ऐसा मुमकिन है?"

"ना—"

"तुम इस बात पर मन-प्राण से विश्वास करते हो?"

"जी हां, मैं तो पहले भी विश्वास करता था, आज भी करता हूं, भविष्य में भी इसी पर कायम रहूंगा।"

उसका जवाब सुनकर विनय'दा की जुबान से संक्षिप्त-सा शब्द निकला, "वाह!···"

वाकई विनय'दा ने भी अपनी ज़िन्दगी में शायद ऐसा भला लड़का नहीं देखा।

उन्होंने कहा, "देखो, देवू, दल बांधकर देश को आजाद कराया जा सकता है, राजनीति की जा सकती है, फुटबॉल या क्रिकेट खेला जा सकता है, थियेटर या नाटक भी खेला जा सकता है, लेकिन इन्सान नहीं हुआ जा सकता, न ही चरित्र-वान हुआ जा सकता है। यह काम तो अकेले ही किया जाता है। बिलकुल अकेले-अकेले! जो लोग ऐसा कर पाये, वही सुकरात या ईसामसीह, चैतन्यदेव या महात्मा बुद्ध बन गये।"

देवू चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा।

विनय'दा अपनी रौ में बोलते गये, "वे सबके सब एक दिन संसार, समाज, मां-बाप—सबको छोड़कर बिलकुल अकेले हो गये। पहले वे सबके सब सांसारिक मोह-माया में आबद्ध थे, सबसे जुड़े हुए! लेकिन सच की तलाश में वे लोग दुनिया-जहान से कटकर, बिलकुल अकेले हो गये। ऐसे लोगों के चले जाने के बाद, उनके अमर हो जाने के बाद, उनके नाम से सैकड़ों प्रतिष्ठान खुल गये। लेकिन वे

लोग अपने जीते-जी हजारों प्रतिष्ठानों से जुड़े होने के बावजूद प्रतिष्ठानों से कटे हुए अलग-अलग थे।"

देबू की आवाज गूंगी हो आयी। विनय'दा की बातें वह बड़े ध्यान से सुनता रहा।

विनय'दा ने दुबारा कहना शुरू किया, "फिर मैं तुमसे मिलने क्यों चला आया? मैं इसलिए चला आया कि इस कन्हाई ने मुझसे अनगिनत बार तुम्हारा जिक्र किया। कन्हाई ने ही मुझे बताया कि तुम घर में रहते हुए भी घर से वैरागी हो, दल में रहते हुए भी दल से कटे-कटे हो।"

देबू ने कहा, "लेकिन, इसके लिए मुझे मां-बापू से काफी डांट भी सुननी पड़ती है। पता नहीं, मैं सही हूं या गलत···।"

विनय'दा ने समझाया, "तुम सही हो या गलत, इसकी फिक्र तुम मत करो। जो तुम्हें आत्मा का सच लगे, बस, वही करते जाओ। दूसरों ने क्या कहा-सुना, यह सोचने की जरूरत नहीं।"

"मेरी सोच गलत भी तो हो सकती है?"

"हां, हो सकती है। इससे बचने के लिए दुनिया की बेहतरीन किताबें पढ़ा करो। तब तुम समझ जाओगे कि तुम ठीक कर रहे हो या गलत।"

थोड़ा रुककर विनय'दा ने दुबारा कहा, "तुमने स्वामी विवेकानन्द का नाम सुना है?"

"हां···"

"उनकी कोई किताब पढ़ी है?"

"हां, उनकी जीवनी पढ़ी है।"

"उनके लिखे हुए सैकड़ों खत हैं, तुम उन्हें पढ़ डालो। स्वामी विवेकानन्द ने एक खत में कवि भर्तृहरि का जिक्र किया है। आज से दो हजार साल पहले भर्तृहरि इसी हिन्दुस्तान में पैदा हुए थे। बाद में वे घर छोड़कर, बाकी जिन्दगी संन्यासी ही गये। उनकी एक कविता है—कोई तुम्हें साधु कहेगा, कोई ढोंगी। कोई पंडित मानेगा, कोई मूर्ख। कोई ज्ञानी कहेगा, कोई अबोध! लेकिन तुम किसी की भी बात पर कान मत देना। तुम्हारा मन जिस राह को सच माने, बस, उसी पर चलते जाना। दूसरों की बात तुम हरगिज मत सुनना।"

थोड़ा ठहरकर उन्होंने बातों की अगली कड़ी जोड़ी, "तुम अपनी जिन्दगी का मकसद पूरा करने के लिए किस हद तक तैयार हो, बोलो? क्या दे सकते हो तुम? क्या कुछ त्याग कर सकते हो, बोलो?"

देबू को पहले तो कोई जवाब ही नहीं सूझ पड़ा। काफी देर तक वह सोचता रहा। वाकई वह कितना-सा त्याग कर पायेगा? क्या वह अपनी जान दे सकता है?

उसने हिम्मत बटोरकर जवाब दिया, "मैं अपनी जान तक देने को राजी हूं ?"

"लेकिन, जान तो बड़ी छोटी-सी चीज है, बिरादर ! तुम्हारे पास अपनी जान से भी ज्यादा कीमती चीज है, तुम दे सकते हो ?"

"वह कौन-सी चीज है ? भला जान से बढ़कर कीमती चीज और क्या है ?"

"भक्ति ! भक्ति दे सकते हो ?"

देवू ने सोचते हुए कहा, "जी, हां ! मैं भक्ति दे सकता हूं।"

"लेकिन, पहले अच्छी तरह सोच लो। भक्ति देना आसान नहीं। भक्ति के लिए अगर जरूरत हुई तो मां-बाप, घर-संसार, समाज सबसे नाता-रिश्ता तोड़ना होगा। तोड़ सकते हो तुम ? अच्छी तरह सोच लो।"

"जी, मैं अपनी जिन्दगी के मकसद के लिए मां-बाप, दुनिया, समाज सब कुछ छोड़ने को तैयार हूं।"

"ठीक है ! मैं तुम्हें एक दिन और देता हूं, सोचने के लिए। तुम एक दिन और सोच लो अच्छी तरह ! मुझे कल जवाब देना।"

देवू भी मानो जिद पर आ गया, "मैं आज ही वादा करता हूं, मैं अपनी जिन्दगी के मकसद के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने को तैयार हूं।"

विनय'दा तब भी राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा, "नहीं, ऐसे राजी होने से नहीं चलेगा। कल इसी वक्त मैं तुम्हें श्मशान ले चलूंगा। वहां तुम्हें श्मशानेश्वरी देवी के चरण छूकर प्रतिज्ञा करनी होगी।"

विनय'दा अपनी बात पूरी करने के बाद कन्हाई को साथ लेकर चले गये।

जाने से पहले कन्हाई ने उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "कल रात एक बजे मैं फिर आऊंगा। तू तैयार रहना। अब मैं चलता हूं।"

देवू रात के अंधेरे में उसी तरह उल्टे पांव अपनी हवेली में लौट आया। उस वक्त रात के करीब तीन बजे थे। वह चहारदीवारी लांघकर अपने कमरे में चला आया और अन्दर से उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

उसके बाद···दुनिया भर के ख्याल ! उसके मन में बार-बार एक ही सवाल चोट करता रहा, जिन्दा रहकर उसे क्या करना है ? नौकरी करेगा ? या जमींदारी की देखभाल करेगा ? डॉक्टर बनने के बाद मरीज देखकर रुपये कमायेगा ? या इंजीनियर बनेगा ? या जज-मैजिस्ट्रेट बनकर न्याय के फैसले करेगा ? या फिर वह आई० सी० एस० बनेगा ? फिर सब कुछ छोड़-छाड़कर संन्यासी हो जायेगा ? संन्यासी बनकर रामकृष्ण मिशन आश्रम में शामिल होकर, गेरुआ लबादा लपेटकर, शिव ज्ञान का पाठ करेगा और लोक-सेवा करेगा ? या फिर गृहस्थ बन जायेगा ? बीवी-बाल-बच्चों के साथ गृहस्थी बसायेगा ?

आखिर यही तो सब करते हैं? यह भी तो एक किस्म का पेशा है। उसके पिता, दादा, परदादा, बाकी पुरखे—सभी ने तो यही किया। उसके दादा ने भी तो यही पेशा अख्तियार किया था, वर्ना वह कैसे पैदा होता? जो कुछ उसके पुरखे करते आये हैं, क्या वह भी यही करेगा? इससे परे क्या कोई काम नहीं?

खैर, संसार-त्याग का तो सवाल ही नहीं उठता। यह तो पलायन होगा। लेकिन···उसे भागने की क्या जरूरत? किस डर से? किसके डर से?

अचानक दरवाजे पर जोर की खटखटाहट सुनकर वह हड़बड़ाकर जागा और बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा हुआ। दरवाजा खोलते ही सामने खड़े बापू पर नजर पड़ी।

"क्या बात है? इती देर तक सो क्या रहा है?"

देबू चुप!

बापू ने दुबारा पूछा, "तेरा चेहरा इतना सूखा-सूखा क्यों लग रहा है? फिर कहीं रात जाग-जागकर पढ़ाई तो नहीं करता रहा?"

देबू की जुबान से कोई जवाब नहीं फूटा।

बापू अपनी रौ में बोलते गये, "अब तो इम्तहान भी खत्म हो गये। अब तो थोड़ा आराम कर ले। अगर सोयेगा नहीं, तो तेरी तबीयत बिगड़ जायेगी। तब? तब क्या होगा?"

देबू ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। झटपट आंख-मुंह धोकर वह तैयार हो गया।

मां ने भी कहा, "इतनी देर तक तुमने दरवाजा नहीं खोला, तो हम दोनों बेतरह डर गये थे। अब से तुम कमरे का दरवाजा खोलकर सोया करो।"

देबू ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। खाना-पीना निपटाकर, वह स्कूल के लिए तैयार होने लगा। स्कूल में भी किसने क्या कहा, किसने क्या पढ़ाया, उसके कुछ पल्ले नहीं पड़ा।

उसके दिमाग में पिछली रात विनय'दा की बातें गूंजती रहीं।' अच्छा, जिन्दगी बड़ी है या भक्ति? अपनी जिन्दगी के मकसद के लिए वह भक्ति दे सकेगा? मां-बाप, संसार-समाज सब कुछ को जलांजलि दे सकेगा?

"हां, कर सकूंगा।"

"नहीं, इतनी अफरातफरी में जवाब देने की जरूरत नहीं। अभी चौबीस घंटे और सोचो। कल का सारा दिन पड़ा है सोचने को। अच्छी तरह सोच-विचार लो। कल रात एक बजे मैं फिर आऊंगा। तुम्हें श्मशानेश्वरी के चरण छूकर कसम खानी होगी। जिन्दगी का मकसद पूरा करने के लिए, जो चीज जिन्दगी से भी बड़ी है, वह उत्सर्ग कर दोगे। भक्ति दोगे।"

कन्हाई मौका देखकर उसके पास आ बैठा।

अकेले में उसने देवू के कान में फुसफुसाकर पूछा, "कल तेरे मां-बापू को कुछ पता तो नहीं चला ?"

"ना—"

"रात नींद आयी थी ?"

"ना, रे—"

"क्यों ?"

"दिमाग में वही सब बातें घूमती रहीं। रात भर उधेड़बुन में फंसा रहा। कब रात बीती, कब सुबह हुई, पता ही नहीं चला। दिन चढ़े, जब बापू ने दरवाजा खटखटाया तो होश आया कि सुबह हो गयी। बापू ने खूब डांटी पिलायी—"

"आज रात तुझे लेने आऊं न ?"

"हां, आ जाना।"

"अगर कहीं तेरे घरवालों को भनक पड़ गयी, तो ?"

"नहीं, किसी को पता नहीं चलेगा।" देवू ने कहा। कुछ ठहरकर उसने पूछा, "विनय'दा यहीं हैं न ?"

"हां, रहेंगे नहीं? तुझसे मिलने के लिए ही तो रुक गये, वरना उन्हें ढेरों काम है, पता है? पार्टी के काम से वे अकेले ही जिल्ले-जिल्ले का चक्कर लगाते रहते हैं। तेरी तरह और भी बहुत से लड़कों को उन्होंने अपनी पार्टी में शामिल किया है। विनय'दा का ध्यान-ज्ञान-ईमान यही पार्टी है। देख लेना, अपने विनय'दा देश को आजाद कराकर ही दम लेंगे।"

"कैसे करायेंगे देश को-आजाद ?"

"अंग्रेजों का कत्ल करके···"

"अंग्रेजों को कैसे मारेंगे ?"

"बन्दूक, रिवॉल्वर, पिस्तौल से···अंग्रेजों को गोली मारकर।"

यह सुनकर देवू बेहद फिक्र में पड़ गया। खून-खराबा वह कैसे कर पायेगा? उसे कौन देगा यह सब ?

देवू ने पूछा, "मैं यह सब कहां से पाऊंगा? कौन देगा मुझे यह सब ?"

"सब···वही विनय'दा देंगे।" कन्हाई ने कहा।

"विनय'दा कहां से लायेंगे ये सब ?"

"तू यह फिक्र छोड़ दे। विनय'दा सब इन्तजाम कर देंगे।"

"मुझे तो बड़ा डर लग रहा है, रे!"

"क्यों? किस बात का डर? किसका डर? पुलिस का डर ?"

"न···हीं, मैं पुलिस से नहीं डरता।"

"फिर ?"

"मुझे अपने मां-बापू से डर लगता है। अगर उन्हें पता चल गया तो क्या

होगा? मैं ठहरा अपने मां-बापू का इकलौता बेटा! मेरे सिवा उनका और कोई नहीं है।"

"फिर? आज का सारा दिन पड़ा है, सोच ले! सोचकर फैसला कर कि विनय'दा के प्रस्ताव पर राजी होगा या नहीं। मैं जाकर विनय'दा से कह दूंगा कि तू कसम उठाने को राजी नहीं है।"

कन्हाई आकर जा ही रहा था कि देबू ने पीछे से आवाज दी, "अरे, हां, सुन तो सही। मेरी बात सुन जा…"

वह कन्हाई के करीब आ गया। कन्हाई ठिठक गया।

देबू ने कहा, "तू भी मेरे साथ कसम क्यों नहीं उठाता?"

"भाई, मेरे इतने सारे भाई-बहन हैं। विनय'दा मुझे अपने दल में शामिल नहीं होने देंगे। घर के तमाम लोगों का जिम्मा अकेले मेरे सिर पर। बापू बूढ़े हुए। अगर मुझे कुछ हो गया, तो उन लोगों को कौन देखेगा?"

बात झूठ भी नहीं थी। देबू के सिर पर तो कोई जिम्मेदारी नहीं, इसीलिए विनय'दा ने उसे खास तौर पर चुना है।

देबू अपने घर की तरफ लौट गया। राह चलते-चलते उसके दिमाग में तमाम बातें गूंजती रहीं। तो क्या वह हार मान ले?

स्कूल पहुंचकर मुंह जुठारते ही, सुलतान अहमद साहब के 'चरित्र गठन शिविर' की तरफ भागना होगा। वहां दो घंटे ड्रिल करने के बाद, तब जाकर उसे घर लौटने की छुट्टी मिलेगी।

मुकुन्द बाबू के जिम्मे ढेरों काम रहते। जमीन-जागीर हो तो काम-काज भी लगा रहता है। किस जमीन पर कौन-सी खेती की जाये, इस बारे में हरविलास के राय-मशविरा करना भी एक काम था। हरविलास विश्वास! काफी पुराना कर्मचारी! मुकुन्द बाबू का गुमाश्ता। लोग उसे गुमाश्ता बाबू कहकर पुकारते थे।

गुमाश्ता बाबू सुबह-सवेरे ही मुकुन्द बाबू के चौपाल में मौजूद रहते।

हरविलास के आते ही मुकुन्द बाबू ने दरयाफ्त किया, "क्या पश्चिमी जमीन पर खेती शुरू हो गयी?"

हरविलास ने कहा, "जी, पूरी तरह तो नहीं। बाकी जमीनों पर बुवाई आज पूरी हो जायेगी।"

मुकुन्द बाबू ने पूछा, "आज क्या सारा दिन लग जायेगा?"

"आज दुपहरिया तक पच्छिमी तरफ की खेती पूरी हो जायेगी। उसके बाद बिल के किनारे शुरू होगी।"

कब, कहां, किस जमीन पर कौन-सी खेती की जायेगी, कौन-सी बुवाई होगी, दोनों आपस में तय कर लेते। यह उनका रोजमर्रा का कार्यक्रम था। बातचीत के बाद हरविलास लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ खेत की तरफ निकल जाता!

दोपहर के वक्त खेत के मजदूरों के लिए खाना जाया करता था। खाना विधु ले जाता था।

वह ठीक दोपहर के वक्त आता था। विधु सरकार! वह अपनी बैलगाड़ी लेकर आता, मुकुन्द बाबू के यहां भात-तरकारी तैयार रहता और विधु खाना लेकर चला जाता।

मुकुन्द बाबू की पत्नी ही सारा इन्तजाम कर रखती थी। यूं घर में कर्मचारियों की कमी नहीं थी। सभी तनख्वाहयाफ्ता लोग! हवेली में हर रोज मानो भोज का आयोजन! रोटियां तो सुबह-सबेरे ही सेंक ली जातीं। फी आदमी आठ रोटी; साथ में कोई सब्जी या दाल! खा-पीकर खेतों की ओर दौड़ पड़ते।

उस वक्त मुकुन्द बाबू को मानो किसी बात का होश नहीं रहता। हवेली के अन्दर के काम-काज की व्यवस्था घर की मालकिन के जिम्मे थी।

दोपहर को भी वही हाल! इतने सारे लोगों के लिए भात-तरकारी का इन्तजाम क्या आसान बात है?

मुकुन्द बाबू उस वक्त अपने चंडीमंडप में खेतिहर मजूरों में व्यस्त!

उस वक्त हरबिलास भी वहीं मौजूद रहता। मजूर खाना खाकर खेतों पर जाने के लिए तैयार हो जाते। हरबिलास उन्हें उन जमीनों के बारे में आदेश-निर्देश देता, जहां उन्हें जाना होता। मजूरों के जाने के बाद हरबिलास और मालिक की बातचीत शुरू हो जाती।

पूरे दिन का हिसाब-किताब वहीं बैठे-बैठे तय हो जाता। बातचीत खत्म होते ही हरबिलास खेतों की ओर चल देता।

बस, मुकुन्द बाबू के लिए यही कुछ घंटे व्यस्तता के होते, उसके बाद छुट्टी! वहां से वे हवेली के अन्दर महल में चले आते।

उस वक्त मालकिन भी थोड़ी फुर्सत में होती।

मालिक दरयाफ्त करते, "कहां है? देबू···?"

मालकिन जवाब देती, "देबू? वो तो अपने कमरे में पढ़ रहा है—"

उन दिनों उसे ट्यूशन पढ़ाने के लिए घर पर भी मास्टर साहब आते थे। घंटे भर पढ़ाने के बाद वे अपने घर लौट जाते।

मास्टर साहब से भेंट होते ही मुकुन्द बाबू दरयाफ्त करते, "मुन्ने की पढ़ाई कैसी चल रही है, मास्टर साहब?"

मास्टर साहब वही एक जवाब दोहरा देते, "बहुत बढ़िया!"

मुकुन्द बाबू दूसरा सवाल करते, "इस बार भी अव्वल आयेगा न?"

मास्टर साहब कहते, "जी, मेरा तो यही विश्वास है कि वह इस बार भी फर्स्ट आयेगा, लेकिन इसके लिए सेहत ठीक रखना बहुत जरूरी है।"

"वही तो···! वही तो अपनी समझ में नहीं आता। जितना भी मैं उसे

समझाता हूं कि बेटा, रात जाग-जागकर पढ़ाई करने की क्या जरूरत है? यह लड़का उतना ही···अपनी नींद से मानो खार खाए रहता है। इसे मैं कितना समझाता हूं कि बेटा डटकर दूध-दही वगैरह खाया करो, लेकिन वह मेरी बात ही नहीं सुनता।"

वेणीमाधव साहब पूछते, "क्यों? क्यों? सुनता क्यों नहीं?"

"कौन जाने? मुझसे तो वह बात ही नहीं करता।"

···यह भी अजूबा ही था। जिन्दगी में जो सर्वाधिक अपना हो, उससे ही अनबोला? वजह?

बस, वजह ही तो कोई नहीं समझता। समझे भी कैसे? समझने की बात ही नहीं। क्योंकि वेणीमाधव और मुकुन्द बाबू दोनों ही ठहरे आम इन्सान! वे लोग आम कसौटी पर ही तो इन्सानों की जांच-परख कर सकते हैं। जैसे सब अपने-अपने घर-गृहस्थी में रमे रहते हैं, उसी तरह की दिनचर्या वे बाकी सबसे भी उम्मीद करते हैं। कोई इस कसौटी से जरा भी इधर-उधर हुआ नहीं कि लोग उसे 'जानवर' की संज्ञा देने लगते हैं।

लेकिन हर इंसान क्या एक ही जैसा होता है?

सैनिक जब अपनी वर्दी में मार्च करते हैं, तो बाहर से सब शक्लें एक जैसी दिखती हैं। एक जैसी टोपी, एक जैसे जूते, एक जैसी कमीज, बाहर से इनमें कहीं कोई फर्क नजर नहीं आता।

लेकिन अंदर?

दरअसल इंसान के मन जैसी अबूझ पहेली दुनिया में और कुछ नहीं। अगर कोई मन के अन्दर झांककर देखता, तो हैरत से भौंचक्का रह जाता। इसीलिए तो इंसानी चरित्र को लेकर इतनी कविताएं, इतने उपन्यास, इतने नाटक वगैरह लिखे गये, लिखे जा रहे हैं, लिखे जायेंगे। जब तक इस धरती पर इंसान नामक जीव है, यही सब लिखा जायेगा, फिर भी इसकी थाह कभी खत्म नहीं होगी। आदमी चाहे, तो वह समुद्र में गोता लगाकर सतह का पता लगा सकता है, हिमालय शिखर की ऊंचाई तक नाप सकता है, लेकिन इंसान का मन?'

इंसान के मन पर कोई रिसर्च करने बैठे, तो वह भी यह दावा नहीं कर सकता कि बस, यही आखिरी बात है। इसके बाद कुछ भी नया नहीं रह जाता।

बर्ट्रेंड रसेल साहब फरमा गये हैं—जो तुम जानते हो, विज्ञान है और जो तुम नहीं जानते, वह दर्शन है।

इसीलिए तो आइंस्टाइन साहब जो-जो कह गये हैं, हम सब समझ गये हैं। लेकिन मन के बारे में सिग्मंड फायड साहब ने जो कहा, वह पूरी तरह नहीं समझ पाये, क्योंकि सारा कुछ अनुमान भर है, प्रमाण नहीं।

देवव्रत सरकार भी एक ऐसा इंसान था, जिसे सुलतान अहमद साहब भी

समझ पाये, न ही त्रेणीमाधव मास्टर, न मुकुन्द सरकार ही, यहां तक कि कन्हाई मल्लिक और उसके विनय 'दा भी उसे नहीं समझ पाये। और तो दूर, जब सबसे करीब के लोग थे, उसकी बीवी और बेटी, वे दोनों भी उसे नहीं समझ सके।

लिओनार्दो दा विंसी की अमर कृति—मोनालीसा ! दुनिया में भला कोई समझ सका है उस तस्वीर को ?

इसीलिए तो मैंने कहानी के शुरू में ही कहा, देवव्रत सरकार को गढ़ते समय शायद भगवान भी थोड़ा अन्यमनस्क रहा होगा।

आज रात भी देवव्रत यथारीति खा-पीकर सोने चला गया।

वैसे और-और दिन उसने किसी की किसी बात का न जवाब दिया, न अपनी तरफ से कोई बात की। चूंकि खाना जरूरी था, इसलिए जैसे-तैसे एकाध निवाले निगलकर, उसने हाथ-मुंह धोया और अपने कमरे में जाकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

मुकुन्द बाबू ने पत्नी से ही पूछा, "देवू क्या आज किसी बात से रूठा है ? उसने आज बात ही नहीं की।"

"क्या पता ? मुझे क्या मालूम ?"

"अपना ये देवू भी···दिनोंदिन कैसा चुप्पा होता जा रहा है।"

ये सब कोई नयी घटना नहीं थी। इकलौता बेटा ! वह भी अगर ऐसा निकले, तो जीने का मतलब ही क्या है ? यह घर-संसार फिर किसके लिए ?

देवू अपने कमरे में सोने की कोशिश करता रहा। रात ठीक एक बजे कन्हाई उसे आवाज देगा। उसके बाद विनय'दा उसे लेकर श्मशान जायेंगे। वहां श्मशानेश्वरी देवी के सामने उसे कसम दिलायेंगे। ये तमाम बातें उसके दिमाग में हलचल मचाने लगीं। कन्हाई के आने से पहले, थोड़ी देर नींद आ जाती, तो बेहतर था।

लेकिन नींद कहां ?

जैसोर शहर के तमाम लोग नींद में बेसुध ! कहीं कोई आहट नहीं। सभी खासे सुखी लोग ! मानो किसी को दुःख-तकलीफ नहीं। कोई भूखा नहीं। किसी को कोई रोग-शोक-ताप नहीं।

जितनी जिम्मेदारी है, मानो देवू के मत्थे। चारों ओर इंसान को इतना-इतना दुख-कष्ट, शोक-ताप, जलन-पीड़ा है, सबकी जिम्मेदारी का बोझ अकेले देवू को ढोना है।

हालांकि देश के लोगों के पास तन ढंकने को बित्ता भर कपड़ा तक नहीं है, यह दृश्य तो वह अपनी आंखों से देख चुका है।

बहुत बार उसका मन हुआ। इस बारे में वह बापू से बात करे, लेकिन फिर

चुप हो गया। अगर कभी वह आजाद हुआ, तो वह इसका प्रतिकार करेगा। इसका कोई-न-कोई इन्तजाम करेगा। इससे ज्यादा वह कुछ कर भी नहीं सकता।

अचानक खिड़की पर वही ठक्! ठक्!

देवू बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उसने झटपट एक कुर्ता पहना और पिछली रात की तरह सारी बाधाएं लांघकर हवेली से बाहर निकल आया।

"विनय'दा आये हैं?" देवू ने कहा।

"हां, आए हैं! वो रहे।"

कन्हाई उसे विनय'दा के पास ले गया। विनय'दा उसे लेकर मसान-घाट पहुंचे।

उन्होंने देवू से पूछा, "तुमने कुछ सोचा?"

"जी, हां, सोच लिया।"

"तो, तुम मेरे प्रस्ताव पर राजी हो?"

"रा-जी!"

"भक्ति दे सकोगे न।"

"हां, दूंगा।"

"ठीक है! तो तुम अभी···यहां···श्मशानेश्वरी की मूर्ति के पांव छूकर प्रतिज्ञा करो। चलो···"

तीनों मसान-घाट की तरफ चल दिए। निर्जन रास्ता! सिर्फ रास्ता ही नहीं, सारा-का-सारा गांव ही निर्जन! बियाबान! मानो सबके-सब इसी मकसद में में तल्लीन।

चलते-चलते देवू को लगा, मानो वह आपे में नहीं है। उस वक्त वह कहीं गुम हो चुका था···। इस दुनिया के तमाम दु.खी-पीड़ित, शोषित, अवहेलित इसानों में एकात्म हो गया है। अब वह पहले जैसा नहीं रहा, अब वह अनन्त और अशेष हो गया है।

मसान-घाट कुल आधे मिनट के फासले पर! वहां पहुंचने में उन्हें ज्यादा वक्त नहीं लगा। उस वक्त मसान-घाट भी बिल्कुल निर्जन! श्मशान आने वालों का आखिरी जत्था भी दाह-संस्कार के बाद, अपने-अपने ठिकाने जा चुका था।

श्मशानेश्वरी देवी के मन्दिर में घुप्प सन्नाटा! उस वक्त वहां कोई नहीं था। लोग चिराग जलाकर जा चुके थे, लेकिन वे चिराग अभी भी धीमे-धीमे जल रहे थे। कुछ देर बाद वे भी बुझ जाने वाले थे।

विनय'दा ने अपनी जेब से एक धारदार छुरी निकाली और देवू का हाथ खींचकर छुरी उसके हाथों में थमा दी।

"लो, यह छुरी पकड़ो।" विनय'दा ने कहा।

देवू के छुरी थामते ही विनय'दा ने कहा, "इस छुरी से अपनी बायीं

चीर डालो।"

देबू को उनकी बात समझ में नहीं आयी।

विनय'दा ने दुबारा कहा, "लो, काटो! काटो न!"

"कौन-सी जगह काटूं?"

"जहां मन करे, वहीं से काट डालो। लेकिन यूं काटना कि खून की धार फूटने लगे।"

देबू फिर भी बुत बना खड़ा रहा।

विनय'दा ने फिर कहा, "ऐसा करो, अपनी बायीं हथेली चीर डालो।"

देबू ने अपने हाथ से बायीं हथेली पर छुरी घोंप ली। छुरी घोंपते ही, तीखा दर्द उसे अन्दर तक चीर गया। खून की धार फूट निकली।

विनय'दा ने एक कलम और एक टुकड़ा कागज उसके आगे कर दिया।

उन्होंने कहा, "लो, पकड़ो यह कलम और कागज। बाएं हाथ के खून से इस कागज पर लिखो, जो मैं कहता हूं। लिखकर नीचे दस्तखत कर दो।"

देबू तैयार हो गया।

विनय'दा ने कहा, "लिखो—मैं देवी मइया को अर्पित हूं। मैं अपना जीवन देश के लिए बलिदान करने को प्रतिश्रुतिबद्ध हूं। देश को आजाद कराने के लिए मैं सबकुछ न्योछावर करने को प्रस्तुत रहूंगा। वंदेमातरम्!"

देबू उस घुप्प अंधेरे में कागज पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखने लगा। लिखते हुए उसे अपनी बायीं हथेली और ज्यादा चीरनी पड़ी ताकि ज्यादा खून निकल सके।

विनय'दा और कन्हाई—दोनों ही एकटक, खून से लिखे जाते अक्षरों को देखते रहे।

विनय'दा ने कहा, "अब नीचे अपना नाम लिखकर दस्तखत कर दो।"

देबू ने वैसा ही किया। उसी तरह मोटे-मोटे अक्षरों में उसने अपना नाम लिखा—देवव्रत सरकार!

जब उसने लिख लिया, तो विनय'दा ने कहा, "अब श्मशानेश्वरी की मूर्ति के पांवों पर हाथ रखो..."

देबू ने उनके हुक्म के मुताबिक अपना हाथ श्मशानेश्वरी देवी के चरणों पर रख दिया।

विनय'दा ने कहा, "जो कुछ तुमने लिखा, देवी मइया के चरणों पर हाथ रखकर दोहराओ।"

देबू ने जो कुछ कागज पर लिखा था, जोर-जोर से दोहराने लगा—"मैं देवी मइया को अर्पित हूं। मैं अपना जीवन देश के लिए बलिदान करने को प्रतिश्रुतिबद्ध हूं। देश को आजाद कराने के लिए मैं सब-कुछ त्याग करने को तैयार

रहूंगा। बंदेमातरम् !"

विनय'दा ने कहा, "ठीक है ! अब घर जाओ। आज तुमने जो प्रतिज्ञा की, वह किसी से, कभी मत कहना। अपने मां-बापू, नाते-रिश्तेदार किसी को भी मत बताना। मुमकिन हो, तो तुम अपने जख्म पर चूना या टिंचर-आयडिन लगा लेना, वर्ना पककर घाव बन जायेगा।"

सारा अनुष्ठान बहुत जल्दी ही सम्पन्न हो गया।

'राम नाम सत्य है' बोलते हुए कुछ लोग श्मशान घाट की तरफ आ रहे थे। उनके पहुंचने के पहले ही देबू, कन्हाई और विनय'दा ने अपने-अपने घर का रास्ता लिया।

वह दिन'''वह घटना'''देवव्रत सरकार की जिन्दगी को कितने-कितने रंगों में उतारेगी, उसने क्या खुद भी किसी दिन सोचा था ?

दुनिया के आम लोग अक्सर बचपन में ही अपने लिए चलने की राह तय कर लेते हैं और जिन्दगी भर निश्चित मंजिल की तरफ बढ़ते जाते हैं। आम बंगाली लोगों में सौ में से निन्यानवे लोगों का सपना होता है, शहर में वे एक अदद मकान के मालिक बन जायें। इससे ज्यादा वे कुछ नहीं चाहते और इसीलिए उन्हें कुछ मिलता भी नहीं। उनका एक अदद मकान हो भी जाता है, लेकिन बस, वे वहीं रुक जाते हैं और अपनी ख्वाहिशों की इतिश्री कर लेते हैं। ख्वाहिश पर विराम लगाकर वे परम निश्चिन्त होकर जिन्दगी की आखिरी सांस लेते हैं।

उसके बाद, उन्हें जो चाहिए, वह है—रुपया !

वैसे कोई-कोई शख्स इसका व्यतीक्रम भी होता है।

जो लोग व्यतीक्रम होते हैं, वे इतिहास में अमर हो जाते हैं। उनका नाम न भी लिया जाये, तो भी सब उन्हें पहली नजर में पहचान लेते हैं।

हां, तो इस कहानी का नायक है—देवव्रत सरकार ! वैसे देवव्रत सरकार का नाम कोई भी नहीं जानता। कभी जानेगा भी नहीं।

लोगों के लिए उसका नाम हमेशा अज्ञात ही रह जायेगा। यह जो चारों तरफ करोड़ों-करोड़ों लोग नजर आते हैं, उनमें वह जबर्दस्त व्यतीक्रम था, लेकिन फिर भी उसका नाम चट्टान तले हमेशा-हमेशा के लिए दबा रह जायेगा।

ऐसा क्यों हुआ ? इस 'क्यों' का जवाब पाने के लिए शुरू से अन्त तक उसकी पूरी कहानी सुननी होगी।

शुभ्रप्रभात ने भी यही कहा।

आगे कहा, "अरे, मैं भी देवव्रत सरकार को कहां पहचानता था ? मैंने उसका नाम-भर ही सुना है, आंखों से कभी नहीं देखा।"

"उसकी कहानी किससे सुनी ?"

"वह मैं तुझे पहले से नहीं बताऊंगा, वरना कहानी का सारा मजा खत्म हो जायेगा।"

"क्यों?"

"देखो न, रामायण पढ़ते वक्त अगर पहले से ही तुझे बता दिया जाये कि अन्त में सीता का पाताल-प्रवेश होगा, तो पूरी रामायण तू सुनेगा? अगर तू सीधे तीर्थस्थान में पहुंचकर देवता के दर्शन कर ले, तो तीर्थयात्रा का भरपूर आनन्द तुझे मिल सकता है?"

"ठीक है! जिस ढंग से चाहो, उसकी कहानी सुनाओ।" मैंने कहा।

सुप्रभात ने देवब्रत सरकार की कहानी शुरू की—

···वह अंग्रेजों का जमाना था। सन् 1890 की 28 अगस्त! दोपहर बारह बजे का वक्त! जो शख्श पालदार जहाज में आया और शहर कलकत्ते के बाबू घाट पर उतरा, उसका नाम था—जॉब चार्नक!

यह घटना सभी जानते हैं।

लेकिन ये अंग्रेज फिरंगी कैसे इंडिया में आकर अपने छल-बल-कौशल से धीरे-धीरे समूचे मुल्क पर अपना दखल जमा बैठे, यह कहानी हर कोई नहीं बता सकता। वजह यह है कि हर कोई अपने-अपने में मस्त हैं। लोग तो दौलत के कमाने, अपना मुनाफा सुरक्षित रखने के धंधे में बेतरह व्यस्त! अपनी बीवी-बच्चे और परिवार की सुख-सुविधा जुटाने की फिक्र में बेतरह गुम!

जो लोग देश-सेवा के काम में व्यस्त हैं, वे अपने देश की स्वार्थ-रक्षा कम और निजी सम्पत्ति-रक्षा में ज्यादा व्यस्त हैं।

इसी का नाम तो राजनीति है।

वैसे यह राजनीति ही इस युग का महापाप है! पहले की राजनीति थी—देश-सेवा! आज की राजनीति है—स्वार्थ-सेवा! पहले के जमाने में बेटा अगर राजनीति करने लगता था, तो मां-बाप कहते थे—बेटा रसातल में चला गया। आज के जमाने में राजनीति करने वाले बेटों के मां-बाप बड़े गर्व से कहते-फिरते हैं—मेरा बेटा पार्टी करता है। होल-टाइम पार्टी-वर्कर है।

लेकिन हमारा यह देवब्रत सरकार आज के जमाने का लड़का नहीं था। असल में वह गुजरे जमाने का इन्सान था, जब हिन्दुस्तान एक था। उस जमाने में हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े नहीं हुए थे। उस जमाने में राजनीति गुरुजन की निगाहों में गुनाह थी। उस जमाने में राजनीति का जिक्र आते ही गुरुजनों के भाषण शुरू हो जाते—क्या जरूरत है, बरखुरदार, इन सब झमेलों में पड़ने की? आज तक जो तुम्हारे पुरखे करते आये हैं, वही तुम भी करते रहो। दुनिया में शराफत से रहो, ठीक वक्त पर किसी सौभाग्यशाली लड़की से शादी-ब्याह करो। उसके बाद कल बच्चे होंगे, उन्हें इन्सान बनाओ। देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-

ऋण—ये तमाम ऋण चुकाते रहो और एक दिन अल्ला को प्यारे हो जाओ। स्वर्ग मे तुम्हारे पुरखों की आत्मा तृप्त हो जायेगी।

यह उस जमाने की बात है, जब सारे अभिभावकों का ही नहीं, आम लोगों का भी यही ख्याल था। अपने बेटे-बेटियों को भी वे यही सीख देते थे और खुद भी इसी नियम के पाबंद थे।

लेकिन अचानक सारा कुछ गड़बड़ कर दिया, कुछेक सिरफिरे लोगों ने।

उन सिरफिरे लोगों ने ही शुरू की थी बेसिर-पैर की खुराफातें। वही लोग कहते फिरे कि हमारे देश के लोग, अंग्रेजों की गुलामी करते थे। हम सब गुलाम हैं और हमारे बादशाह हैं—अंग्रेज! ये अंग्रेज यहां व्यवसाय करने आये थे और हमारे यहां से रुई, तम्बाकू, चमड़ा, चावल-दाल सब अपने देश उठा ले जाते और विलायत मे तैयार किये गये कपड़े, दवाइयां, सिगरेट वगैरह हमारे यहा डबल कीमतों में बेचते थे।

नतीजा यह है कि यहा के गरीब-गुरबा और अधिक गरीब हो जायेंगे और अंग्रेज व्यवसायी और ज्यादा अमीर होते जायेंगे। हमारे बुनकरों के अंगूठे काटकर उन्हें लाचार कर दिया, ताकि वे कपड़ा न बुन सकें और नतीजा यह कि हम उनके देश के मैन्चेस्टर मे निर्मित कपड़े खरीदने को विवश हैं।

उन दिनों ये चर्चे, हर कहीं, हर महफिल मे गर्म थे। यहां-वहा एकाध स्वदेशी मीटिंग भी होती रहती थी।

भाषण सुनते-सुनते देवव्रत का खून बेतरह गर्म हो उठता।

किसी-किसी दिन स्वदेशी मीटिंग पर पुलिस की लाठियां भी चलने लगीं। लाठियों की चोट से लोग जख्मी भी होने लगे।

बेटे की सोच में मुकुन्द बाबू के दिल मे अजब-सा धड़का लगा रहता।

वे अक्सर अपने बेटे को आगाह करते, सुनो, तुम इन मीटिंग-शीटिंग या लेक्चरबाजी में भूलकर भी मत जाना। समझे न?

देवू ने कभी किसी बात का जवाब नहीं दिया।

खासकर जब से उसने विनय'दा के सामने श्मशानेश्वरी मइया के चरणो मे हाथ रखकर प्रतिज्ञा की थी। उसके बाद से ही वह मानो गूंगा हो गया था।

मुकुन्द बाबू तो दिनभर जमीन-जायदाद, खेत-खलिहान में ही डूबे रहते थे। खासकर फसल बुवाई-कटाई के वक्त! कभी-कभार खुद भी खेतो मे जाकर मजदूर-खेतिहरो के काम-काज की खोज-खबर लेते। सारा कुछ हमेशा गैरो पर छोड़ देने से तो काम नहीं चलता।

ऐसा बहुत दिनों बाद हुआ, जब वे घर लौटकर अपनी बीवी से दरयाफ्त करते, "मुन्ने ने भरपेट खाना खाया?"

पत्नी जवाब देती, "हां—"

मुकुन्द बाबू दूसरा सवाल करते, "आजकल मैं उसकी तरफ खास ध्यान नहीं दे पा रहा, इस वक्त चने की फसल की कटाई का मौसम है, अब तो लगता है कि कुछ दिनों मुझे दिन-दिन भर खेतों में पड़े रहना होगा।"

"क्यों? हरबिलास तो है ही।"

"अरे, वह तो मुलाजिम है। मेरे सामने खड़े रहने पर मजदूर जितना काम करेंगे, हरबिलास के सामने करेंगे?"

"हां, यह तो सच है। वो कहावत है न, मालिक गया घर, हल उठाकर धर।"

यहां जब यह हाल था, उधर सुलतान साहब देबू को लेकर पड़े हुए थे। उसे सैकड़ों तरह की किताबें पढ़ने को देते। एक दिन उसे स्वामी विवेकानन्द की लिखी 'व्याख्यानों का संकलन' थमाते हुए कहा, "यह किताब पढ़ डालो, फिर बताना मुझे।"

देबू यह किताब ले आया। वेणीमाधव बाबू उसे शाम को पढ़ाने आते थे। वह मन-ही-मन उस मास्टर साहब के जाने का इन्तजार कर रहा था। उन दिनों उसने स्वामी विवेकानन्द का नाम भी सुना था। उनकी कोई किताब उसने नहीं पढ़ी थी।

वेणीमाधव बाबू ने उसे पढ़ाते-पढ़ाते पूछा, "तुम्हें क्या नींद आ रही है? शाम को ठीक से सोये नहीं?"

"जी हां, नींद नहीं आयी।"

"तो फिर जाओ, खा-पीकर सो रहो। मैं चला—"

मास्टर साहब चले गये। उनके जाते ही देबू वह किताब खोलकर बैठ गया। पढ़ते-पढ़ते उस किताब में बिल्कुल डूब ही गया।

स्वामी विवेकानन्द ने एक जगह लिखा था—एशिया महाद्वीप की आवाज धर्म की आवाज रही है, जबकि यूरोप की आवाज राजनीति की आवाज है।

स्वामी जी ने आगे लिखा था—इसका मतलब यह नहीं कि हमें राजनीतिक और सामाजिक उन्नति की जरूरत नहीं। दरअसल मैं यह कहना चाहता हूं कि यहां राजनीतिक और सामाजिक उन्नति अगर किंचित विलम्ब से भी हो, तो चलेगा, लेकिन यहां, हमारे देश में सबसे अव्वल स्थान देना होगा धर्म को।

देबू ये बातें पढ़कर अवाक् रह गया यानी विनय'दा ने जो कहा, वह झूठ है? आखिर वह किसे अपना पथ-प्रदर्शक माने? विनय'दा को या स्वामी विवेकानन्द को?

"देखूं, कौन-सी किताब पढ़ रहे हो?" अचानक बापू की आवाज सुनकर देबू चौंक उठा। बापू उसके पीछे ही खड़े थे।

"तुम्हारी परीक्षा करीब है और तुम इन सब किताबों में डूबे हो? यह किताब

तो परीक्षा के बाद भी पढ़ी जा सकती है।"

देबू को कोई जवाब नहीं सूझ पड़ा।

"यह किताब तुम्हें किसने दी?" बापू ने पूछा।

"सुलतान अहमद साहब ने।"

सुलतान साहब का नाम सुनकर बापू जरा नरम पड़ गये, "ठीक है। इन किताबों में ज्यादा वक्त बर्बाद मत करो। पहले परीक्षा, उसके बाद ये सब किताबें।" यह कहते हुए वे कमरे से बाहर निकल गये।

अगले दिन स्कूल में कन्हाई से मुलाकात हुई।

देबू उसे एक निर्जन कोने में खींच ले गया और उसने फुसफुसाकर पूछा, "विनय'दा यहीं हैं, या चले गये?"

"वे तो उसी रात चले गये।"

"कहां गये?"

"जहां से आये थे, वहीं लौट गये—ढाका।"

हैरत है! देबू उस रात की बात अभी तक भूल नहीं पाया था। उसके मन में अभी तक जो हलचल मची हुई थी, वह कन्हाई की समझ से बाहर थी। अब वह कन्हाई को कैसे समझाये कि उस रात के बाद···वह कोई और ही इन्सान बन गया है। सिर से पैर तक बदला हुआ। जिस क्षण उसने मां श्मशानेश्वरी के चरणों पर हाथ रखकर कसम खायी, वह बिल्कुल बदल गया था। बापू का दिया हुआ सिर्फ नाम—देवव्रत—ही अब भी पहले जैसा है, बाकी समूचा-का-समूचा इन्सान बिल्कुल बदल गया है।

···कुछ दिनों बाद उस भयंकर हादसे की खबर आ पहुंची। वह खौफनाक खबर, सिर्फ उसके ही कानों तक नहीं, बल्कि समूची दुनिया के कानों तक पहुंची थी।

सन् 1930 की 29 अगस्त!

दुनिया वाले भले उस तारीख को भुला दें, लेकिन वह उस तारीख को नहीं भूल सकता, कभी भूलेगा भी नहीं। यह खबर लंदन, दिल्ली, कलकत्ता, लंका, बर्मा—हर जगह आग की तरह फैल चुकी थी। उस जमाने में ये सभी देश हिन्दुस्तान के ही अंग थे। सभी देश·· एक देश थे।

उस दिन देबू यथारीति सोकर उठा ही था। सबसे पहला काम उसने यह किया कि पिछले दिन की डायरी लिख डाली। उसके बाद मां ने उसे नाश्ता कराया। नाश्ते के बाद वह किताबें लेकर पढ़ने बैठ गया।

अंदर हवेली में रोज की तरह मजूरों की हलचल भी शुरू हो चुकी थी। वे लोग नाश्ता-पानी करके अपने-अपने काम पर जाने की तैयारी में थे। विधु सरकार भी रोज की तरह अपने हिसाब का खाता खोलकर बैठ चुके थे।

कुछ देर बाद हरविलास गुमाश्ता भी आ पहुंचा।

उसी ने खबर दी, "सर्वनाश हो गया, मालिक, सर्वनाश हो गया।"

मुकुन्द बाबू घबरा गये। उन्होंने सांस रोककर पूछा, "कैसा सर्वनाश? किसका सर्वनाश? कैलाश कक्का क्या···चल बसे?"

"जी, ना।"

हरविलास बुरी तरह हांफ रहा था। उसने हांफते-हांफते ही खबर दी, "नारायण गंज में पुलुस के बड़े साहब का खून हो गया।"

"क्यों? किसने किया खून?"

"स्वदेशियों ने—"

मुकुन्द बाबू हतवाक् रह गये। यह बात तो सभी जानते थे कि नारायण गंज पुलिस चौकी का बड़ा साहब हद से ज्यादा अत्याचार करता था। इसीलिए, स्वदेशियों ने उसका खून कर डाला।

"तुम्हें यह खबर किसने दी?"

"शहर के बच्चे-बच्चे की जुबान पर है यह खबर। जितने लोग ढाका से जैसोर पहुंचे हैं। सबके पास यही खबर···"

"कोई पकड़ा भी गया?"

"यह किसी को नहीं मालूम।"

यह खबर सुनकर मुकुन्द बाबू कुछ पलों के लिए खामोश हो गये। वैसे मामला खामोशी के बाहर जा चुका था। अभी उसी दिन···बरिसाल जिले का देवेन्द्र विजय सेनगुप्त नामक छोकरा किसी अधजले खंडहर में छुप-छुपकर बम तैयार कर रहा था। ऐन वक्त पर, जाने कैसे एक बम उसके हाथों पर ही फट गया और उसी वक्त उसने दम तोड़ दिया। कोठरी की जमीन खून से लाल हो उठी। यह खबर मुहल्ले वाले ही मुकुन्द बाबू के कानों में फूंक गये थे।

उस दिन···मुहल्ले के नीहार घोषाल की जुबानी यह खबर सुनकर मुकुन्द बाबू घबरा गये। जाने क्यों उस खबर पर विश्वास करने का मन नहीं हुआ।

मुकुन्द बाबू अपनी रौ में फिर शुरू हो गये, "सुन रखो नीहार, एक बात मैं अभी से बता दूं। तुम याद रखना मेरी बात। असल में यह···बेटा गांधी ही सारे फसाद की जड़ है। यह आदमी एक दिन देश को रसातल में पहुंचा देगा। यह मेरी भविष्यवाणी है।"

उस दिन नीहार ने उनकी किसी बात का जवाब नहीं दिया।

लेकिन मुकुन्द बाबू के मुंह से वाक्यों की फुलझड़ियां छूटती रहीं, "तुम लोगों की उमर कम है। अभी बहुत दिनों जीओगे तुम लोग, लेकिन मैं चला जाऊंगा। जाने से पहले मैं तुम्हें बता दूं, अंग्रेजों से लड़कर कभी कोई जिन्दा नहीं रह सका है, न रह सकता है। उन जर्मनी को ही लो, अंग्रेजों के विरुद्ध इतनी लम्बी-चौड़ी

लड़ाई छेड़ दी। लाखों-लाख लोगों की जानें चली गयी, लेकिन क्या वे जीत सके? बोलो न, चुप क्यों हो? मैं कुछ गलत बक रहा हूं?"

कुछेक पल दम लेकर मुकुन्द बाबू ने दुबारा कहना शुरू किया, "अंग्रेज साहबों के पास तोपें हैं, बन्दूकें हैं, सेठ-सामंत और विशाल सेना है। सबकुछ मौजूद है। भला बता तो सही, तेरे पास क्या है, जो तू उनसे लड़ाई मोल ले बैठा? अरे, भइये, बैरिस्टरी पास की है, तो कचहरी जाकर मामला-फौजदारी में मन लगा, दुनिया की रीत निभा। इसमें तेरी भी भलाई है और देश के छोकरों की भलाई भी है। लेकिन क्या! बित्ते भर की लंगोटी पहनकर या चरखे पर सूत कातकर आखिर होगा क्या? ठेंगा होगा।"

...ये सब बहुत पुरानी बातें हैं। उसके बाद दुनिया में अनगिनत कांड घटते रहे। जाने कितनी नदियों का पानी बहते-बहते समुन्दर में जा मिला, इसका कोई अंत नहीं। इसका हिसाब-किताब भी किसी ने नहीं रखा।

लेकिन...इतने दिनों बाद, हरविलास की जुबानी ढाका की घटना सुनकर मुकुन्द बाबू को कोई जवाब नहीं सूझ पड़ा। फिर वही खून-खराबा! बरिसाल जिले के भोला गांव का वह छोकरा बम बनाते हुए बेमौत मर गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि ढाकावाले हादसे के पीछे भी उसी दल की करतूत हो!

मुकुन्द बाबू सकते में आ गये। इसी हादसे के पीछे गांधी के अलावा और कोई नहीं हो सकता।

उन्होंने अपनी राय जाहिर की, "पता है, हरविलास, मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था, वो जो गांधी बैरिस्टर है न, वही सारे सर्वनाश की जड़ है। यह गांधी देश के लड़के-बच्चों को बर्बाद करके छोड़ेगा। उन्हें सिरफिरा बना देगा। मैंने तो नीहार के आगे भी यह भविष्यवाणी कर दी है।"

थोड़ा दम लेकर उन्होंने दरयाफ्त किया, "लेकिन तुम्हें यह खबर किसने दी? कैलाश कक्का ने?"

जवाब में हरविलास ने जो किस्सा सुनाया, वह बेहद खौफनाक था...

नारायण गंज थाने का कोई बड़ा अफसर ढाका के मिटफोर्ड अस्पताल में किसी साथी अफसर को देखने गया था। उसके साथ एक और अफसर भी था। अचानक पचास फीट की दूरी से किसी ने उनकी तरफ रिवॉल्वर का निशाना लगाया—धांय! और वह साहब उसी दम धरती पर गिरा और ढेर हो गया।

"अरे, कब?"

"जी, कल ही।"

मुकुन्द बाबू का सिर चकरा गया। अब बंगाली लोगों का क्या होगा?"

यूं सिर्फ बंगाली ही नहीं, सारे मुल्क में इसी किस्म के कांड! कहां कानपुर, कहां पंजाब, कहां पूना—हर जगह ये काले-कलूटे हिन्दुस्तानी गोरे साहबों का

कत्ल कर रहे हैं। ये सब दंगे-फसाद आखिर कहां जाकर दम लेंगे ? कहां अन्त होगा इसका ?

मुकुन्द बाबू ने कहा, "खैर, छोड़ो ! जायें सब कमबख्त जहन्नुम में। मुझसे अब और नहीं सोचा जाता। मैं तो अब बूढ़ा हुआ, उम्र के तीन हिस्से गुजार कर चौथेपन में आ पहुंचा। अब तो मुझे सिर्फ अपने बेटे की फिक्र लगी रहती है। मैं उसी को लेकर परेशान हूं। खैर, छोड़ो; यह बताओ कि आज क्या पश्चिमी किनारे काम शुरू कर रहे हो ?"

यह हरविलास ही मुकुन्द-बाबू का आसरा-भरोसा है। जितने दिन उसके हाथ-पांव चुस्त हैं, तब तक वे भी सिर उठाकर चल सकेंगे। उसके बाद ? खैर, भविष्य को लेकर अब वे परेशान होंगे। भविष्य में देबू भी अपनी सामर्थ्य भर करेगा, वरना सारा कुछ मिट्टी हो जायेगा।

कुछ देर बाद हरबिलास भी चला गया। मुकुन्द बाबू अपने रोजमर्रा के काम-काज की तैयारी में जुट गये। हर रोज उन पर काम का दबाव ! अच्छा है, काम-काज में डूबे हैं, तभी चैन भी है।

अगले दिन स्कूल पहुंचते ही कन्हाई लपककर उसके पास चला आया। उसने फुस-फुसाकर कहा, "तुझे एक बात बतानी है, रे देबू !"

"मुझे ? कौन-सी बात ?"

"बाद में बताऊंगा। जरूरी बात है।" यह कहकर वह दूसरी तरफ चला गया।

देबू के मन में खलबली मच गयी। ऐसी कौन-सी बात है, जो सब लोगों के सामने नहीं बतायी जा सकती ?

कई घंटे बीत गये कन्हाई जाने कहां लापता हो गया। वह कहीं नजर नहीं आया।

जब स्कूल बन्द होने वाला था, कन्हाई देबू के सामने एकदम से प्रकट हो गया।

"क्यों, रे, तू था कहां ?" देबू ने पूछा।

"अजब झमेले में फंस गया हूं, रे।"

"कैसा झमेला ?"

"वह मैं बाद में बताऊंगा।"

"बाद में क्यों ? अभी बता न—"

कन्हाई बताने को राजी नहीं हुआ। उसकी वही एक रट कि वह बाद में बतायेगा।

"लेकिन, क्यों ? बाद में क्यों ?"

कन्हाई की आंखों में अजब-सा भय तैर गया।

उसने कहा, "नहीं, रे, सच्ची बड़ा झमेला हो गया है। मैं बेहद परेशान हूं।"

"क्यों?"

"कहा न, बाद में बताऊंगा।"

"लेकिन, बाद में क्यों?"

"अभी आस-पास कोई सुन लेगा। तुझे अकेले में बताऊंगा।'

देबू से देरी बर्दाश्त नहीं हो रही थी। कन्हाई दिनभर क्लास से गायब रहा। आखिर वह किस बात में इतना व्यस्त है। देबू की समझ में नहीं आया। कौन-सा झमेला आ पड़ा उस पर?

जब स्कूल की छुट्टी हो गयी, तो भी देबू के पांव घर की तरफ नहीं उठ पा रहे थे। जब छात्रों की भीड़ थोड़ी छंट गयी, तो कन्हाई पर नजर पड़ी, जो भागते हुए उसी की तरफ आ रहा था।

उसके करीब आते ही देबू ने छूटते ही पूछा, "क्यों रे,···तेरा चक्कर क्या है?"

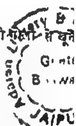
"बताता हूं! बताता हूं! पहले तू वादा कर, किसी से कहेगा तो नहीं?"

"वादा करता हूं, किसी से कुछ नहीं कहूंगा।"

"पता है, ढाका में क्या हुआ है?"

"ना!"

"ढाका पुलिस के आई० जी० लोमैन साहब का पिस्तौल की गोली से खून हो गया।"



"अरे! खून किया किसने?"

"विनय'दा ने!"

"विनय'दा ने?"

"इस खबर ने समूचे देश में तहलका मचा दिया है।" उसने जरा ठहरकर फिर कहा, "लेकिन, तू इस बारे में किसी से कुछ मत कहना।"

"लेकिन···विनय'दा ने खून किया कैसे होगा?"

"पिस्तौल से! सुना है, आज के अखबार में पूरी कहानी निकली है। लेकिन भइये, पचास फीट दूर से···किसी खास आदमी को मार गिराना क्या आसान है?"

देबू ने दरयाफ्त किया, "कब मारा? सुबह या शाम?"

"अरे, ऐन सुबह-सुबह! नौ बजकर पन्द्रह मिनट।"

"अच्छा, विनय'दा को कैसे खबर हो गयी कि पुलिस अफसर उसे वक्त मिट्‌फोर्ड अस्पताल आयेगा?"

"अरे, भइये, विनय'दा अकेले तो नहीं ! उनके दल में और भी बहुत सारे लड़के हैं। वे लड़के भी मेरी तरह देवी मइया को छूकर, देश का काम करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। वे लोग ही खबर लाये थे कि लोमैन साहब और हडसन साहब, दोनों ही उस दिन, उसी वक्त अस्पताल आयेंगे—"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद विनय'दा मौके की ताक में थे। लोमैन और हडसन साहब आपस में बातचीत करते हुए अस्पताल की लॉन में दाखिल हुए, उसी वक्त अपने दोनों हाथों में दो-दो पिस्तौल थामे, विनय'दा ने गोली चला दी। दोनों गोली लोमैन साहब का सीना चीरती हुई आर-पार हो गयीं और वे जमीन पर लोट गये। हडसन साहब के बदन पर भी तीन गोलियां लगीं।

"यह लोमैन साहब था कौन ?"

"लोमैन था ढाका पुलिस का इंस्पेक्टर जेनरल ! और हडसन ढाका पुलिस का सुपरिन्टेन्डेन्ट।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर हुआ यह...कि आज सुबह नौ बजकर पन्द्रह मिनट पर खून हो गया। सुनने में आया है कि काफी कोशिशों के बावजूद उसे बचाया नहीं जा सका।"

"और विनय'दा ?"

"खबर मिली है, कोई एक ठेकेदार उस घटना का चश्मदीद गवाह था। उसने विनय'दा का पीछा किया और दौड़कर उन्हें दबोच लिया। लेकिन विनय'दा ठहरे व्यायाम करने वाले हट्टे-कट्टे इंसान ! वह बुड्ढा उनसे क्या जीतता ? विनय'दा ने एक झटका दिया और उस आदमी की पकड़ छुड़ाकर भाग खड़े हुए।"

थोड़ा ठहरकर कन्हाई ने दुबारा कहा, "लेकिन ये बातें तू किसी से कहना नहीं—"

"भई, मैं तो प्रतिज्ञाबद्ध हूं कि जिन्दगी में कभी, किसी को, कुछ नहीं बताऊंगा।"

"हां, किसी को कुछ मत बताना, चाहे वह तेरा बापू हो या मां, किसी से कुछ मत कहना।"

मैंने पूछा, "उसके बाद ?"

ऐसा लगा, सुप्रभात को सब-कुछ मालूम है। वह सिर्फ देवव्रत को ही नहीं पहचानता उस जमाने का सारा इतिहास उसकी उंगलियों पर है। देवव्रत का चरित्र कैसे और किन परिस्थितियों में पुख्ता होता गया, किस हालत में वह पैदा हुआ था, किसे आदर्श मानकर वह बड़ा हुआ—सारी कहानी उसे मालूम थी।

देवव्रत कभी-कभार अपने किसी दूर के रिश्ते के काका के यहां कलकत्ता

आया करता था। दूर के रिश्ते के काका सही, लेकिन बिल्कुल सगे थे। काका किसी स्कूल में हेडमास्टर थे। काकी तो बहुत पहले ही रामजी को प्यारी हो गयी थी। दुनिया में वे अकेले जीव थे। गोलकेन्दु सरकार का नाम लेते ही सबके सब उन्हें फौरन पहचान लेंगे।

लोग फौरन कहेंगे, "अच्छा-अच्छा ! आप हमारे मास्टर साहब के पास आये हैं? आप यहां से सीधे चले जाइये। दक्खिन की तरफ जो पहली गली आये, मुड़ जाइये। बस, वहां चार नम्बर वाला मकान हेडमास्टर साहब का है। आप उस मकान का कुंडा खड़खड़ाइयेगा, एक आदमी बाहर निकलकर आयेगा। वह उनका नौकर है—गोष्ठ ! आप उसी से मास्टर साहब के बारे में पता कीजिएगा। वह आपसे बैठने को कहेगा और···"

चाहे गर्मी की छुट्टी हो या दुर्गा पूजा की, स्कूल की छुट्टी होते ही देवव्रत सीधे अपने काका के घर चला आता। यहां वह कुछ दिनों रहता और छुट्टी खत्म होते ही वह अपने गांव दौलतपुर लौट जाता।

गांव से आते वक्त देवू अपने काका के लिए दौलतपुर का नलेन गुड़ या ताजा मधु भी लाया करता था। ये सब असली चीजें कलकत्ते में नहीं मिलतीं। गोष्ठ वे चीजें अपने मालिक को खिलाता-पिलाता। काका की जान तो जैसोर में पड़ी रहती, लेकिन पेशा कलकत्ते में था। इसीलिए पत्नी की मृत्यु के बाद भी वह अपने स्कूल के छात्रों का मुंह देखकर वहीं बस गये थे।

मुकुन्द बाबू ने काका के रिटायर होने के बाद उन्हें खत भी लिखा—अब कलकत्ते में रहकर क्या करना है, तुम यहां चले आओ। यहां अकेला मैं ! मुझसे इतनी सारी जमीन-जायदाद की देखभाल नहीं हो पाती। अगर तुम चले आओ, तो मेरा बोझ शायद कम हो। कलकत्ते में जिन्दगी गुजारने से फायदा ? यहां का हवा-पानी भी अच्छा है। इसके अलावा कलकत्ते के मुकाबले यहां चीजें भी काफी सस्ती हैं। यूं भी तुमने सारी जिन्दगी कड़ी मेहनत की, अब यहां आ जाओ और थोड़ा आराम करो।

लेकिन काका गांव वापस लौटने को राजी नहीं हुए। बापू के खत के जवाब में उन्होंने लिखा—अपने छात्र-छात्राओं के लिए मुझे अभी और कुछ दिनों यहां रहना होगा। बच्चों को इन्सान बनाना मेरे जीवन का संकल्प है। जितने दिनों इस शरीर में बूंद भर भी सांस मौजूद है, वह मैं उनकी भलाई में खर्च करना चाहता हूं। जिन्दगी में मुझे कोई आशा-आकांक्षा नहीं।

इन्हीं गोलक काका के यहां देवू का बंकू से परिचय हुआ था। सिर्फ बंकू ही नहीं, और भी बहुत सारे विद्यार्थियों से जान-पहचान हुई थी। लेकिन, बंकू से वह कुछ ज्यादा ही घनिष्ठ हो उठा था।

अपनी पढ़ाई खत्म करके, अपने घर की तरफ खाना होता, देवू भी उसके साथ वतियाते हुए पैदल-पैदल काफी दूर निकल आता।

देवू जव पहली वार कलकत्ता आया था, अपने आस-पास जो भी देखता, हैरत से अवाक् रह जाता। यहां की ट्रामें, दो-मंजिली वसें, विजली की रोशनी, नल का पानी—सारा कुछ उसमें विस्मय जगा जाता। इसके अलावा उसने यहां एक और अजूवा देखा। कोई सफेद-सी चीज ! होठों में दवाकर, उसे माचिस दिखाकर कश खींचते ही मुंह से धुंआ निकलने लगता।

देवू जव पहली वार दौलतपुर गांव से कलकत्ता शहर आया था, तो उसने काका से पूछा था, "काका, वो सफेद-सफेद-सी क्या चीज है ? मुंह से धुंआ निकलता है ?"

काका ने समझाया, "उसे सिगरेट कहते हैं। वदमाश लोग पीते हैं इसे। तुम कभी मत पीना।"

"क्यों ? पीने से क्या होता है ?"

"पीने से वीमारी लग जाती है।"

"लेकिन साहव लोग भी तो पीते हैं इसे। क्या वे लोग भी वदमाश होते हैं ?"

काका ने कहा था, "ये साहव लोग शरीफ होते हैं, यह तुझसे किसने कहा ?"

उसके वाद···जव वह कुछ वड़ा हुआ, तो उसकी समझ में आ गया, ये अंग्रेज वाकई वदमाश होते हैं। यह वात उसे दौलतपुर के सुलतान साहव, कन्हाई, विनय'दा—सवने वतायी थी। इसीलिए तो विनय'दा ने ढाका पुलिस के सवसे वड़े अफसर लोमैन साहव को गोली मार दी। यही सोचकर तो विनय'दा के 'वंगाल वालेंटियर्स' के लड़के अपना-अपना जीवन वलिदान कर देने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

वंकू से वातचीत में देवू को पता चला कि उसके यहां वहुत सारी अच्छी-अच्छी कितावें हैं।

देवू ने पूछा, "मुझे एक किताव पढ़ने को देगा ?"

"कौन-सी किताव ?"

"अश्विनी कुमार का भक्तियोग।"

वंकू ने तो अश्विनी कुमार का नाम तक नहीं सुना था। उसने कहा, "मैं खोज देखूंगा। अगर मिल गयी, तो तुझे पढ़ने को दे दूंगा।"

उसके वाद···एक दिन उसी ने आकर सूचना दी, "वह किताव मिल गयी है, रे ! लेकिन डैडी ने उसे वाहर ले जाने को मना किया है। तू मेरे घर आकर पढ़ ले।"

देवू उसी सिलसिले में वंकू के घर जा धमका। पहले ही दिन उसके पांवों में दो अलग-अलग रंग के जूते देखकर वंकू समझ गया, वह कितना पगला लड़का है।

यूं भी दुनिया में हजारों किस्म के पागल होते हैं, लेकिन देवव्रत जैसा पागल लड़का शायद ही मिले।

...वही बंकू एक दिन जब सिगरेट पी रहा था, देबू ने देख लिया। उसने अवाक् होकर पूछा, "तू सिगरेट पीता है?"

"हां, पीता हूं, लेकिन सबके सामने नहीं, सबसे लुक-छिपकर।"

"यानी यह बात तू भी समझता है कि सिगरेट पीना बुरी बात है, तभी तो तू लुक-छिपकर पीता है।"

"बुरा-भला मैं नहीं समझता। सिगरेट पीना मुझे अच्छा लगता है, तभी पीता हूं।"

"लेकिन सिगरेट तो बदमाश लोग पीते हैं!"

"किसने कहा?"

"और कौन कहेगा? मेरे काका ने कहा—"

"धत्! बकवास बात है। मैंने तो कितने ही बड़े-बड़े लोगों को सिगरेट पीते देखा है। इसके अलावा साहब लोग भी तो पीते हैं सिगरेट।"

"तो साहब लोग कौन-से भले मानस हैं? वे लोग तो सबसे बड़े बदमाश हैं।"

"यह तू क्या बकता है? साहब लोगों के पास कितनी अथाह दौलत है। वे लोग हमसे हजार गुना ज्यादा रईस हैं। वरना हमारे देश के तीस करोड़ लोगों को यूं गुलाम बनाकर रख सकते थे?"

देबू बंकू की तरफ एकटक देखता रहा।

बंकू ने कहा, "सच्ची, तू निरा पागल है, वर्ना कोई एक पांव में सफेद जूता और दूसरे में काला जूता पहन सकता है?"

देबू ने जवाब दिया, "हां, दोस्त पागल ही हूं, इसीलिए तो मैं सिगरेट नहीं पीता। जो सब करते हैं, वह मैं नहीं करता, कभी करूंगा भी नहीं। चटगांव के मास्टर'दा, जो अंग्रेज साहबों से जूझ पड़े और मुठभेड़ में अपनी जान से हाथ धो बैठे; विनय'दा, बादल'दा, दिनेश'दा, जो सोमैन सिमसन साहब को गोली मारकर खुद शहीद हो गये, वे लोग क्या पागल थे? उन लोगों ने अपनी जानें क्यों दीं? वे लोग भी तो औरों की तरह नौकरी-चाकरी करके अपनी गृहस्थी बसा सकते थे? शायद वे सब पागल ही थे। मैं भी पागल हो जाना चाहता हूं, उन लोगों की तरह! लेकिन हो कहां पाता हूं?"

अब इस बात का क्या जवाब देता बंकू? वह खामोश रहा।

देबू ने कहा, "ठीक है! सभी सिगरेट पीते हैं, इसलिए तू भी पीये जा। सभी लोग नौकरी करते हैं, इसलिए तू भी ढूंढ ले एक अदद नौकरी। सब लोग शादी-ब्याह करके अपनी-अपनी घर-गृहस्थी बसाते हैं। तू भी वही करना। लेकिन, भइये, जो सब करते हैं, मैं वह नहीं करना चाहता।"

"तो तू बड़ा होकर जिन्दगी में करेगा क्या ?"

"मैं ? त मेरी बात पूछ रहा है ?"

"हां-हां, तेरे ही बारे में पूछ रहा हूं।"

"मैं···मैं पागल होने की कोशिश करूंगा।"

"पागल होने की ? तू क्या बक रहा है ?"

देबू ने जवाब दिया, "हां, कितने-कितने लोग जाने कहां से कहां पहुंच गये। कोई मजिस्ट्रेट बन गया, कोई हाकिम, कोई बैरिस्टर, वकील तक बन गये। कोई आई० सी० एस०, आई० पी० सी०, आई० ए० एस० के पद पर पहुंच गया, प्रोफेसर-टीचर तक बन गये। कुछ लोग साधु-महन्त-स्वामी जी बन बैठे। ऐसे भी लोग हैं, जो हिमालय पर्वत पर जाकर बैरागी, बाबाजी, गुरुजी के रूप में आश्रम खोल बैठे। कुछ लोग डॉक्टर, इंजीनियर, कलाकार, कवि बन गये। इनमें से कुल एक अदद इन्सान अगर कुछ नहीं बन पाया, तो भी क्या फर्क पड़ता है? चलो, मैं पागल ही सही। वैसे सचमुच पागल हो जाना तो मुश्किल है। चलो, मैं पागल होने की कोशिश तो करूं।"

उसके बाद···दुनिया में कितना कुछ घट गया। सन् 1901 में जब बूअर युद्ध समाप्त हो गया, रूस और जापान के महायुद्ध के तोड़-जोड़ शुरू हो गये। दुनिया वाले अचरज से मुंह बाये इन्तजार में थे कि अब क्या होने वाला है? उनका कहना था कि इस महायुद्ध में अगर जापान हारता है, तो समूचा एशिया यूरोपीय ताकतों के कब्जे में चला जायेगा। उसके बाद वे लोग ही एशिया के मालिक-मुख्तार कबूल किये जायेंगे। उनकी पूजा होगी। उन्हें श्रद्धा-सम्मान मिलेगा और रूस अगर हार गया, तो एशिया के तमाम मुल्कों को मानो नयी संजीवनी शक्ति मिल जायेगी और लोग हमेशा-हमेशा के लिए हर तरह के सर्वनाश से सुरक्षित रह सकेंगे।

जिस पत्रिका ने यह भविष्यवाणी की थी, उसका नाम था—द कर्जन गजट और प्रकाशन तारीख थी 1904 की 1 फरवरी!

सन् 1904 को ही 8 फरवरी के दिन सरकारी तौर पर जापान और रूस का जंग छिड़कर ही रहा। ठीक उसी दिन जापानी टर्पिडो ने रूस के जंगी जहाजों पर हमला बोलकर, उन्हें पानी में गर्क कर दिया और पोर्ट आर्थर जैसे विशाल बन्दरगाह तक को तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर डाला।

उस दिन एशिया के तमाम भूखंडों के लोगों को इस खबर से काफी आसरा-भरोसा बंधा। लोगों का खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आया। वे लोग आनन्द से नाच उठे, खासकर इंडिया के लोग! यानी अब उनकी हताशा के दिन खत्म। 1904 की 13 फरवरी को 'बंगवासी' पत्रिका में खबर छपी—सारे भारतवासी,

खासकर समस्त बंगाली समाज आज ईश्वर से प्रार्थना करे कि जापान इस युद्ध में विजयी हो। हमारे पूरब के आसमान में दुबारा सूर्योदय हो।

ठीक वही हुआ!

कहना चाहिए, उसी दिन से पूरब के आकाश में सूर्योदय की शुरुआत हुई और एक-एक करके उदित होने लगे हजारों-हजार, लाखों-लाख! अरविन्द से लेकर रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र, सूर्य सेन और उसके बाद महात्मा गांधी, सुभाष बोस, विनय, बादल, दिनेश और सबसे अंत में इस कहानी के प्राण-पुरुष देवव्रत सरकार!

आज उस लम्बी फेहरिस्त में सबका नाम है, लेकिन हमारे देवव्रत सरकार का नाम कहीं नहीं। देवव्रत सरकार का नाम चिरकाल के लिए मिट गया। उसकी कहानी सिर्फ सुप्रभात को मालूम है।

···लेकिन यह सब तो बहुत दिनों बाद की बात है। बाद की बातें बाद में। यही तो नियम है। फिर मैं बाद की बात पहले क्यों बता रहा हूं? चलिये, पहले की कहानी पहले—

उन दिनों देवव्रत स्कूल की दहलीज पार करके कॉलेज में दाखिल हुआ था। एक दिन कॉलेज की परीक्षाएं भी पास कर लीं।

कॉलेज की पढ़ाई खत्म होते ही बापू ने उसे घेर लिया।

उन्होंने बेटे से दरयाफ्त किया, "अब क्या करोगे? कौन-सी लाइन लोगे? डॉक्टरी पढ़ोगे? मेरा ख्याल है कि तुम्हारे लिए डॉक्टरी की पढ़ाई ही ठीक रहेगी।"

देवव्रत ने जवाब दिया, "ना! डॉक्टरी नहीं पढ़ूंगा।"

बापू ने कहा, "ना! ना!! डॉक्टरी ही पढ़ो तुम! इससे हजारों-लाखों लोगों की भलाई होगी। हमारे गांव में एक भी अच्छा डॉक्टर नहीं, इसके अलावा तुम्हें भी काफी आमदनी होगी।"

"तुम भी, बापू···अगर मुझे दौलत मिलने भी लगे, तो इससे भला गांव के लोगों की क्या भलाई होगी?"

"गांव के लोगों को बीमारी-आराम में उन्हें डॉक्टर नसीब नहीं होता। तुम डॉक्टर हो जाओगे, तो उनका इलाज कर सकोगे!"

"लेकिन···उनके लिए तो सरकारी अस्पताल मौजूद हैं। बीमारी के वक्त वे वहां जा सकते हैं। वहां उन लोगों को दवा मिलेगी, बिना पैसे का डॉक्टर भी मिलेगा।"

"अगर तुम ऐसा सोचते हो तो ऐसा करो कि डॉक्टरी पास करके किसी सरकारी अस्पताल में नौकरी कर लेना।"

उस दिन बापू की बातें सुनकर देवू के चेहरे पर घृणा-क्षोभ और वितृष्णा के मिले-जुले भाव झलक उठे।

लेकिन उस वक्त उसने अपने को संयत कर लिया। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं भूखा मर जाऊंगा, लेकिन अंग्रेजों की खैरात में दी हुई नौकरी, हरगिज नहीं करूंगा।"

"क्यों? ये अंग्रेज साहब तो हमारे देश के राजा हैं। वे लोग ही तो हमारे देश के कर्ता-धर्ता-विधाता हैं। उनका नमक खाते हो, और उन्हीं की चाकरी करने में एतराज? जिसका खाते हो, उसे ही गाली देते हो? अंग्रेजों ने भला ऐसा क्या अन्याय कर दिया?"

उनकी बातें सुनकर देवव्रत के तन-बदन में क्रोध-घृणा और क्षोभ के सांप रेंग गये। मन में ऐसी खलबली मची कि वह उत्तेजित हो उठा।

उसने तिलमिलाकर कहा, "आप अंग्रेजों के अन्याय की बात पूछते हैं? आप को खुद दिखायी नहीं दे रहा कि अंग्रेज कौन-सा अन्याय कर रहे हैं? अरे! इन लोगों ने हमारे देश के लिए एक भी भला काम किया है? इन अंग्रेजों ने हमारे देश के लोगों के मुंह से उनका आहार छीनकर, अपने ऐशो-आराम का इन्तजाम नहीं कर लिया? हमने ऐसा कौन-सा जुर्म किया है, जो 'वंदेमातरम' कहने भर से अंग्रेज साहब हमें अपनी गोलियों का शिकार बनाते हैं? अंग्रेजों ने हमारे देश के बुनकरों का अंगूठा काटकर, अपने देश के मैन्चेस्टर के कारखानों में तैयार किये गये धोती-साड़ी पहनने को लाचार कर दिया है, भला क्यों? क्यों? ऐसा करके उनके देश के लोग यहां इतनी-इतनी दौलत कमाकर अमीर हो सकते हैं, लेकिन इसके लिए हम क्यों फाके करें? हम क्या इन्सान नहीं? जो नमक हम एक पैसे में खरीद सकते हैं, उसके लिए हम दस पैसे क्यों चुकायें? अंग्रेजों ने नमक पर टैक्स क्यों लगाया? रेल के जिस डिब्बे में अंग्रेज साहब सफर करेगा, उसमें हम सफर क्यों नहीं कर सकते? हमारा रंग काला है, इसलिए क्या हम इन्सान नहीं? हम क्या गाय-भैंस या भेड़-बकरी हैं? हमारे देह का रंग काला है, क्या इसलिए हमारे खून का रंग भी काला हो गया और अंग्रेज साहबों की चमड़ी चूंकि सफेद है, इसलिए उसका खून भी सफेद है?

मुकुन्द सरकार अपने बेटे को पहचानते थे। उन्होंने गौर किया था, उनका बेटा छुटपन से ही आम बच्चों जैसा नहीं है, जरा अलग-थलग है। देवू ने बचपन से ही विलायती कपड़ों का बहिष्कार कर दिया था। खद्दर पहनकर ही गुजारा करता आया था। अभी हाल ही में, कई महीने उसने चरखे पर अपने हाथों से सूत भी काता था। सिर्फ विलायती कपड़े ही नहीं, घड़ी भी चूंकि विलायत निर्मित थी, इसलिए उसने कलाई पर कभी घड़ी तक नहीं बांधी।

लेकिन डॉक्टरी पढ़ाई के मामूली-जिक्र पर वह यूं भड़क जायेगा, यह उन्होंने

नहीं सोचा था।

उन्होंने कहा, "इन्हीं सब बातों के लिए अगर साहब लोग तुम्हारे कोपभाजन हैं, तब तो तुम्हारी किस्मत में काफी दुःख बदा है। वे लोग यह देश छोड़कर कभी नहीं जाने वाले—"

"कौन कहता है कि नहीं जायेंगे?" उसने तैश में पूछा।

"मैं कहता हूं, वे लोग नहीं जायेंगे। तब अगर एक बार फिर जर्मनी से अंग्रेजों की जंग छिड़ जाये, तो देख लेना; ये अंग्रेज, जर्मनी की क्या दुर्गति बनाते हैं? तब ये अंग्रेज हमारे देश की छाती पर और जमकर बैठ जायेंगे।"

"अंग्रेज जंग में जीतें या हारें, यह हमारा सिर-दर्द नहीं। एक-न-एक दिन हम इन अंग्रेजों को अपने देश से जरूर खदेड़ देंगे।"

"अरे, कौन-सी तुम लोगों के हाथों में पिस्तौल है, जो तुम उन्हें दन्न् से गोली मार दोगे? वो था न कोई छोकरा···चटगांव का सूर्य सेन। उसने भी तो कोशिश की थी, नतीजा क्या निकला? कुछेक सिरफिरे पागलों ने झूठमूठ ही पुलिस की पिस्तौल की गोलियां खाकर अपनी जानें गवायीं। हजारों-हजार लोग जेल में ठूंस दिये गये।"

"खैर, झूठमूठ ही जान दी या सचमुच, इसका फैसला तो इतिहास करेगा। हम-आप कौन हैं फैसला देने वाले?"

"इतिहास माने?"

"वह आप नहीं समझेंगे··"

बापू अब पूरी तरह भड़क गये। उन्होंने चीखकर कहा, "हां, हां, मैं नहीं समझूंगा, समझेगा तो तुम लोगों का वो बुड्ढा गांधी। उस बुड्ढे ने बैरिस्टरी क्या पास की है, एकदम से महान् समझदार शख्स बन गया। इसी बुड्ढे ने ही बड़े दावे से एलान किया था कि लोग अगर उसकी बातें मानकर चलें, तो वह दस साल के अन्दर आजादी ले आयेगा? ले आया वह आजादी? चले गये अंग्रेज देश छोड़कर? आ गयी आजादी?

"मैं पूछता हूं, आप लोगों ने पूरी तरह उनकी बातें मानी थीं? आप ही क्या, किसी ने भी मानी थीं?"

"बको मत! हम लोग पागल तो नहीं, जो उसका कहना मानें। उसकी बातों में आकर झूठमूठ ही कुछेक हजार छोकरे स्कूल-कॉलेज छोड़-छाड़कर बर्बाद हो गये। उनका जो नुकसान हुआ, उसका हरजाना कौन देगा? तुम भी तो स्कूल की लिखाई-पढ़ाई खत्म कर देना चाहते थे। उस दिन अगर तुम भी उस गांधी के कहे में आ जाते, तो बताओ, कैसा सर्वनाश हो जाता। उस वक्त मैं ही था, जिसने तुम्हें समझा-बुझाकर ठंडा किया। इसीलिए आज तुम इन्सान बन पाये, वरना और छोकरों की तरह तुम भी जहन्नुम में पहुंच जाते।"

अचानक मां कमरे में दाखिल हुईं। उन्होंने मुकुन्द बाबू की ओर मुखातिब होकर पूछा, "तुम दोनों को क्या हो गया है? मुन्ने से इस तरह झगड़ क्यों रहे हो? किस बात पर इतनी बहस हो रही है?"

"वह तुम नहीं समझोगी। इसका कहना है कि वह डॉक्टरी नहीं पढ़ेगा।"

मां ने बेटे से ही पूछा, "क्यों रे? क्यों नहीं पढ़ेगा डॉक्टरी?"

जवाब मुकुन्द ने दिया, "डॉक्टर के बजाय वह सूर्य सेन बनेगा, मास्टर साहब बनेगा, विनय-बादल-दिनेश बनेगा। या फिर अंग्रेजों का खून करेगा, फिरंगियों को देश से खदेड़ भगायेगा। देश को आजाद करायेगा तुम्हारा बेटा।"

लेकिन जिसे लेकर इतना कांड मचा, इतना तकरार हुआ, वही देवव्रत भरपूर आवाज में चिल्ला उठा, "न्ना! मैंने यह बात नहीं कही, आप झूठ बोलते हैं।"

"मैं झूठा हूं? मैं झूठ बोलता हूं?"

"जी, मैंने यह बात बिल्कुल नहीं कही, आप झूठ बोलते हैं।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। उनकी किसी बात का जवाब दिये बगैर अचानक वह दनदनाता हुआ अपने कमरे में चला आया और दरवाजा बन्द करके अन्दर से सिटकनी लगा ली।

मां दरवाजा खटखटाती रही।

"ओ रे, मुन्ने, सुन! मेरी बात सुन, मुन्ने।"

यूं घर-गृहस्थी में छोटी-मोटी बातों को लेकर तकरार हुआ ही करती है। मन-विरोध भी होते हैं, लेकिन कुछ दिनों बाद अपने-आप खत्म भी हो जाते हैं। यही रीत है। दुनिया के तमाम लोगों की गृहस्थी में यह रीत सदियों से चली आ रही है। मुमकिन है, अगले करोड़ों बरस तक दुनिया यूं ही चलती रहेगी।

लेकिन देवव्रत आम इन्सान नहीं। इसीलिए मुकुन्द बाबू के मन में जो डर धीरे-धीरे खौफ बनकर उतरता जा रहा था, एक दिन वही सच भी हो गया। देवव्रत सरकार सच ही अपने इरादों पर अटल और अडिग रहा। किसी का भी आग्रह-अनुरोध उसे अपने फैसले से नहीं मोड़ सका। उसे अपने संकल्प से न कोई हिला सका, न हिला सकेगा।

···उन दिनों की कहानी भी सुप्रभात जानता था।

'चरित्र गठन शिविर', लगभग उखड़ने वाला था। उस वक्त तक सुलतान अहमद साहब का इन्तकाल हो चुका था। सिर्फ इतना ही नहीं, उन दिनों लगभग सभी शहरों में 'चरित्र गठन शिविर' जैसे सैंकड़ों प्रतिष्ठान उभर आए थे। हर किसी की ख्वाहिश थी कि भारत में ऐसे नौजवान तैयार किये जाएं, जो चरित्र में आदर्श हों, बड़े होकर किसी दिन अपने आदर्श पर आत्माहुति दे सकें।

हवेली में जो मास्टर साहब उसे पढ़ाने आते थे, वही वेणीमाधव बाबू नौकरी

लेकर कहीं और चले गये थे। सुलतान अहम
सरकार के कंधों पर आ पड़ा था।

अब मुकुन्द बाबू की उम्र ढलने लगी
देखने में ही चुके थे।

कलकत्ते से गोलकेन्दु सरकार के
कर रहा है ? देवू किसी नौकरी-चाकरी

मुकुन्द बाबू का वही जवाब होता—मुन्ने ने मेरा
उससे डॉक्टरी पढ़ने को कहा, वह भी नहीं पढ़ी। आजकल यही
पढ़ाने लगा है। खाली वक्त में घर पर ट्यूशन लेता है। इसके लिए वह कोई फीस-वीस भी नहीं लेता। उसे लेकर मैं दिन-रात परेशान रहता हूं।

सिर्फ बापू या मां ही नहीं, देवव्रत के सम्पर्क में जो भी लोग आए, जिन्दगी-भर तकलीफ पाते रहे।

हरविलास अब भी आया करता था। आते ही वह मुकुन्द बाबू से पूछता, "आज क्या बिल के किनारे वाली जमीन पर बुवाई कर दूं, मालिक ?"

मुकुन्द बाबू बेतरह बीमार रहने लगे थे। आखिरी वक्त में उनकी यह दुर्गति होगी, इसकी उन्हें कल्पना तक नहीं थी।

वे जवाब देते, "मुझसे अब कुछ मत पूछा करो, हरविलास ! जो तुम्हारी समझ में आये, कर लिया करो।"

वैसे हरविलास काफी विश्वासी कर्मचारी था। मजूरों से काम-काज लेने में वह काफी कुशल था। वह जानता था, किस महीने, किस खेत में, कौन-सी फसल बोई जाएगी, कौन-सी खाद दी जायेगी, कब खेत में निराई की जाएगी। इन सबकी जानकारी जितनी हरविलास को थी, उतनी मुकुन्द बाबू को भी नहीं थी।

"क्या हुआ ? तुम खड़े क्यों हो ?"

"जी, मालिक, जब तक आप कोई हुकुम न दें, मैं जाऊं कैसे ?"

"अच्छा, तुम एक बार छोटे बाबू के पास चले जाओ।"

छोटे बाबू यानी देवव्रत ! हरविलास ने जाकर देखा, छोटे बाबू का कमरा खाली था। छोटे बाबू को न पाकर हरविलास लौट आया।

उसने सूचना दी, "छोटे बाबू कमरे में नहीं हैं, मालिक।"

"कमरे में नहीं हैं ? इतनी सुबह-सवेरे कहां गया ?"

वह गद्दी से उठकर हवेली के अन्दर चले आये।

उन्होंने गृहिणी से पूछा, "मुन्ना कहां गया, तुम्हें मालूम है ?"

"वह तो हवेली में नहीं है।"

"नहीं है ? कहां गया ?"

"वह तो कल रात से ही घर पर नहीं है। मुझसे कहकर गया है"

हा है

ह दिया, बस, हो गया ? मैं क्या कोई नहीं ? तुमने भी मुझे कुछ
अचा? क्या कह गया है वह ?"

होकर, ची मुहाल में जाने किसको हैजा हो गया है, उसे देखने गया है।"

हो ? मोची मुहाल में ? मोची मुहाल में भला कोई शरीफ आदमी जाता है ?
। जाने को किसने कहा उससे ? और अगर गया भी था, तो रात को ही क्यों नहीं लौटा ?"

गृहिणी भला क्या जवाब देती।

मुकुन्द बाबू ने दुबारा कहा, "तुम्हारे बजाय अगर मुझे बताकर जाता, तो क्या हो जाता ? घर का मालिक तुम हो या मैं ? मुझे बताकर जाता, तो उसका कोई नुकसान हो जाता ?"

मुकुन्द बाबू के लिए अब वहां खड़ा रहना भी मुश्किल हो गया। मारे गुस्से और क्षोभ के वे भुनभुनाते हुए अपनी गद्दी में लौट आये और धम्म् से बैठ गये।

हरविलास हुक्म की अपेक्षा में अभी तक एक कोने में खड़ा था। उस पर नजर पड़ते ही उन्होंने कहा, "निकम्मों की तरह तुम अभी तक यहीं क्यों खड़े हो ? जाओ, तुम अपना काम करो।"

'जी, आपके हुक्म के बगैर…"

"मैं ? अगर मैं हुक्म न दूं, तो तुम हाथ बांधे यहीं खड़े रहोगे ? लेकिन मैं पूछता हूं कि मैं होता कौन हूं ? बोलो, कौन होता हूं मैं ?"

हरविलास कोई जवाब न देकर चुपचाप खड़ा रहा।

मुकुन्द बाबू ने ऊंची आवाज में कहा, "मेरी बात का जवाब क्यों नहीं दे रहे ? बहरे हो गए हो ? बताओ, मैं कौन होता हूं ?"

"जी, आप ही तो इस घर के मालिक हैं, हुजूर ! आपके हुक्म के बिना…"

"ना ! ना !! मैं इस घर का कोई नहीं होता। हां, कभी मैं इस घर का मालिक थाऽ, लेकिन अब मैं बूढ़ा हुआ। अब मैं इस घर का मालिक नहीं रहा। तुम अपनी मालकिन के पास जाओ, अब वही हैं इस घर की मालकिन। मैं कोई नहीं…जाओ, तुम यहां से। चले जाओ…" यह कहकर मुकुन्द बाबू मुंह फेरकर लेट गए।

हरविलास को समझ नहीं आया कि अब वह क्या करे,। वह बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। जब उसने देखा, मालिक की तरफ से कोई जवाब नहीं, तो वह हवेली के अन्दर चला आया।

चंडीमंडप की बगल वाली पगडंडी पार करते ही आंगन ! आंगन के बीचों-बीच कुआं ! राधू नौकरानी कुएं से पानी निकाल रही थी। पश्चिम की तरफ गोशाला ! चरवाहा गायों को चराने ले जा रहा था।

आंगन में आकर, हरविलास ने आवाज दी, "मलकिनी…"

हरबिलास को देखते ही राघू ने पूछा, "किसे बुलाय रहे हो, बिस्वास जी ?"

"मलकिनी को जाकर मेरा प्रणाम् दो, राघू ।"

रसोई उत्तरी छोर पर। रसोई की छत पर चिलमनुमा फूलों का एक दरख्त ! *दरख्त की डाल से एक पिंजरा झूलता हुआ। पिंजरे के पंछी ने छूटते ही चीखना* शुरू कर दिया—मलकिनी ! ओ मलकिनी !

आवाज सुनते ही मालकिन बाहर निकल आयीं ।

उन्होंने पूछा, "क्या बात है, हरबिलास ? कुछ कहना है ? मुझे बुला रहे थे ?"

हरबिलास ने हाथ जोड़कर दंडवत् करते हुए कहा, "मैं मालिक से काम का हुक्म लेने गया था, मलकिनी। उन्होंने कहा, घर के मालिक वे नहीं। उन्होंने छोटे बाबू के पास जाने को कहा। लेकिन छोटे बाबू घर पर नहीं। सो, उन्होंने मलकिनी के पास जाने को कहा। आपके पास हुकुम लेने आया हू, मलकिनी !"

सब सुनकर मालकिन ने कहा, "ना ! ना !! घर के मालिक वही हैं। मैं कोई नहीं। तुम मालिक के पास जाओ। उन्होंने गुस्से में ऐसा कहा होगा—"

"नहीं, मलकिनी, वे करवट बदलकर लेट रहे। मेरी बात वे सुनना ही नहीं चाहते।"

आस-पास की आबोहवा जहरीली हो आई ।

हरबिलास बेचारा क्या कहता ? वह अपनी समझ के मुताबिक सीधे बिल के किनारे वाली जमीन की ओर चल दिया और खेतिहरों को काम-काज की हिदायतें देने लगा। वह समझ गया, बेटे पर नाराज होकर ही मालिक ने उससे भी चिड़चिड़ाकर बात की ।

लेकिन जिसे लेकर इतना कांड मचा था, वह उस वक्त भी घर नहीं लौटा था। कहां, किसी मोची मुहाल में, किसे हैजा हो गया है, वही बात उसके अहम् हो गयी। घर पर इतने सारे लोग उसके लिए परेशान होंगे, इसका उसे होश, नहीं था।

लेकिन मुकुन्द बाबू को भी आखिर उम्र हुई ।

शुरू-शुरू में उन्होंने सोचा, बचपन में सभी थोड़ा-बहुत सैर-तफरीह करते हैं। उस उम्र में सभी लड़के घुमक्कड़ हो जाते हैं, घर की तरफ उनका खास ध्यान ही नहीं रहता। बढ़ती हुई उम्र के साथ वे फिर घर की तरफ रुख करते हैं। उनका ख्याल था देबू भी लौट आयेगा।

लेकिन न्ना ! उलटा ही हुआ ।

देबू तो दिनोंदिन और घुमक्कड़ होता जा रहा था। कहां, कौन अभाव में है, कौन रुपये-पैसे की मोहताजी में घर नहीं चला पा रहा, कौन बीमार है, वह तो [illegible]

मुकुन्द बाबू ने एक दिन उसी से दरयाफ्त किया, "ये तुम दिन-दिन भर कहां टक्करें मारते फिरते हो ?"

कोई जवाब न देकर देवव्रत ने कन्नी काटकर अपने कमरे की ओर खिसक लेने की कोशिश की।

लेकिन मुकुन्द बाबू उसे आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे।

उन्होंने कुरेदते हुए पूछा, "क्या हुआ ? कोई जवाब नहीं दिया ?"

"जी, बहुत काम था।"

लेकिन बेटे के इस संक्षिप्त जवाब से मुकुन्द बाबू खुश नहीं हुए। उन्होंने कहा, "रुको ! जा कहां रहे हो ? मेरी बात का जवाब तो देते जाओ।"

देवू ठिठक गया।

उसने कहा, "कहा तो, बहुत काम था।"

फिर वही संक्षिप्त-सा जवाब ! मुकुन्द बाबू झुंझला उठे।

उन्होंने कहा, "काम तो हर किसी को होता है। मुझे भी रहता है। लेकिन काम के बहाने मैं तो घर छोड़कर, सिर्फ बाहर-बाहर चक्कर तो नहीं लगाता ? दिन-भर तुम कहां भटकते रहते हो ?"

उस दिन देवू ने एक सख्त-सा जवाब दिया था, "क्यों ? बाहर भी तो घर ही होता है ?"

मुकुन्द बाबू को उसकी यह बात पहेली-सी लगी।

उन्होंने फिर पूछा, "मतलब ? इसका मतलब क्या है ? बाहर के घर से तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"मैं बाहर के लोगों को, अपने देश या समाज के लोगों को पराया नहीं मानता।"

मुकुन्द बाबू को यह जवाब भी समझ में नहीं आया। वे तो जिन्दगी भर घर को घर और बाहर को बाहर समझते रहे। यह लड़का यह नयी बात कहां से सीख आया ?

उन्होंने कहा, "तुम्हारी बात अब भी मेरी समझ में नहीं आयी। जरा समझाकर कहो।"

"जी, मैंने कोई मुश्किल बात नहीं की। मैं यह कहना चाहता हूं कि शरीर का हर अंग अगर पुष्ट और सबल न हो, तो शरीर कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। अगर मेरे दोनों हाथ कमजोर रह गये और पांव सशक्त, तो क्या हम अपने को स्वस्थ कह सकते हैं ? उसी तरह हम शरीफ मुहल्ले के लोग अमीर बने रहे और मुसलमान या मोची मुहाल के लोगों को मोटा-झोंटा खाना-कपड़ा तक नसीब न हो, तो यह देश की स्वस्थता का सबूत नहीं। देश के सभी लोग, सभी जाति, सभी सम्प्रदाय जब खुशहाल हों, तभी वह देश खुशहाल होगा। मेरा यही दृढ़ विश्वास

है और अब तक मैंने किताबों में जो सीखा है, यही सीखा है।"

बेटे की बात पर मुकुन्द बाबू हैरत से पत्थर के बुत बन गये। उस वक्त उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि वे कहां हैं या कौन है? इतनी देर तक वे किससे बातें कर रहे थे।

दुनिया में इंसानों की गिनती का कोई अंत नहीं और यह संख्या दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। उन सभी के आगे समस्याओं का कोई अंत नहीं। जितने तरह के इंसान हैं; शायद उतनी ही तरह की समस्याएं भी हैं। इतनी सारी समस्याओं का समाधान दे सके। ऐसा कोई महापुरुष आज तक पैदा नहीं हुआ, शायद कभी होगा भी नहीं। लेकिन उस दिन मुकुन्द बाबू को लगा था, दुनिया में किसी भी इंसान की समस्या, उनकी समस्या जैसी भयंकर नहीं। बस, उसी दिन से वह गृहस्थी में रहते हुए भी वीतरागी हो गये थे। यूं उन्हें किस बात का अभाव था? कभी उन्होंने सोचा था, पास में रुपये हों, तो शायद सारी समस्याओं का अन्त हो जाता है। उनके पास तो अगाध सम्पत्ति है। अब उन्हें क्या फिक्र? अब तक उनके पास इतनी दौलत जमा हो चुकी थी कि उनकी मौत के बाद भी एक-दो नहीं, चौदह पीढ़ियां परम आराम और निश्चिन्तता से जिन्दगी गुजार सकती थीं। इस ओर से उन्हें कोई फिक्र नहीं थी। खासकर तब, जब उनका एक ही बेटा है। उनकी तो कोई लड़की तक नहीं कि उसके ब्याह में गड्डी-गड्डी रुपये बर्बाद करने हों।

इन्हीं सब ख्यालों ने उन्हें निश्चिन्त कर दिया था। उसके बाद, जब उनका इकलौता बेटा लिखाई-पढ़ाई में मग्न बना, हर साल परीक्षा में अव्वल आने लगा, मैहत की दृष्टि में भी जब वह मुहल्ले का गौरव बन गया। वेणीमाधव मास्टर ने भी जब उसके बेटे के उज्ज्वल भविष्य के बारे में भविष्यवाणी कर दी, यहां तक कि चरित्र गठन शिविर के सुलतान अहमद साहब ने भी जब उनके बेटे को इंसानियत का ऊंचा खिताब दे डाला, तब उन्हें अपने बेटे के बारे में किसी तरह की आशंका या भय नहीं रहा। वे तो अपने को भाग्यवान पिता समझकर गर्व महसूस करने लगे थे।

लेकिन जैसे-जैसे उनका बेटा बड़ा होता गया और वे बूढ़े होते गये, उतने ही हताश होते गये। बेटे ने जब डॉक्टर बनने से इंकार कर दिया, इंजीनियर या चार्टर्ड एकाउंटेंट बनने का इरादा भी छोड़ दिया, यहां तक कि बैरिस्टर बनने को भी राजी नहीं हुआ, तब उन्हें लगा कि सब कुछ के बावजूद वे सर्वहारा हैं।

देवू के बारे में कभी-कभार पत्नी के आगे अपने मन का अफसोस जरूर करते। वे लंबी उसांस भरकर कहते, "मेरे अन्त समय में मेरा बेटा ही मुझे तकलीफ देगा, मैंने सोचा भी नहीं था। इस लड़के के बारे में सोच-सोचकर मैं इस कदर परेशान हूं, कि रात मुझे ठीक तरह नींद भी नहीं आती।"

गृहिणी ने उन्हें तसल्ली देते हुए कहा, "तुम इतना परेशान क्यों होते हो, जी ? हमलोगों ने जिन्दगी में किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। भगवान भला हमें कष्ट क्यों देने लगे ?"

"इतनी पूजा-मन्नतें, इतनी भलमनसाहत के बावजूद भगवान ने आखिर हमारा क्या भला किया ? मेरे दस-बारह औलाद नहीं, इकलौता बेटा है, वह ऐसा निकला ? खाने में सिर्फ एक सब्जी और वह भी नमक में तर, तो कितनी तकलीफ होती है, बोलो तो ? फिर किसके लिए यह गृहस्थी ? अगर सब यूं ही चलता रहा, तो आखिर किस पर भरोसा करके मैं इस संसार से विदा लूंगा ?

गृहिणी के पास उनकी इन बातों का कोई जवाब नहीं था। लेकिन; वह जानती थीं, इतना परेशान होने से कोई फायदा नहीं होगा। वैसे परेशान तो वे भी होती थीं। दिनभर घर-गृहस्थी में व्यस्त रहकर बेटे की फिक्र इस कदर सिर नहीं उठाती थी। कभी उठाती भी थी, तो वे उतनी अहमियत नहीं देती थीं। बस, मन-ही-मन देवी-देवताओं के आगे हाथ जोड़कर विनती करतीं, "हे मइया, तुम मेरे मुन्ने की रक्षा करना। उसका मंगल करना।"

···जिस शख्स ने मां श्मशानेश्वरी के चरण छूकर संकल्प लिया था कि देश के कल्याण के लिए वह अपने प्राणोत्सर्ग कर देगा, उसका मंगल भला कौन-सा देवता करता ?

उसने तो संकल्प लिया था—मैं अपने देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने को प्रतिश्रुत हूं। देश को आजाद कराने के लिए मैं सर्वस्व त्याग के लिए हर पल तैयार रहूंगा। वंदेमातरम् !

शायद इसीलिए तो मैंने कहा, उसे गढ़ते समय शायद विधाता पुरुष जरा अन्यमनस्क हो गया होगा, वरना सबको एक ही सांचे से गढ़ने वाले सृष्टिकर्ता ने अकेले देवव्रत को ही अलग सांचे में क्यों ढाल दिया ?

इस सवाल का जवाब किसी के पास नहीं। दुनिया-जमाने में आज भी यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों अनुत्तरित रह गया है।

सच ही तो इस दुनिया में करोड़ों-करोड़ संसारी लोग हैं। ऐसा क्यों होता है कि कोई शख्स अन्यतम् ! कोई असाधारण ! उन्हीं में से कोई-कोई व्यतीक्रम भी होता है। वह एकदम से अमर होकर समूची मानव-जाति के लिए मिसाल बन जाता है।

लेकिन देवव्रत यह सब भी नहीं हुआ। दुनियावाले उसे भूल भी गये। दुनिया वालों ने तो उसे अपनी यादों की दुनिया से हमेशा-हमेशा के लिए निर्वासित ही कर दिया। हालांकि ऐसा नहीं होना चाहिए था···।

उस दिन भी देवव्रत के यहां पढ़ने के लिए बहुत-से छात्र जमा हो चुके थे।

केदार, ललित, मिनती, शंभु, हस्नु, कमला, शाहबुद्दीन वगैरह सभी मौजूद थे। वे लोग रोज की तरह ठीक समय पर ही आ गये थे। ये लड़के नियमित रूप से देवव्रत के यहां पढ़ने आते थे।

लेकिन उस दिन उन्हें सूचना मिली, देवव्रत घर पर नहीं है।

"कहां गये हैं?"

"मोची मुहाल।"

राधू इस हवेली की पुरानी नौकरानी थी। बाकी दिन, जब देवव्रत घर पर होता, किसी लड़के के पानी मांगने पर, वही राधू ही कुएं से पानी निकालकर लाती थी।

कोई छात्र या छात्रा देवव्रत के लिए बगीचे के आम ले आते, "ये आम चखकर देखियेगा, मास्'साब? हमारे बगीचे के आम हैं।"

सिर्फ आम, कटहल या साग-सब्जी ही नहीं, बहुत-से घरों से तलैया की मछली तक आती थी।

पूजा या ईद के मौकों पर किसी-किसी घर से मिठाइयां भी आ जातीं।

देवव्रत को अक्सर इन उपहारों और इनके भेजने वालों की सूचना तक नहीं होती थी।

खाने वक्त वह अचकचाकर मां से पूछ बैठता, "यह परवल की तरकारी क्या तुमने बनायी है, मां? बहुत अच्छी बनी है।"

मां जवाब देती, "ना, रे, यह सब्जी तो मिनती दे गयी है। उसकी आया मौसी ने पकायी थी, तेरे लिए भी भेज दी।"

देवव्रत एकबारगी भड़क जाता, "तुम ये चीजें क्यों लेती हो, मां? मुझे किसी से कुछ लेना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। वे लोग क्या कर्ज चुकाना चाहते हैं?"

"कर्ज चुकाने की क्या बात है? कर्ज कैसा?"

"मैं उनसे ट्यूशन के रुपये नहीं लेता न, सो वे लोग सामान वगैरह भेजकर इस ढंग से कर्ज चुकाना चाहते हैं। लेकिन उनसे मैं पढ़ाई के रुपये क्यों नहीं लेता, पता है? इसलिए कि मुझे लगा कि उनमें से बहुतेरे लड़कों में प्रतिभा है, मैं अगर थोड़ी बहुत मदद कर दूं तो मुमकिन है उनमें से कुछ लड़के सच ही इन्सान बन जायेंगे। विद्या-दान के बदले रुपये-पैसे लेना गुनाह है। पता है?"

"तेरे दिमाग में इतना पेंच है, रे!"

"पेंच नहीं, मां, यह जो समूची दुनिया में शोषण वगैरह-वगैरह है उसके पीछे कमबख्त रुपये-पैसों की साजिश है। मैं इसके [illegible] हूं और तुम जैसे लोग इस साजिश में उनकी मदद कर रहे हो। बस इसी से कोफ्त होती है और क्या?"

"नहीं, रे, ऐसी बात नहीं। [illegible]

इसीलिए भेज दिया। उन्होंने कुछ और सोचकर नहीं भेजा होगा।"

"चलो, गनीमत है!"

वैसे सिर्फ मिनती, कमला, केदार, शंभु या शाहबुद्दीन ही नहीं, हर किसी से देवव्रत का इसी किस्म का रिश्ता था। शिक्षा देनेवाले और शिक्षा पाने वाले—दोनों के बीच अगर स्नेह सम्पर्क भी हो, तो इसमें दोनों का भला होता है। जहां आपस में लेन-देन का रिश्ता होता है, वहां कारोबार की गंध आने लगती है और नतीजा यह होता है कि वे लोग सर्वनाश को आमंत्रण दे बैठते हैं।

उस दिन भी बारी-बारी से सभी आ पहुंचे।

हर किसी की जुबान पर एक ही सवाल। जवाब मिलने के बावजूद जब कोई समाधान-सूत्र नहीं मिला, तो वे क्या करते? आखिर रोज-रोज तो ऐसा होता नहीं। जिन्दगी में इस तरह अचानक कोई जरूरी काम आ ही सकता है। यह तो स्वाभाविक बात है।

सभी धीरे-धीरे अपने-अपने घरों की ओर लौट पड़े। देवव्रत सिर्फ सोम, बुध और शुक्र को ही पढ़ाता है। अगर यह बुधवार खाली चला गया। तो अगला शुक्रवार भी बस, करीब है।

सब चले गये, अकेले मिनती ही रह गयी।

मिनती ने बाकी साथियों को विदा करते हुए कहा, "तुम लोग जाओ, मेरा घर तो पास ही है। मैं थोड़ी देर और मास्टसाब का इन्तजार कर लेती हूं।"

सब चले गये।

मां किसी काम से उस कमरे के सामने से गुजरी। मिनती को अकेली बैठी देखकर वह अंदर चली आयी।

उन्होंने पूछा, "अरे, बिटिया, तुम अभी तक यहीं बैठी हो? देबू का और कितना इन्तजार करोगी?"

"जी, थोड़ी देर और देख लूं..."

"लेकिन, राधू ने तुम्हें कुछ नहीं बताया?"

"जी, बताया था। लेकिन फिर भी सोचा, शायद वे आ ही जायें।"

"वह तो कल रात ही चला गया। जाते समय बता रहा था, मोची मुहाल में किसी को हैजा हो गया है। कल रात उसने खाया भी नहीं। आज भी...इतना वक्त हो गया, अभी तक नहीं लौटा। तुम और कितनी देर उसकी राह देखोगी, बिटिया?"

"कोई बात नहीं, मांजी, घर जाकर भी तो बेकार बैठी ही रहूंगी। बेहतर है यहीं कुछ देर और इन्तजार कर लूं।"

"लेकिन, बिटिया इतनी रात हो गयी। अब तुम अकेले-अकेले घर कैसे लौटोगी?"

"जी, बापू से कह आयी हूं कि पढ़ाई के बाद आया-मौसी मुझे लेने आ जायें।"

उनकी बातचीत चल ही थी कि अचानक देवव्रत और शाहबुद्दीन कमरे में दाखिल हुए। उन्हें देखकर मिनती और मा—दोनों ही अचकचा गये।

मां ने देवू की ओर मुखातिब होकर पूछा, "क्यों, रे, कल र. । और आज दिनभर तू कहां था ?"

जवाब शाहबुद्दीन ने दिया, "मास्टर जी मुझे रास्ते में ही मिल गये। उनके साथ मैं भी चला आया।"

"अच्छा किया, बेटे !" मां ने कहा।

देवव्रत ने शिथिल आवाज में कहा, "परान को बचा नहीं सका, मां ! भूखे पेट जो मिला, वही खाता रहा। परान तो गया ही, अब तो लगता है, कई और लोग भी मरने वाले हैं अभी !"

"लेकिन तुझे इतनी देर क्यों हो गयी ? यहां मैं और तेरे बापू मारे फिक्र के परेशान थे।"

"अरे, मां, उनका मुहल्ला क्या करीब है ? जहां मैं था वहां एक भी बंदा ऐसा नहीं मिला, जो तुम लोगों को खबर कर देता। उसके बाद जिला बोर्ड के दफ्तर जाकर ब्लीचिंग पाउडर लाया। सारी जगह छिड़काव किया। चारों तरफ मक्खियां भिनभिना रही थीं। गाय-बकरी-मुर्गी, बाल-बच्चे सब एक ही कोठरी में जीते थे। कॉलेरा इन्हें नहीं होगा, तो और किसे होगा ?"

मां ने चिन्तित लहजे में पूछा, "और तेरा खाना ? खाया क्या ?"

"खाता क्या ? वे लोग रोग के शिकार होकर दम तोड़ रहे थे, ऐसी हालत में उन्हें छोड़कर, मुझे खाने की सूझती ? उनकी जिन्दगी बड़ी थी या मेरा खाना ?"

"और सोना ?"

"कब सोता ? समूचा दिन तो श्मशान में ही कट गया मुर्दा जलाने—"

"लगता है, इन्हीं सब चक्कर में तू अपनी सेहत बर्बाद कर लेगा। दिन-दिन भर, रात-रात भर न खाना, न सोना।"

अब देवू मिनती की ओर मुखातिब हुआ, "सुनो, आज मैं तुम लोगों को नहीं पढ़ा सकूंगा। बेकार ही तुम लोगों का वक्त खराब हुआ।"

"कोई बात नहीं। पहले आपकी तबीयत तो···" मिनती ने जवाब दिया।

"इतनी रात को तुम घर कैसे जाओगी ?"

"घर से बापू या आया-मौसी आकर मुझे ले जायेंगे। कोई-न-कोई आता ही होगा।"

"लेकिन तुम्हें देर नहीं हो जायेगी ?"

"कोई बात नहीं, मैं इन्तजार कर लूंगी।"

शाहबुद्दीन ने कहा, "चलो न मैं तुम्हें पहुंचा आता हूं।"

"नहीं, चलो, मैं ही तुम्हें छोड़ आता हूं।" देवव्रत ने कुछ सोचते हुए कहा और उठकर तैयार होने लगा।

मां परेशान हो उठी, "तू कहां जायेगा, बेटे? पूरे दिन-रात न खाया-पीया, न सोया। अब तू फिर जा रहा है? ऐसे तो तू मर जायेगा, बेटे!"

"हां, मौसी ठीक कहती हैं। वैसे भी मेरे यहां से कोई-न-कोई मुझे लेने आता ही होगा, आप क्यों तकलीफ करते हैं?" मिनती ने आपत्ति की।

"कहा न मैं पहुंचा आता हूं मिनती को। आप परेशान न हों।" शाहबुद्दीन ने कहा।

लेकिन देवव्रत अपने फैसले पर अटल। उसे अपना कर्तव्य निभाना ही था। जिन्दगी में उसे कोई कर्तव्य-भ्रष्ट नहीं कर सका। कोई उसे पथ से कुपथ की ओर नहीं ले जा सका। उसके मां-बापू तक उसे अपनी राह से हिला नहीं पाये, औरों की तो बात ही क्या?

उसने मिनती से कहा, "चलो, मैं तुम्हें घर छोड़ आऊं।"

"मैं तो जा ही रहा हूं, मास्टर जी, आप क्यों तकलीफ उठाते हैं?" शाहबुद्दीन ने दुबारा आग्रह किया।

"नहीं मैं ही जाऊंगा। मुझे इन बातों में कोई तकलीफ नहीं होती।"

वह दरवाजे की तरफ बढ़ा! उसके पीछे-पीछे मिनती और शाहबुद्दीन भी चल पड़े।

उनके जाने के बाद मां ने दरवाजा बंद करके अंदर से सिटकनी लगा दी। हां, अन्दर से लगभग चीखकर उसे आवाज दी, "देर मत करना, सुनो! फौरन लौट आना।"

जिन लोगों ने सन् 1947 के पहले का जमाना देखा है, सिर्फ वही बता सकते हैं कि वे कैसे दिन-काल थे। उन दिनों लोगों की निगाहों में बड़े-बड़े आदर्श जगमगा उठे थे। सबसे बड़े आदर्श थे—स्वामी विवेकानन्द! उस महापुरुष के आस-पास थे अश्विनी कुमार दत्त, विद्यासागर, गोखले, तिलक, लाजपतराय, गांधी, सुभाष बोस, जे० एम० सेनगुप्ता! उनकी लिखी किताबों से जो लोग साहस बटोरते, आशा-आनन्द पाते, वे लोग देश-भर के गांव-समाज के लड़के-लड़कियों को दिखाने-सिखाने को उतावले हो उठे। वे लोग चाहते थे देश-भर के नौजवान उन सब आदर्श महापुरुषों की किताबों से अच्छे-अच्छे उपदेश ग्रहण करें। उन आदर्शों को सामने रखकर वे लोग जीवन जीने की कोशिश करें।

गांव के छात्र जितनी देर भी देवव्रत के पास रहते, वही एक बात! एक ही

उपदेश ! एक ही शिक्षा !

देवव्रत बार-बार आग्रह करता, "तुम लोग डायरी लिख रहे हो न ? डायरी लिखने की आदत डालोगे तो हर काम में नियम का अभ्यास भी खुद-ब-खुद आयेगा। जो इन्सान हर काम नियम से करता है, वही समाज में शान से सिर उठाकर खड़ा हो सकता है। प्रकृति की तरफ ही नजर डालो, वहां भी हर काम में नियम मौजूद है। सूर्य को ही लो। सूर्य सुबह-सवेरे निश्चित समय पर आता है, इसीलिए तो दुनिया अभी तक कायम है।

विद्यार्थी उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनते जरूर, लेकिन उनका असली मकसद इम्तहान पास करना था।

यह बात देवव्रत भी समझता था। लेकिन, उसका ख्याल था कि तमाम विद्यार्थियों में अगर एक भी विद्यार्थी उसकी बातें ध्यान से सुने-गुने और ईमानदारी से अपने जीवन में उतार सके, तो भी उसकी मेहनत सार्थक होगी।

देवव्रत ने समझाया, "देखो न, पेड़ की डाल पर अनगिनत कलियां जन्म लेती हैं, लेकिन सबकी सब फूल बनकर खिल जाती हैं ? नहीं न ? क्यों नहीं खिल पाती, बोलो तो ?"



छात्रों में कोई सही उत्तर नहीं सूझा।

"कमला, तुम बताओ।"

कमला निरुत्तर।

"शाहबुद्दीन, तुम ?"

शाहबुद्दीन भी काफी दिमाग लड़ाने के बावजूद सही उत्तर नहीं खोज पाया।

"अच्छा, मिनती तुम ? तुम्हारे पास है कोई जवाब ?"

चूंकि यह सवाल पढ़ाई की कोर्स से अलग था, देवव्रत ने खुद ही जवाब भी दे डाला, "चलो, छोड़ो, इम्तहान में तुम लोगों से यह सवाल नहीं पूछा जायेगा। इसलिए इसमें माथापच्ची करके वक्त मत बर्बाद करो। तुम लोग घर जाकर इस सवाल का जवाब सोचना। अगर जवाब मिल जाये, तो मुझे बताना।"

उसने फिर कोर्स की पढ़ाई शुरू कर दी। उसके पढ़ाने की यही रीति थी। पाठ्य-कोर्स से परे भी कुछ पढ़ाना और सोचने का मसाला जुटाना उसकी खासियत थी।

उस दिन सड़क पर चलते हुए मिनती ने अचानक बात छेड़ दी, "मास्टर साहब, आपके उस सवाल पर मैंने सोचा था, जवाब भी मिला है—"

"जवाब मिला है ? बताओ तो, क्या जवाब मिला ?"

"हर कली फूल नहीं बनती, क्योंकि वह प्रकृति पर निर्भर करती है। कली प्रकृति की गोद में पलती है, लेकिन कलियां विकृति की शिकार हो जाती हैं, इसीलिए वे खिलकर फूल नहीं बन पातीं।"

देवव्रत मिनती का जवाब सुनकर हतबुद्ध रह गया।

आगे कहा, "वाह ! तुम्हें यह जवाब कहां से मिला ? किसी ने तुम्हें सिखाया ? कहीं अपने बापू से तो पूछकर नहीं आयी हो ?"

"नहीं, मास्टर साहब, मैंने खुद दिमाग लगाया और जवाब ढूंढ़ा।"

देवव्रत ने शाहबुद्दीन से मुखातिब होकर कहा, "देखा, शाहबुद्दीन, मिनती ने कैसा खूबसूरत जवाब दिया ! इस बार मिनती इम्तहान से जरूर अव्वल होगी।"

देवव्रत ने दुबारा कहना शुरू किया, "याद रखो, हम सब इन्सान हैं—मैं-तुम-मिनती ! हर कोई ! हम सबके दो-दो हाथ हैं, दो-दो पैर हैं, दो आंखें और कान हैं। लेकिन इन्सान की जांच-परख इन चीजों से नहीं होती, उसके भीतर सांस लेती हुई इन्सानियत से होती है। दरअसल, प्रकृति के शिकार तो हम सभी हैं। हम लोगों में ही कोई-कोई विकृति के भी शिकार हैं। लेकिन हममें से कोई एक भी इन्सान संस्कृति का शिकार नहीं हो पाया। इस दुनिया में जो लोग संस्कृति के शिकार हो सके, वही सच्चे अर्थों में इन्सान थे। जो लोग किसी आदर्श के लिए जिन्दगी भर जूझते रहे, जरूरत पड़ने पर जान तक देने से भी नहीं हिचके, वे लोग ही इन्सानियत की मिसाल बने। असंख्य कलियों में वही फूल बनकर खिले। बाकी सब तो मुंह बंद कली ही रह गये। ऐसे लोग किसी दिन मुरझाकर मिट्टी में झर जायेंगे और बे-निशान खो जायेंगे। समझे ?"

मिनती चुपचाप उसकी बातें सुनती रही।

शाहबुद्दीन ने कहा, "ये फूल कौन लोग हैं, सर ?"

देवव्रत ने कहा, "इतिहास के पन्नों में तलाश करो, इन सबका नाम अंकित है। जैसे ग्रीसवासियों के लिए सुकरात, चीनवासियों के लिए कन्फ्यूशियस। हमारे देश में भी परमहंस देव, स्वामी विवेकानन्द जैसे अनगिनत फूल खिले। जैसे पंजाब में भगतसिंह, शुकदेव, चन्द्रशेखर आजाद ! हमारे बंगाल को ही लो। इस बंगाल में विनय-बादल-दिनेश, जतिन दास, सूर्य सेन, औरतों में प्रीति वादेकर···" कहते-कहते देवव्रत उत्तेजित हो उठा।

थोड़ा ठहरकर उसने फिर कहना शुरू किया, "इतिहास में खोजने पर तुम लोगों को ऐसे ढेरों लोगों के नाम मिलेंगे। मनुष्य एक दिन सब नाम भूल जायेगा, लेकिन ये लोग हमेशा अमर रहेंगे।"

ये बातें सब चलते में हो रही थीं।

अचानक सामने से पार्वती बाबू आते दिखाई दिये। मिनती के बापू पार्वती चरण घोष।

"अरे, आप आ गये। मिनती को घर छोड़ने के लिए मैं तो आ ही रहा था—"

यू मिनती को लेने के लिए खुद पार्वती बाबू या आया मौसी रोज ही देवव्रत के यहा पहुंचते थे।

पार्वती बाबू ने कहा, "आज···इतनी जल्दी···?"

"आज मैं पढ़ा ही नही सका, इसीलिए इसे घर छोड़ने जा रहा था। बाकी लोग तो पहले ही जा चुके।" देवव्रत ने जवाब दिया।

"क्यो, बेटे, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?"

"आज पराग मंडल चल बसा—"

"कौन पराग मंडल?"

"मोची मुहाल का पराग मडल। असल मे हम सबने उन्हे इस कदर गरीब बनाये रखा है कि वे लोग बिचारे स्वास्थ्य-रक्षा और खान-पान में थोड़े अनाड़ी रह गये। हम लोगों ने तो उनके लिए लिखाई-पढ़ाई तक का इन्तजाम नही किया—"

"वह मरा कैसे?"

"हैजा हो गया था।"

"कुछ भी कहो, बेटा, वे लोग इतनी गन्दगी से रहते हैं कि हैजा उन्हें नही होगा तो और किसे होगा? हम लोग तो इसी वजह से उधर पाव भी नही रखते। जैसी करनी वैसी भरनी।"

"वे लोग गंदे हैं, मूरख हैं, इसके लिए क्या अकेले वे लोग ही जिम्मेदार हैं? हम लोग भी क्या उतने ही जिम्मेदार नही? हम लोग, अपने को पढ़ा-लिखा और शरीफ कहते हैं? सरकार भी इनकी तरफ ध्यान नही देती, हम भी ध्यान नही देते, फिर इनको आखिर कौन देखेगा?"

पार्वती बाबू बेहद मितभाषी थे। देवव्रत की बातो ने कुछ पल के लिए कुछ ज्यादा ही खामोश कर दिया।

थोड़ा ठहरकर उन्होंने कहा, "तुम ठीक ही कहते हो, देबू—हमारे दौलतपुर में भला कोई है ऐसा बंदा, जो ये बातें सोचे? जो लोग सोचते थे, वे लोग तो कभी के इस दुनिया से उठ गये।"

"मैं सोच रहा था, अब से मैं लूगा इनकी जिम्मेदारी। मैं उन लोगो को लिखना-पढ़ना सिखाऊंगा।"

"कहते तो तुम ठीक हो, देबू। मैं भी उस दिन मिनती की मा से कह रहा था। काश, हमारे दौलतपुर मे देबू जैसा एकाध लड़का और होता, तो देश की आबोहवा ही बदल जाती।"

मिनती ने बापू की बात काटते हुए बीच मे ही प्रसग बदलने की कोशिश की, "सुनो बापू, मास्टर साहब कल रात से सोये नही, खाया-पीया भी नही। उसी हालत मे मुझे पहुंचाने चले आये···"

पार्वती बाबू सकपका गये। उन्होंने कहा, "हा-हा, ठीक कहती है तू। तुम

अब घर जाओ, बेटे। मैं तो आ ही गया। जाओ, जाकर आराम करो।"

मिनती के साथ वे घर की ओर मुड़ गये। शाहबुद्दीन भी उनके साथ अपने घर की तरफ चल पड़ा।

वह संधिकाल युग था। इंडिया में एक तरफ महात्मा गांधी का युग चल रहा जा। अर्से से इस देश के लोग गांधी जी के निर्देश में चरखा कातते रहे और इस भरोसे पर जीते रहे कि खद्दर पहनने से ही देश आजाद हो जायेगा और दूसरी तरफ···?

दूसरी तरफ देश के कुछेक नौजवान बम-बन्दूक के दम पर गुप्त दलों के सदस्य बन चुके थे और चुन-चुनकर अंग्रेज अफसरों का खून करके, विदेशी सल्तनत को आतंकित करने की कोशिश में जुट गये थे।

देश की आजादी की मांग करते हुए जैसे ढाका में एफ० जे० लोमैन का खून हो गया। उसी तरह मेदिनीपुर में बारी-बारी से तीन मजिस्ट्रेट को मौत के घाट उतार दिया गया। बंगालियों को यह विश्वास हो गया था कि गांधी जी की राह चलते हुए आजादी हरगिज हासिल नहीं होगी।

इसी दौरान सुलतान अहमद जैसे लोग देश के नौजवानों को चरित्र गठन और ब्रह्मचर्य में आस्था रखते हुए, इन्सान बनाने में जुट गये थे।

घटना-चक्र में दौलतपुर का देवव्रत इस आखिरी दल से प्रभावित हो चुका था और अपनी जिन्दगी की धारा को नयी दिशा में मोड़ने की कोशिश कर रहा था। काफी सोच-विचार के बाद वह इस फैसले पर पहुंचा था कि इन्सान की जिन्दगी में भोग से ज्यादा त्याग ही वांछित है। अपने अकेले की उन्नति के बजाय जनमानस की उन्नति की कोशिश ही देश के लिए मंगलकारी है। मुहल्ले में अगर किसी एक घर में आग लग जाये, तो मुमकिन है औरों के घर भी जलकर खाक हो जायें। अतः मुहल्ले के सभी लोगों का फर्ज है कि वह पड़ोस के घर में लगी आग बुझाने की कोशिश करें। जो समष्टि के लिए कल्याणप्रद है, वही सबके लिए वांछित है।

उसी दौर में सुभाष बोस ने आगाह किया—मैं विदेश में देख आया हूं, बहुत जल्दी ही जंग शुरू होने वाली है।

लोगों ने जानना चाहा, "किसके साथ किसकी जंग?"

सुभाष बोस ने फर्माया—जंग चाहे जिसके भी बीच हो, उस जंग में अंग्रेज भी शरीक होंगे। हम भारतवासियों के लिए यह जंग एक सुनहरा मौका है।

उधर गांधी जी, अहिंसा के प्रवर्तक! उन्होंने कहा—किसी की मुसीबत से फायदा उठाकर, अपने लिए सुविधा बटोरना नैतिकता के विरुद्ध है। मेरी उसमें आस्था नहीं।

इस टकराव में कुछ लोग गांधी जी के पक्ष में हो लिये और कुछ लोग सुभाष

बोस के दल में शामिल हो गये। संख्या की दृष्टि से गांधी जी के समर्थक अधिक थे। वे लोग गांधी दल में शरीक हो गये, क्योंकि हर कोई अपनी जिन्दगी की सुरक्षा चाहता था। वे लोग शांति के पक्षपाती थे। उन्हें विश्वास था कि अगर वे लोग गांधी जी के दल में रहे, तो कहीं कुछ खोने का न भय है, न जोखिम। वे चाहते थे कि किसी त्याग के बगैर ही उन्हें आजादी मिल जाये।

लेकिन सुभाष बोस ने डंके की चोट पर एलान किया—कुछ दिये बिना, कुछ पाना असंभव है। सर्वस्व अर्पित करके ही सर्वस्व हासिल किया जा सकता है। अगर इस जंग में हम अपना सर्वस्व दाव पर लगा दें, सारा कुछ अर्पित कर दें, तो शायद हमें अपनी जान गंवानी पड़े। लेकिन देश बच जायेगा। हमारी अगली पीढ़ी तो आजाद होगी। अपनी आने वाली पीढ़ी की आजादी के लिए हमें इस जंग में अंग्रेजों पर आयी विपत्ति का फायदा उठाना चाहिए—

गांधी जी की बिल्कुल विपरीत राय! उन्होंने एलान किया—अगर हम देश की आजादी चाहते हैं, तो इस शुभ-काम की सिद्धि के लिए, शुभ राह पर चलना होगा।

सुभाष बोस हुंकार उठे—मुझे इस पर यकीन नहीं। गीता में लिखा है, 'सर्वारम्भाहि दोषेण धूमे अग्नि यथावृता।' आग जलाते ही समस्त दिशायें आलोकित हो उठती हैं। लेकिन आग जलाते वक्त, शुरू में सियाह धुआं निकलता है। इसी तरह हर शुभ काम के पीछे अशुभ छिपा होता है। देश की आजादी हासिल करने के लिए किसी अशुभ पथ का सहारा लेने में कोई नुकसान नहीं। देश की आजादी के लिए अगर हिंसा की राह अपनानी पड़े। तो भी यह हरगिज गुनाह नहीं।

अब देखना यह था कि देश के लोग किस की बात सुनते हैं। लोग गांधी की बात मानते हैं या सुभाष बोस की?

जब देश के तमाम लोग इस उधेड़बुन में थे तभी महा संकट के बादल घहरा उठे।

अपने आखिरी दिनों में मुकुन्द बाबू ने बिस्तर पकड़ लिया था। इकलौता बेटा! वह भी मन लायक नहीं निकला। उन्हें अपनी आसन्न मृत्यु का भी आभास हो चुका था।

पत्नी को देखते ही वे सवाल करते, "मुन्ना कहां है?"

"स्कूल गया है।"

कभी उन्हें बताया जाता कि बेटा स्कूल गया है, कभी चरित्र गठन शिविर की सार-सम्हाल में लगा है। अच्छा, अगर वह इन्हीं कामों में फंसा रहेगा, तो उनके खेत-खलिहान की देखभाल कौन करेगा? अकेले हरबिलास के कंधे पर जमींदारी सौंपकर क्या काम चलता है? बिल्कुल भी नहीं चलता। जो थोड़े-बहुत

समय वह घर पर रहता भी है, तो उस वक्त भी लड़के-लड़कियों को पढ़ाने में डूबा रहता है या फिर मोची मुहाल या कुम्हार मुहाल जाकर व्याख्यान देता फिरता है। इधर वाप जो वीमार पड़ा है, इसका उसे होश नहीं। वापू की तवीयत तक का हाल पूछने भी नहीं आता। सच, वहुत पाप किया हो, तभी ऐसे वेटे का वाप वनता है।

...उस दिन दौलतपुर में अचानक हंगामा मच गया।

कैलाश फूफा को खवर मिलते ही, वे मुकुन्द वावू के पास दौड़े आये।

"सुना, मुकुन्द, लड़ाई छिड़ गयी।" कैलाश फूफा ने खवर दी।

"लड़ाई ? मतलव ?"

कैलाश फूफा ठहरे मुहल्ले के मुखिया ! उन्होंने कहा, "सभी कह रहे हैं, दुनिया भर में जंग छिड़ गयी है।"

"किसके साथ, किसकी लड़ाई ?"

"सुना है, अंग्रेजों के साथ जर्मनी की..."

"क्यों ? लड़ाई की वजह ?"

"वजह क्या खाक मालूम होगी मुझे !"

मुकुन्द वावू समूची जिन्दगी जंग और सिर्फ जंग के गवाह रहे हैं। लड़ाई की खवर सुनकर अव वे पहले ही तरह उद्विग्न नहीं होते। हर रोज ही तो किसी-न-किसी खून-खरावी की खवर पर मुहल्ले में हंगामा मचा रहता है। उनके वचपन में एक वार जर्मनी और अंग्रेजों में जंग हुई थी। वहुत साल पहले की घटना है, अव याद भी नहीं। खासकर जैसोर जैसे जिले या दौलतपुर जैसे गांव में इस वात को लेकर भला कौन मायापच्ची करता है ? हां, हाल की घटनाओं में लोग ज्यादा सिर खपाते थे।

लेकिन अव माहौल वदल चुका था। लोगों में यह अफवाह गर्म थी कि जापानी लोग कलकत्ते में वमवारी कर सकते हैं। गोलक ने भी उन्हें ऐसी ही खवर दी थी।

मुकुन्द वावू ने गोलक को जवाव भी लिख भेजा था—तुम कलकत्ते वाले मकान में ताला लगाकर यहां आ जाओ। यहां वमवारी की कोई आशंका नहीं।

...इस कलकत्ते शहर ने अनगिनत आन्दोलन देखे हैं। अव नया कुछ देखना वाकी नहीं रहा था। सन् 1928 में पंडित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति नियुक्त हुए। हावड़ा स्टेशन के सामने वाली सड़क पर, चौंतीस घोड़ों की वग्घी में उनकी सवारी निकली। उनके आगे-आगे दो हजार पुरुष स्वयंसेवक, पांच सौ महिला स्वयंसेविकाएं। घुड़सवार वालेंटियरों की टोली मिलिटरी वर्दी में सजी-धजी विगुल फूंककर मार्च करती हुई आगे वढ़ी। माहौल में वार-वार 'वंदेमातरम्' के नारे। रास्ते के दोनों ओर दो-मंजिली-तिमंजिली इमारतों के वरामदों से औरत-मर्द फूल वरसाते हुए, ऐसा दृश्य फिर कभी किसी ने नहीं देखा। मुमकिन है, अव

कभी देखेगा भी नहीं।

'''समूचे भारत में अनगिनत बार कांग्रेस के अधिवेशन हुए, हड़तालें हुईं, सैकड़ों अंग्रेज खूनी हो गये। अंग्रेज साहबों को खून करने के जुर्म में जाने कितनी बार, कितने लोग फांसी के तख्ते पर लटका दिये गये, इनका हिसाब किसी के पास नहीं। लेकिन इस महायुद्ध के दौरान सारा कुछ उलट-पुलट गया। देश के नेताओं को जेल में ठूंस दिया गया। कलकत्ते शहर में 'ए० आर० पी०' और 'सिविल गार्ड' के रूप में देश के तमाम बेरोजगार नौजवानों को रातोंरात नौकरी मिल गयी। अंग्रेज सरकार की तरफ से उनको हर महीने मोटी-मोटी तनख्वाहें मिलने लगीं। हाथ में रुपया पाकर ये नौकरीशुदा नौजवान कुछ सालों को सुरक्षित हो आये। सबके सब मन-ही-मन मनाने रहे, भगवान करें, यह जंग कुछ सालों और चले ताकि वे कुछ साल और ऐश कर सकें।

'''एक दिन अफवाह फैली कि सुभाष बोस ने जर्मनी के बर्लिन शहर से इस देश के लोगों से बात की है।

इन बातों पर कुछेक लोगों को भरोसा भले आया हो, लेकिन ज्यादातर लोगों को अविश्वसनीय लगा। सुभाष बोस को उनके अपने मकान में पुलिस की निगरानी में नजरबंद रखा गया था। वे बीमार थे और दिन-रात अपने मकान में ही रहते थे। पुलिस की आंखों में धूल झोंककर, वे भागकर बर्लिन कैसे पहुंच गये, यही बात काफी रहस्यमय लग रही थी।

उन्हीं दिनों कलकत्ते से गोलकेन्दु सरकार अपने भृत्य गोष्ठ को लेकर दौलतपुर में हाजिर हुए।

मुकुन्द बाबू ने गद्‌गद् आवाज में कहा, "बहुत अच्छा किया, जो यहां चले आये। सुनने में आया है कि कलकत्ते पर बमबारी हो सकती है।"

"हां, कलकत्ते में भी सभी को यही आशंका है। लोग शहर छोड़कर भाग रहे हैं। सारे स्कूल-कॉलेज इन दिनों बंद हैं!"

"चलो, यहां कोई डर नहीं। कलकत्ते के बहुत से लोग अपना घर-द्वार छोड़कर यहां भाग आये हैं!"

गोलकेन्दु ने ही पूछा, "देबू की क्या खबर है?"

"जो लक्षण पहले थे, वही अब भी है। मेरी बातों पर तो वह कान ही नहीं देता।"

"इस वक्त कहां है? खेत पर गया है?"

"वह भला खेत-खलिहान में जायेगा? तुम कैसी बातें कर रहे हो? अगर वह खेत-जमीन देखता, तो मेरी यह दुर्दशा होती? मैंने तो अब खटिया ही पकड़ ली है! बच रहा हरबिलास! वही बिचारा अपने भरसक लगा रहता है। असल में,

एक ही बेटी है। मेरी सारी चिन्ता-फिक्र उसी को लेकर है। बी० ए० की परीक्षा में उसे डिस्टिंक्शन मिली है। अब सोचता हूं, उसका ब्याह कर ही डालूं। हमारा क्या भरोसा? अभी हूं, अभी नहीं।"

इतना कहकर वे मुकुन्द बाबू की ओर मुड़े, "मुकुन्द बाबू, आपने तो मेरी बेटी को देखा होगा? देबू ने उसे सालों पढ़ाया है। आप क्या मिनती को अपनी बहू बनायेंगे?"

मुकुन्द बाबू ने लेटे-ही-लेटे कहा, "ब्याह...और अपने बेटे के साथ?"

"हां, सच तो यह है कि आज मैं दौलतपुर इसीलिए आया हूं। आपका बेटा तो साक्षात् रत्न है। आपके बेटे से अगर मेरी मिनती का गठबंधन हो जाये, तो मिनती के साथ-साथ, मैं भी अपने को धन्य मानूंगा।"

मुकुन्द बाबू ने अचकचाकर पूछा, "यह आप क्या कह रहे हैं, पार्वती बाबू? अरे, आपकी बेटी से अगर मेरे बेटे का ब्याह हो जाये, तो धन्य तो मैं हो जाऊंगा। लेकिन...मेरे ऐसे नसीब कहां?"

"आप ये कैसी बातें करते हैं? देबू कितना हुनरमंद है और मेरी बेटी तो बहुत मामूली है। देबू की तरह कॉलेज में उसे स्कॉलरशिप भी नहीं मिली?"

"लेकिन देबू क्या ब्याह करेगा?"

पार्वती बाबू को उनकी बात समझ नहीं आयी।

उन्होंने अचकचाकर कहा, "मतलब?"

"मतलब आप नहीं समझे? अरे, वह लड़का क्या गृहस्थी में कुछ देखता है? मैं बीमार हूं, बिस्तर पर पड़ा हूं, वह क्या एक बार भी मेरी तबीयत पूछने आता है?"

पार्वती बाबू को कोई जवाब नहीं सूझा। उन्होंने थोड़ी देर ठहरकर कहा, "देखिये, मेरा ख्याल है, देबू का कोई निश्चित आदर्श है। उसका मन हर वक्त उसी में डूबा रहता है। इसीलिए घर के काम-काज की तरफ खास ध्यान नहीं दे पाता।"

"आदर्श?" मुकुन्द बाबू के होंठों पर उदास-सी मुस्कान तिर आयी, "जो आदर्श मां-बाप की श्रद्धा करना नहीं सिखाता, वह हरगिज आदर्श नहीं।"

"देखिये, मेरा तो ख्याल है, ब्याह हो जाये तो देबू का मन घर-गृहस्थी में पूरी तरह रच-बस जायेगा।"

मुकुन्द बाबू ने अविश्वास की गहरी उसांस भरकर कहा, "ऐसा हो जाये, तो मैं बच ही जाऊं। काश, ऐसा हो जाये, मैं और कुछ नहीं चाहता।"

पार्वती बाबू ने उन्हें तसल्ली दी, "मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसे बहुत-से लोगों को देखा है, जो ब्याह के पहले ऐसे ही थे, लेकिन ब्याह के बाद बिल्कुल बदल गये।"

"अगर मेरे देबू के साथ भी ऐसा करिश्मा हो जाये, तो सबसे ज्यादा मुझे खुशी होगी। जिन्दगी में अपने होश भर मैंने कभी किसी का नुकसान नहीं किया, किसी का बुरा भी नहीं चाहा। जाने मेरे ही साथ ऐसा क्यों हुआ?"

गोलकेन्दु अब तक चुप थे। अब उन्होंने जुबान खोली, "ठीक है। देबू से बात मैं ही करूंगा। वह मेरी बात कभी नहीं टालेगा।" पार्वती बाबू ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "हां, तुम्हीं जोर लगाओ गोलक। अगर तुम यह ब्याह करा सको, तो मैं हमेशा के लिए तुम्हारा अहसानमंद रहूंगा।"

"अरे, देबू मेरा भतीजा है! मैं खुद उसका मंगल चाहता हूं। वह शादी-ब्याह करके, संसारी बने, यही तो मेरी भी साध है।" गोलक ने कहा।

"अच्छा, तो फिर लेन-देन की बात भी तुम्हीं कर लेना। मुझे क्या-क्या देना होगा, बता देना।" पार्वती बाबू ने कहा।

"अरे, ये बातें बाद में होंगी। पहले देबू ब्याह के लिए राजी तो हो।"

गोलक की बात खत्म होने से पहले ही बता दूं कि मेरा देबू अगर इस ब्याह के लिए राजी हो जाये, तो मैं सिर्फ शाखा-सिन्दूर में अपनी बहुरिया के अलावा एक पैसा भी न लूंगा। आप क्या समझते हैं, कि मैं अपने बेटे को बेचने वाला हूं?"

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

सुप्रभात देवव्रत की जिन्दगी की घटनाएं इतनी गहराई से और करीब से जानता है, मुझे इसका अन्दाजा नहीं था।

मैंने पूछा, "हां, तो आखिरकार उनका ब्याह हुआ या नहीं?"

"देखो, बिरादर, हमारे मुल्क में शादी-ब्याह के मामले में मिनट भर भी देर नहीं लगती एकमात्र समस्या होती है—दहेज, लेन-देन! यानी लड़के वाले लड़की वालों से कितनी मांग करेंगे, बात यहीं अटकती है। इस मामले में यहां कोई समस्या ही नहीं थी। एक ओर अड़चन होती है, लड़की पसंद होगी या नहीं। यहां यह समस्या भी नहीं थी, क्योंकि दूल्हा-दुल्हन एक-दूसरे के देखेभाले थे, परिचित और अंतरंग थे। यानी इस ब्याह में कोई झमेला नहीं था। समस्या सिर्फ यह थी कि देवव्रत ब्याह के लिए राजी होगा या नहीं।"

इस समस्या के समाधान की जिम्मेदारी गोलकेन्दु को सौंप दी गयी।

लेकिन···देवव्रत जैसे व्यस्त इंसान के साथ बातचीत का मौका मिल सके, यही बड़ी बात थी।

देवव्रत के जिम्मे क्या एकाध काम है? युद्ध छिड़ते ही उसकी व्यस्तता मानो कई-कई सीढ़ियां फलांगकर एकदम से बहुभुजा हो गयी थी। कहां किस मुहल्ले में अभाव-शिकायतें हैं, कौन कहां बीमार पड़ा है, इसकी खोज-खबर रखना। ऊपर से

कलकत्ते शहर में बमबाजी ! गांधीजी का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हो चुका था। उस वक्त दुनिया भर में देश के मंगल के लिए जहां, जो भी काम हो रहा था, मानो सारा कुछ देवव्रत ही कर रहा हो। देश के कल्याण की समूची जिम्मेदारी मानो देवव्रत के कंधों पर आ पड़ी हो। कलकत्ते शहर पर जापान का बम फटा। उससे जो नुकसान हुआ, मानो अकेले देवव्रत का नुकसान था।

रास्ते में देवव्रत से टक्कर होते ही कैलाश फूफा ने सवाल किया, "सुनो, कलकत्ते में बम पड़े तो तेरा क्या नुकसान है? बम तेरे सिर पर तो नहीं फूटा।"

देबू ने छूटते जवाब दिया, "बम मेरे सिर पर नहीं पड़ा तो भी क्या? मेरे देश के लोगों के सिर पर तो पड़ा है? वे लोग भी तो आखिर इंसान हैं! उनके भी तो मां-बाप, भाई-बहन हैं? उनका नुकसान क्या हम सबका नुकसान नहीं?"

यह तर्क किसी की भी समझ से परे था। हालांकि कोई उसे 'पागल' कर उड़ा भी नहीं सकता था।

हर समय, हर कहीं, जिसका कोई भी नहीं; वह उसका नितान्त अपना था; जिसके सब थे, उसके लिए भी वह पराया नहीं, नितान्त अपना था। दरअसल उसका कोई नहीं था। वह था, नितान्त अकेला! बिल्कुल तन्हा! संसारी होते हुए भी अकेला; अकेला होते हुए भी संसारी।

ऐसे शख्स को ब्याह के लिए राजी कराना आसान नहीं था।

गोलकेन्दु ने बहस जारी रखते हुए पूछा, "ब्याह करने में तुम्हें एतराज क्या है?"

"ब्याह किया, तो मेरी जिम्मेदारी बढ़ जायेगी। बीवी-बच्चों की तरफ ध्यान बंट जायेगा। उनकी सुख-सुविधा का भी जतन करना होगा।"

"हां, वह तो करना ही होगा। सब लोग यही करते हैं।"

"लेकिन मुझे तो इतनी फुर्सत नहीं है, काका?"

"भई, ब्याह करने के लिए फुर्सत की क्या जरूरत है? हम सबने भी तो ब्याह किया ही है। तुम्हारे बापू ने ब्याह किया, तुम्हारे नाना-दादा ने भी ब्याह किया ही था। ब्याह तो सभी करते आये हैं और भविष्य में भी सब करेंगे।" गोलक काका ने तर्क दिया।

"लेकिन, आपने सुभाष बोस का नाम भी सुना होगा। वे इन दिनों इण्डिया से बाहर चले गये हैं; उन्होंने क्या ब्याह किया है? स्वामी विवेकानन्द का नाम भी आपने···।"

गोलकेन्दु उसकी जुबानदराजी पर खीज उठे, उन्होंने उन्हें तीखी आवाज में डपट दिया, "तुम क्या सुभाष बोस हो या विवेकानन्द? तुम साधारण गृहस्थ इंसान हो। अपने बीच तुम उनकी बात क्यों ला रहे हो?"

"चलिए, उनकी बात छोड़ भी दें, तो भी ऐसे कितने ही साधारण लोग हैं, जिन्होंने ब्याह नहीं किया। यह बात आप भी बखूबी जानते हैं।"

"लेकिन, तुम अपने बाप के इकलौते बेटे हो! तुम क्या चाहते हो कि मेरा वंश खत्म हो जाये? एक बार जरा अपनी मां की बात भी सोचो। उनकी भी अब उम्र हुई, उन्हें भी तो अपने आखिरी समय के लिए कोई सहारा चाहिए। जब वे नहीं रहेंगी, तो इस गृहस्थी का क्या हाल होगा, कभी सोचा है?"

अचानक बाहर से किसी ने आवाज लगायी, "देबू दा! ओ देबू दा!"

देवव्रत फौरन बाहर निकल आया। उसी के दल का एक सदस्य—खोकन—उसे बुला रहा था।

देबू ने पूछा, "क्या हुआ? क्या बात है?"

खोकन ने दबी आवाज में सूचना दी, "अविनाश पकड़ा गया।"

"अविनाश ही पकड़ा गया?"

"हां, रात डेढ़ बजे पुलिस उसके घर में जबर्दस्ती घुस गयी और उसे गिरफ्तार करके ले गयी। घर की सारी चीजें तहस-नहस कर डालीं और कागज-पत्तर बरामद करके और भी कई लोगों के नाम-ठिकाने जान चुकी है तुम्हें यही खबर देने आया था। अब मैं चलूं—।"

खोकन चला गया। गोलकेन्दु काका उस वक्त भी कमरे में ही खड़े थे।

देबू के आते ही उन्होंने दरयाफ्त किया, "क्या हुआ? इतनी सुबह-सुबह तुम्हारे पास कौन आया था?"

"हमारे क्लब का एक लड़का! सुनिये काका, मैं जरा बाहर जा रहा हूं, आप नाराज न हों। लौटने में मुझे कुछ देर हो जायेगी।"

मैंने उत्सुक होकर सवाल किया, "हां, तो फिर···?"

सुप्रभात बताने लगा, "अन्त जानने की इतनी जल्दबाजी क्यों? अभी तो कहानी शुरू भी नहीं हुई, अभी से अन्त जानना चाहते हो? अभी तो महज शुरुआत है···।"

लेकिन···आगे की कहानी जानने के लिए मैं बुरी तरह बेसब्र हो उठा था। मैंने छूटते ही पूछा, "तुमने झरना देवी के बारे में कुछ नहीं बताया।"

सुप्रभात कहानी सुनाते-सुनाते थकने लगा था।

उसने शिथिल लहजे में कहा, "अपने नौकर से एक गिलास पानी लाने को कहो।"

मैंने पानी लाने को आवाज लगायी।

सुप्रभात ने कहा, "सब्र करो, झरना देवी, आल्ता मौसी···सभी आयेंगी बारी-बारी से। अभी तो महज बीज पड़ा है, जरा पौधा तो उगने दो, उसे जरा

बड़ा तो होने दो, तभी तो पेड़ की डालें फलेंगी-फूलेंगी।"

इस बीच पानी भी आ गया। पानी के साथ मिठाई भी आयी थी।

सुप्रभात ने मिठाई उठाकर मुंह में डालते हुए कहा, "चलो, मुंह तो मीठा करा दिया तुमने, लेकिन जब कहानी के अंत तक पहुंचूगा, तो तुम्हें कड़वी लगेगी।"

"कड़वी? कड़वी क्यों लगेगी?"

"क्यों? तथागत बुद्धदेव की जीवनी का अंत कड़वा नहीं? महात्मा गांधी, सुभाष बोस की जिन्दगी का शेषांश कड़वा नहीं? ईसा के जन्म से भी चार सौ निन्यानवे वर्ष पहले का शख्स सुकरात, उसकी जिन्दगी का आखिरी पल कड़वाहट नहीं देता?"

सुप्रभात के तर्क ऐसे अकाट्य थे कि मुझे हार मानना ही पड़ा।

मैंने कहा, "नहीं मैंने उस अर्थ में कड़वा नहीं कहा। मेरा मतलब कुछ और था। मैं यह कहना चाहता था कि देवव्रत की जीवन कथा कम-से-कम अब समाप्त हो। चाहे ट्रैजेडी हो या कॉमेडी, कोई हर्ज नहीं, लेकिन कहानी को बिल्कुल सही बिंदु पर खत्म होना चाहिए। आजकल के लेखक तो कहानी का अंत करना भी नहीं जानते।"

सुप्रभात ने पानी पीकर गिलास एक ओर रख दिया।

उसने कहानी आगे बढ़ायी, "यह सब मुझे नहीं मालूम। मैं तो न लेखक हूं, न पाठक! मैंने तो जो कुछ अपनी आंखों से देखा है, वही तुम्हें बता रहा हूं। इसके बाद भी···यह कहानी खत्म हो या न हो, मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं। मैं तुम्हें सिर्फ कहानी बता रहा हूं और बस, खल्लास!"

मैंने कहा, "ठीक है! अब बताओ, अपने देवव्रत की बाकी कहानी! अच्छा, यह बताओ, देवव्रत ने आखिरकार ब्याह किया या नहीं?"

"अरे, भइये, बंगाली लोगों के ब्याह में देरी नहीं होती। वर और कन्या पक्ष के लोग, अगर रजामंद हों तो आमतौर पर इसके बाद कोई गोलमाल नहीं होता। हद से हद लड़का खुद एक बार लड़की देखने की फर्माइश करता है, नाम मात्र को लड़की देखने पहुंच जाता है। अगर बहुत ज्यादा जरूरत हुई तो दो-एक सवाल भी पूछ लेता है। वह पूछेगा—लिखाई-पढ़ाई कहां तक की है? खाना पकाना आता है या नहीं? यह आम सवाल···।"

मैं सुनता रहा।

थोड़ा दम लेकर सुप्रभात ने कहानी की अगली कड़ी जोड़ी, लेकिन यहां तो लड़की देखने का भी सवाल नहीं था क्योंकि पार्वती बाबू भी उसके परिचित थे और मिनती को भी वह बराबर देखता आया है। उसने उसे पढ़ा-लिखाकर, इम्तहान भी पास कराया है। इसके बदले में अपने मिनती के बापू से फीस-वीस भी

नहीं ली। खैर, रुपये-पैसे तो उसने अपने किसी विद्यार्थी से नहीं लिये। विद्या-दान से उसने कभी मुनाफा नहीं कमाया। वैसे मुनाफे की उसने कभी उम्मीद भी नहीं की थी। दुनिया में ढेरों लोगों के लिए उसने ढेरों काम किये, लेकिन किसी दिन, किसी से प्रतिदान में कुछ नहीं मांगा।

शायद उसकी इसी खूबी के कारण पार्वती बाबू अपनी बेटी ब्याह कर उसे अपना दामाद बनाना चाहते थे। खैर, आदमी की उम्मीदों का कहीं कोई अंत नहीं।

मुकुन्द बाबू ने कहा, "मेरे भाई ने कई बार कोशिश की, देवू से आपकी बेटी के ब्याह के बारे में बात करे, लेकिन उसने तो कान ही नहीं दिया।" थोड़ा रुककर उन्होंने एक और वाक्य जोड़ा, "आप एक काम कीजिए···।"

"कौन-सा काम ?" पार्वती बाबू ने पूछा।

"आप एक बार खुद ही देवू से बात कर देखें न—"

"मैं क्या बात करूं ?"

"कहिये कि आप उससे अपनी बेटी ब्याहना चाहते हैं।"

"लेकिन यह बात अगर आप कहें, तो बेहतर नहीं होगा ?"

"मैं देवू का पिता हूं, यह बात अगर मैं ही करता, तो वाकई बेहतर था। लेकिन मेरी बात क्या वह मानेगा ?"

"जो आपकी बात नहीं सुनता, वह मेरी बात क्या सुनेगा ? आप तो तब भी उसके पिता हैं, मैं कौन हूं ? तो तो ठहरा पराया ! गैर आदमी !"

"लेकिन मैंने आपसे कहा न, वह मेरी बात बिलकुल नहीं सुनता।"

"तो आप अपनी पत्नी से कहें न बात करने को।"

"अरे, उसकी बात ? उसकी बात तो वह और भी नहीं सुनेगा।"

इसके बाद, बात आगे नहीं बढ़ायी जा सकी।

यूं, पार्वती बाबू काफी उम्मीद लेकर आये थे। अंत में क्या उन्हें हताश होकर खाली हाथ लौट जाना होगा ?

हालांकि यहां आते वक्त वे मिनती से कहकर आये थे कि चाहे जैसे भी हो, देवव्रत को ब्याह के लिए राजी कराकर ही लौटेंगे। अब वे खाली हाथ लौटे, तो वह क्या सोचेगी ?

आते वक्त उन्होंने मिनती से सीधे-सीधे ही सवाल किया, "मैं तो जा रहा हूं, लेकिन तुझे तो कोई आपत्ति नहीं ? अच्छी तरह सोच ले !"

उनकी इस बात का जवाब देने में मिनती पहले थोड़ी दुविधा महसूस कर रही थी।

पार्वती बाबू ने दुबारा पूछा, "क्यों, रे, मेरी बात का जवाब दे।"

काफी उकसाये जाने पर मिनती ने जवाब दिया, "तुम्हें जो भला लगे,

करो।"

पार्वती बाबू ने कहा था, "लेकिन तुम अपनी मर्जी बताओ। फर्ज कर, मैं उसे राजी करा भी लूं, उसके बाद तू ही मुकर जाये तब ?"

अगर उनकी पत्नी जिन्दा होती तो इस बारे में इतनी फिक्र की जरूरत नहीं होती। इस काम का जिम्मा वह खुद ही उठा लेती। मिनती से उसकी रजामंदी हासिल करने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होती।

इसके अलावा मिनती अब सयानी हुई। शादी के मामले में उनकी भी राय बेहद कीमती थी।

बार-बार पूछने के बावजूद मिनती जवाब देने में कतरा गयी। पार्वती बाबू को आशंका हुई, कहीं ऐसा तो नहीं कि उनकी बेटी देबू से ब्याह नहीं करना चाहती हो।

बहरहाल औरतों के मन की बात समझना देवताओं के लिए भी असाध्य है। मुमकिन है, यही सच है। लेकिन यह काम उसके अलावा भला और कौन करता ? इतने नजदीकी रिश्तेदार भी कहां हैं ? ऐसी कोई आत्मीया भी नहीं, जिसके जरिये वह बेटी का मन जान सकें।

यह भी तो मुमकिन है कि उनकी बेटी ने अपने मन-मन्दिर में किसी और को बसा लिया हो। पुराने जमाने लद गये। अब गौरी-दान का युग नहीं रहा। देवव्रत के यहां लड़कियों के अलावा बहुत से लड़के भी पढ़ने आया करते थे। मुमकिन है, उन्हीं में से किसी के साथ मन का आदान-प्रदान हो चुका हो। इस युग में सबकुछ संभव है।

यदि पिछला जमाना होता, तो बेहद कम उम्र में ही बेटी को ब्याह कर निश्चिन्त हो जाते। लेकिन लिखाई-पढ़ाई के प्रति मिनती का झुकाव देखकर, वे भी उसे हमेशा प्रोत्साहित करते रहे। वे खुद भी नारी-शिक्षा और नारी-स्वतंत्रता के पक्षधर थे। इसीलिए जितनी दूर तक संभव हुआ वे उसे लिखते-पढ़ाते रहे।

लेकिन ब्याह की भी तो आखिर एक उम्र होती है। उम्र के धर्म को भी तो वे अस्वीकार नहीं कर सकते। उम्र तो किसी-न-किसी दिन इंसान पर दखल जमाती ही है।

आखिरकार काफी आरजू-मिन्नत करने पर मिनती खुली थी, "इस मामले में मैं क्या कहूं, बापू, आप जो बेहतर समझें, वही करें। आप भी तो मेरा भला और मंगल ही चाहते हैं।"

देवव्रत सरकार की बातें मिनती को आज भी याद हैं।

बहुत दिनों पहले मास्टर साहब ने उन लोगों से सवाल किया था, "बताओ तो, पेड़ की हर कली, फूल क्यों नहीं बन पाती ?"

मिनती सोच की पटरियों पर तेज-तेज दौड़ती रही...अपनी जिन्दगी की

मुहबन्द कली को वह कैसे फूल बना दे। अन्त में वह इसी फैसले पर पहुंची थी कि मास्टर साहब जैसे सच्चे और शरीफ इंसान की संगति ही उसके मनुष्यत्व के फूल खिला सकती है।

बेटी की रजामंदी लेकर ही पार्वती बाबू दौलतपुर आये थे और मुकुन्द बाबू के आगे देवव्रत से अपनी बेटी के ब्याह का प्रस्ताव रखा था। यहां मुकुन्द और गोलक से बातचीत के बाद वे हताश हो गए।

बहरहाल, मुकुन्द की सलाह पर उन्होंने आखिरी कोशिश की। देवव्रत से मिलकर ब्याह का जिक्र छेड़ा।

शुरू-शुरू में उनकी बातें सुनकर देवव्रत मानो आसमान से गिरा।

उसने अचकचाकर पूछा, "मिनती से मेरा ब्याह? आप यह क्या कह रहे हैं?"

"क्यों? मैंने कोई गलत बात कह दी? अपनी तरफ से कोई अनुचित प्रस्ताव रख दिया? मैं तुम्हें इतने अर्से से जानता-पहचानता हूं, मिनती भी तुम्हें वर्षों से जानती है। तुम भी उसे समझते हो। इसलिए, मैं तुमसे सिर्फ मौखिक सम्मति के अलावा और कुछ नहीं मांग रहा। तुम हामी भर दो, तो मैं रिश्ते की बात करूं।"

"इस बारे में अगर मेरे बापू या काका यह संदेशा देते, तो बेहतर होता न?"

"मैंने तो पहले-पहले उन्हीं के सामने रिश्ते की बात छेड़ी थी, लेकिन उन्होंने कहा कि तुम उनका कहना हरगिज नहीं मानोगे। उन्होंने ही मुझे तुमसे बात करने का परामर्श दिया, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूं।"

पार्वती बाबू का प्रस्ताव सुनकर देवव्रत कुछेक पल को खामोश ही रहा। कुछेक पल सोचने के बाद उसने जुबान खोली, "आपसे एक बात कहना चाहता हूं।"

"एक ही बात क्यों, मैं ठहरा बेटी का बाप, तुम एक हजार बातें भी कहो, तो भी मैं सुनने को तैयार हूं। कहो, क्या कहना चाहते हो?"

"मैं ब्याह करूंगा या नहीं, यह मैं मिनती से बात करने के बाद बताऊंगा।"

पार्वती बाबू की उसकी बात समझ में नहीं आयी।

उन्होंने अबूझ की तरह सवाल किया, "तुम मिनती से इस बारे में बात करना चाहते हो?"

"हां, मैं उसकी राय जानना चाहूंगा।"

"राय? किस बारे में?"

"हमारे ब्याह के बारे में। अगर वह खुद राजी हो, तभी मैं उससे ब्याह की बात सोच सकता हूं।"

पार्वती बाबू किसी गहरी सोच में पड़ गये। देवव्रत उनकी बेटी कि

बखूबी जानता है। अब उससे मिलकर ऐसी कौन-सी व्यक्तिगत बातें करना चाहता है ?

खैर, बात करना चाहता है, तो कर ले। इसमें उन्हें कोई एतराज नहीं।

अतः पार्वती बाबू ने कहा, "ठीक है ! मैं ऐसा ही करूंगा। मिनती को ले आऊंगा तुम्हारे पास। तुम उससे मिलकर, बात कर लो, उसके बाद अपना फैसला सुनाना। मुझे कोई आपत्ति नहीं। उसके साथ तुम्हें सारी जिन्दगी गुजारनी है। एक-दूसरे की राय जानना जरूरी है। मुझे तुम्हारी बातों से बेहद खुशी हुई है। तो मैं चलूं, अब जितनी जल्दी हो सकेगा, मिनती को साथ लेकर आऊंगा तुम्हारे यहां। तुम तो हजारों कामों में व्यस्त रहते हो। फिर भी जरा फुर्सत निकालकर उससे बात कर लेना।"

पार्वती बाबू ढाका लौट गये। जाने से पहले उन्होंने मुकुन्द और गोलक को भी देबू से बातचीत का सार-मर्म बता दिया।

मुकुन्द और गोलकेन्दु ने राहत की सांस ली। देबू आखिरकार संसारी होने को राजी हो गया, इससे बड़ी खुशखबरी और क्या हो सकती है ?

एक मामूली-सी औरत झरना देवी ! उन्हें पद्मश्री मिलने के सिलसिले में सुप्रभात कोई ऐसा प्रसंग छेड़ेगा कि देवव्रत सरकार जैसे वीतरागी इंसान का परिचय मिलेगा, मैंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी।

मैंने पूछा, "और तुम्हारी वह आल्ता मौसी ? तुमने कहा था, आल्ता मौसी एक प्रतीक चरित्र है ? तुम उनके बारे में भी तो कुछ बताओ।"

"अरे भइये, रुको ! रुको ! इतनी जल्दबाजी मचाने से क्या काम चलता है ? किसी भी कहानी में हर चरित्र की एक निश्चित जगह होती है। वह जगह बदलकर, अगर और कहीं उसका जिक्र छेड़ा जाये, तो रसभंग हो जाता है। सब्जी में नमक ज्यादा या कम हो तो उसके स्वाद में भी काफी फर्क पड़ता है। कहानी के चरित्रों के मामले में भी यही सच है। कोई भी चरित्र बेजरूरत ही जहां-तहां न आ धमके या अपनी निश्चित जगह से अचानक अन्तर्ध्यान न हो जायें, यही कहानी का नियम है। जिस भी लेखक ने इस नियम का उल्लंघन किया, बाद में बेतरह पछताना पड़ा। अधिकांश लेखक इसीलिए साहित्य में बेनिशान हो गये या पाठक की दुनिया ने उन्हें बिलकुल भुला दिया।

सुप्रभात की यह फिजूल भाषणबाजी मुझे जहर लग रही थी। जो शख्श बात-बात में व्याख्यान दे, उसे सुनना किसी को भी भला नहीं लग सकता। कहानी में ज्ञान देना अगर इतना ही जरूरी हो तो इसके लिए ऐसी जगह चुनी जाती है, जहां ज्ञान के जुमले कहानी की गति को न तोड़ें। न ही उसकी शैली को ठेस पहुंचे। लेकिन यह कला भला कितने लेखकों को आती है ? और कितने पाठक

इसे समझ पाते हैं ?

बहरहाल, मैंने अपनी खीज दबाते हुए उससे पूछा, "हां तो उसके बाद क्य हुआ ?"

"उसके बाद और क्या होना था ? एक दिन मिनती के साथ देवव्रत का ब्या हो गया ?"

"और वह जो देबू ने कहा था कि ब्याह से पहले वह मिनती से मिलक उसकी राय जानना चाहता है ?"

"अरे, यह राय लेने-देने का मामला यथासमय तय हो चुका था।"

"लेकिन कैसे ? उस मुलाकात के बारे में भी तो बताओ।"

"चलो, यह घटना अभी रहने दो। बात मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा। ब्याह बाद क्या हुआ, सुनो ?"

"'उस वक्त इण्डिया जंग की आग में जल रही थी। सन् 1942 में महात्म गांधी 'क्विट इण्डिया' आन्दोलन चला रहे थे। उस आन्दोलन ने दौलतपुर लोगों को भी स्पर्श किया। भगतसिंह, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद ने देश क आजाद कराने के लिए अलग राह चुनी थी। गांधी जी के आन्दोलन का तरीक बिल्कुल निजी और अलग था। वह हवा दौलतपुर तक आ पहुंची।

किसी-न-किसी दिन आधी रात को कोई आवाज देकर हवेली से बाह बुलाता और दबे स्वर में सूचना देता, "देबू'दा सर्वनाश हो गया।"

"क्या हुआ ?"

"पुलिस आकर अविनाश को पकड़ ले गई।"

"उसका कसूर ?"

"रात को वह रेल की पटरियों के किनारे-किनारे इच्छामती की ओर ज रहा था। उसके झोले में बम निकला, इसलिए उसे गिरफ्तार कर लिया गया अब पुलिस सबके घर-घर तलाशी लेगी। अब क्या करें ?"

देवव्रत ने कुछेक पल सोचकर कहा, "तू ऐसा कर, कहीं छिप जा।"

"लेकिन कहां छिप जाऊं ?"

"तू कलकत्ते चला जा, हेमन्त'दा के यहां ! जैसा वे कहें, वही करना हेमन्त'दा को मेरा हवाला देना।"

"लेकिन'''तुम'''?"

"तू मेरी फिक्र न कर'''।" कुछ सोचकर उसके दुबारा पूछा, "तेरे पास रुपये पैसे हैं।"

"नहीं।"

"नहीं हैं, तो मैं लाकर देता हूं। तू रुक जा।" देवव्रत ने कहा और हवेल के भीतर चला गया। अपने कमरे में उसने आलमारी खोली और पांच सौ रुप

निकालकर उसने आलमारी दुबारा बंद कर दी। बाहर आकर उसने वे रुपये खोकन के हाथ पर रख दिये। खोकन अंधेरे में खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

देवव्रत ने कहा, "ले, पांच सौ रुपए हैं। अब देरी न कर। फौरन हेमन्त'दा के पास जा। हेमन्त'दा जैसा कहें, वैसा करना।"

"और तुम···? तुम्हें भी तो पुलिस गिरफ्तार कर सकती है। फिर ?"

"मेरे लिए परेशान होने की तुम्हें जरूरत नहीं। मुझे जो बेहतर समझ में आयेगा, करूंगा।"

उसकी बातें सुनकर खोकन ने कहा, "लेकिन···तुम्हारा ब्याह भी हो चुका है, देबू'दा।"

"ब्याह हो चुका है तो क्या हुआ ? ब्याह किया है, इसलिए क्या मैं तुम्हारे दल मे निष्कासित हो गया हूं ? तू जा, भोर होने ही वाली है। अब देर मत कर।"

खोकन ने मिनट भर भी देर नहीं की। वह अंधेरे में अन्तर्ध्यान हो गया।

खोकन को विदा करके, देवव्रत अपने कमरे में चला आया और बिस्तर पर लेटकर सोने की कोशिश करने लगा। लेकिन उस अंधेरे में अचानक मिनती पर निगाह पड़ते ही वह चौंक उठा।

"अरे, तुम···? क्या बात है ? तुम यहां···? इस वक्त ?"

"क्यों ? तुम्हारे कमरे में आने के लिए मुझे वक्त-बेवक्त देखना होगा ?"

"तुम्हारे साथ यही समझौता हुआ था न ?"

"समझौता ?"

"हां, समझौता ! ब्याह से पहले जो बात हम दोनों ने तय की, तुम भूल गयीं ?"

"मुझे नींद आ रही थी चुपचाप लेटी हुई थी। अचानक किसी की आवाज सुनायी दी। बाहर से कोई तुम्हें दबी आवाज में पुकार रहा था। मेरा जानने का मन हुआ, इसीलिए तुम्हारे कमरे में चली आयी।"

"लेकिन तुम्हारा मेरे कमरे में आना अनुचित है।"

"बाहर जो आया था, कौन था ?"

"यही क्या मेरे सवाल का जवाब है ? मैंने तो तुमसे उसी दिन वादा ले लिया था, कि मैं कब, किससे, क्या बातें करता हूं, कौन मुझसे मिलने आया, उससे मेरी क्या बात हुई—ये तमाम सवाल तुम मुझसे कभी नहीं करोगी।"

"लेकिन अब तुम इस सच से भी इंकार नहीं कर सकते कि पहले मैं तुम्हारी छात्रा थी, लेकिन अब···तुम्हारी बीवी हूं। तुम मुझे बीवी का सम्मान भी नहीं दोगे ?"

"चलो, तुम अपने कमरे में जाओ। मैं अब वे पुराने गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ना चाहता।"

"इसके बाद मिनती और क्या कहती ? उसकी आंखों से एकबारगी आंसुओं

की धार वह निकली।

उसे रोते देखकर देवव्रत ने कहा, "तुम यह हरगिज मत समझना कि तुम्हारी आंखों मे आंसू देखकर, मैं अपनी प्रतिज्ञा भूल जाऊंगा।"

"फिर तुमने मुझसे ब्याह क्यों किया ?"

"मैंने तो तुम्हारी रजामंदी से तुमसे ब्याह किया था। तुम भी तो मेरी बात मानकर इस ब्याह के लिए राजी हुई थी ? हुई थी या नही ?"

मिनती के पास कोई जवाब नही था।

"असल में उस वक्त मुझे पता नही था'''उस वक्त मैं समझ नही पायी थी'''"

"अगर तुम्हें पता नहीं था या तुम समझ नही पायी थी, इसके लिए क्या मैं जिम्मेदार हूं ?"

मिनती की जुबान उसी तरह खामोश रही।

"सुनो, इस वक्त मैं बहुत परेशान हूं, मेरे सिर पर बहुत-सी जिम्मेदारियां है, तुम इस वक्त क्यों आयी ? तुम्हें आने का और कोई वक्त नहीं मिला ?"

"तुम्हारे पास कब वक्त होगा, मुझे बता दो, मैं तुम्हारे दिए हुए वक्त में ही तुमसे मिलूंगी, तब भी यही सवाल करूंगी।"

"तुम देख तो रही हो, घर में बापू बीमार पड़े हैं। तुम देख रही हो, देश डगमगा रहा है। मुहल्ले-मुहल्ले से पुलिस देश के नौजवानों को बेभाव धर-पकड़ रही है और उन्हें गिरफ्तार करके उन पर अकथनीय अत्याचार कर रही है'''और ऐसे दुर्दिन में'''यहां हम दोनों, इस किस्म के तुच्छ मान-अभिमान को लेकर प्यार-तकरार में समय बर्बाद कर रहे हैं।"

"मुझे माफ करना। वाकई मुझसे भूल हो गयी।"

इतनी देर बाद देवव्रत मानो कुछ नरम पड़ा। उसने कहा, "तुम मुझे गलत मत समझना, मिनती। गुस्से में आकर मैंने जाने क्या-क्या कह दिया तुम्हें, उसके लिए मुझे सच ही खेद है।"

मिनती की रुलाई थम चुकी थी। देवव्रत उसके करीब चला आया और उसका चेहरा अपनी हथेलियों में थामकर उसे अपने सीने मे दुबका लिया।

उसने कहा, "जाओ, मिनती, अपने कमरे मे जाकर आराम से सो जाओ। रात-रात भर जागती रहीं, तो बीमार पड़ जाओगी।"

"सुनो, आज मुझे अपने कमरे मे सोने दो न !"

"नहीं, मिनती, यह नहीं हो सकता। बिलकुल नही !"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

"यह बात तो मैंने तुम्हें ब्याह से पहले ही बता दी थी।"

"यह क्या तुम्हारा आखिरी फैसला है ?"

"ऐसी बातें क्यों कर रही हो, जी ? मैंने तो तुम्हें ब्याह से पहले ही, बता दिया था। जाओ, रोओ मत। अपने कमरे में जाओ। यूं वेभाव रोती-धोती रहोगी, तो लोगों को पता चल जायेगा।"

समूची दुनिया में भयंकर महाकांड मचा था। उसका भीषण असर सिर्फ इंग्लैंड, अमेरिका, रूस या जर्मनी पर ही नहीं पड़ा। जर्मनी तो इस खौफनाक महायुद्ध की मार से बिलकुल क्षत-विक्षत हो चुका था।

और जापान ? जापान के हिरोशिमा, नागासाकी पर 6 अगस्त 1945 को एक ऐसा भयंकर बम फटा, जो दुनियावालों की कल्पना में भी नहीं था।

...और जिन पर देवव्रत ने सबसे ज्यादा भरोसा किया था, जिन महापुरुष ने उसके मन को सबसे ज्यादा प्रभावित किया था, वही सुभाष बोस ? वही नेताजी...?

दौलतपुर में अचानक वह दुःसंवाद पहुंचा था। तारीख 18 अगस्त 1945। यह समाचार खोकन लाया था।

खोकन रो पड़ा।

देवव्रत ने पूछा, "क्या हुआ, रे ? बता न ! तू कुछ बोल क्यों नहीं रहा ?"

खोकन ने रोते-रोते बताया, "देबू'दा, सर्वनाश हो गया।"

"क्यों ? कैसा सर्वनाश ?"

"कलकत्ते से खबर आयी है, नेता जी सुभाष बोस नहीं रहे—"

"किसने कहा ?"

"हर जुबान पर है ये बात। सुना है, अखबारों में भी छपी है यह खबर।"

"कौन-से अखबार में ?"

"कहते हैं, कलकत्ते का हर अखबार इसी खबर से भरा पड़ा है।"

देवव्रत यह खबर सुनकर कुछ देर के लिए बिलकुल पत्थर-सा हो गया।

कुछ देर बाद मानो उसे होश आया।

उसने फिर पूछा, "तुम्हें पक्का पता है ?"

"कलकत्ते से एक आदमी आया है। उसी ने..."

उस जमाने में दौलतपुर में बहुत कम अखबार पहुंचते थे। जो आते भी थे, तो काफी देर से मिलते थे। अक्सर अगले दिन पहुंचते थे। उस गांव तक पहुंचते-पहुंचते बासी हो चुके होते।

सचमुच, बहुत बुरी खबर थी। हालांकि अभी कुछ ही दिनों पहले अफवाह उड़ी थी कि सुभाष बोस अपनी आजाद हिन्द फौज सहित इंडिया के मणिपुर प्रान्त तक आ पहुंचे और उन्होंने वहां भारत का राष्ट्रीय झंडा भी फहरा दिया है यानी आजादी में अब ज्यादा देर नहीं है।

उसी दिन देवव्रत के 'चरित्र गठन शिविर' के लड़के-लड़कियों में उत्तेजना की लहर दौड़ गयी। सभी लोग मन-ही-मन प्रस्तुत हो चुके थे। ये अंग्रेज अब ज्यादा देर यहां नहीं टिकने वाले।

दौलतपुर के वे सभी लोग आज भी मौजूद हैं सिर्फ सुलतान अहमद साहब और कन्हाई मल्लिक ही नहीं रहे। कन्हाई को अचानक तेज बुखार चढ़ा और डॉक्टर आने से पहले ही उसने दम तोड़ दिया।

अविनाश भी गैरहाजिर! पुलिस ने उसे हवालात में बंद कर रखा था। उसे छुड़ाकर लाये कौन? और फिर भला पुलिस उसे क्यों छोड़ने लगी?

उस दिन 'चरित्र गठन शिविर' के सदस्यों की सभा बुलायी गयी। सभी लोग स्कूल के सामने इकट्ठे हुए।

मैंतेन ने घोषणा की—इसका बदला हम जरूर लेंगे। नेता जी नहीं रहे। लेकिन उनका अधूरा काम अब हमें पूरा करना है।

सबने लगभग यही सकल्प लिया। सबके वक्तव्य का एक ही सुर! सबसे अन्त में देवव्रत सरकार की बारी आयी।

उसने खड़े होकर कहा—आज तुम लोगों ने देश को आजाद कराने का जो सकल्प लिया है, इसे पूरा करने के लिए सबसे पहला और अहम काम है—चरित्र गठन! चरित्र गठन ही इंसान का पहला फर्ज है। जो इंसान चरित्र गठन में कामयाब हो सका, वही अपने सारे सकल्प भी पूरा कर सकेगा। जिसका कोई चरित्र नहीं, वह इंसान कहलाने के ही योग्य नहीं। मुझे यह ज्ञान-सूत्र थमा गये हैं, चरित्र गठन शिविर के प्रतिष्ठाता, मरहूम सुलतान अहमद साहब! उन्होंने ही हमें यह सीख दी कि इस दुनिया में आकर अगर हमने अपने सृष्टिकर्ता का ऋण-शोध नहीं किया। तो हम इंसान होने के बावजूद जानवर से बदतर साबित होंगे। इंसान और जानवर में आखिर क्या फर्क है? फर्क सिर्फ इतना है कि जानवर तो बस, जैसे-तैसे जीता रहता है। प्रकृति हमें रोशनी, हवा, गर्मी, पानी'''बहुत कुछ देती है। इसके लिए जानवर को कोई टैक्स नहीं देना पड़ता। लेकिन इंसान प्रकृति के इस उदार दान के लिए टैक्स चुकाता है, इसीलिए वह सच्चे अर्थों में इंसान है। जो इंसान यह टैक्स नहीं चुकाता, वह इंसान नहीं, जानवर है। ये बातें हमारे इसी शिविर के कर्णधार मरहूम सुलतान अहमद साहब ही सिखा गये हैं। इसके लिए हम उनके अहसानमंद हैं। आज वह अहसान चुकाने का शुभ दिन आ चुका है। तुम लोग प्रतिज्ञा करो, सब अपने-अपने इंसानी फर्ज अदा करोगे और भारत माता का ऋण शोध करोगे। सुभाष बोस जिन्दगी भर यह फर्ज निभा गये, अब उनका अधूरा काम हमें पूरा करना है। हालांकि मुझे अब भी विश्वास नहीं होता कि सुभाष बोस इस दुनिया में नहीं रहे। उनकी मौत की खबर कोई राजनीतिक कूटनीति है'''चाल है। हमें अपने काम-काज और कर्तव्य-

साधना के जरिए, दुनिया के दरबार में इस राजनीति का भंडाफोड़ करना है। इस वक्त अगर हम डर गये, तो समझो मर गये। हमें साहस के साथ आगे बढ़ते जाना है। सुभाष बोस का अधूरा काम पूरा करना है। अंग्रेज सरकार को समझा देना है कि सुभाष बोस जैसी महान् हस्ती आसानी से नहीं मरती। सुभाष बोस अमर हैं। जयहिन्द—

देवव्रत का वक्तव्य समाप्त होते ही, सबने एक स्वर में नारा लगाया—जयहिन्द! और सब लोग अपने-अपने घर लौट गये।

…लेकिन उन रोज आधी रात के सन्नाटे में मुकुन्द बाबू की हवेली के दरवाजे पर अचानक जोर-जोर से धक्का मारने की आवाजें गूंज उठीं।

राखाल हमेशा हवेली के बाहरी आंगन में ही सोता था। उस दिन भी घर का काम-काज निपटाकर यथारीति वह अपनी जगह गहरी नींद में खर्राटे ले रहा था।

अचानक जब दरवाजे पर जोर-जोर के धक्के पड़ने लगे; तो उस शोरगुल में उसकी नींद टूट गयी।

उसने लेटे-लेटे ही पूछा, "कौन…?"

बाहर से कड़कती हुई आवाज आयी, "दरवाजा खोलो।"

राखाल हड़बड़ाकर उठा और उसने दरवाजा खोल दिया। बाहर का नजारा देखकर वह सन्न रह गया। यूं अंधेरे में साफ-साफ कुछ दिखायी भी नहीं दे रहा था। फिर भी पुलिस के जत्थों से भरी गाड़ियां नजर आ गयीं। जिन्होंने हवेली के बाहरी हिस्से को घेर लिया था।

उसने कांपती हुई आवाज में पूछा, 'आप लोग कौन हैं?"

घर के अदना-से नौकर के सवालों का जवाब दे, पुलिस इतनी बेवकूफ नहीं थी। दरवाजा खुलते ही वे लोग हुड़मुड़ करके हवेली के अन्दर पिल पड़े। सभी के हाथों में टॉर्च। टॉर्च की रोशनी में वे हवेली के तमाम कमरों पर बूटों की ठोकरें मारने लगे।

रात के वक्त यूं भी मिनती को ठीक तरह नींद नहीं आती। अक्सर आधी-आधी रात जागते हुए गुजर जाती। उस रात उसे भी शायद झपकी आ गयी थी। इतनी रात गये कमरे के दरवाजे पर धक्के की आवाज सुनकर वह भी डर गयी।

कहीं देवव्रत तो दरवाजा नहीं खटखटा रहा? पहले तो कुछेक पलों को उसका तन-मन रोमांचित हो आया?

उसने धीमी आवाज में पूछा, "कौन है?"

"हम लोग!"

मिनती फिर घबरा गयी। उसे यह आवाज अजनबी लगी।

उधर किसी ने उसके सवाल का जवाब देना जरूरी नहीं समझा, सिर्फ

ताबड़तोड़ हुक्म बरसाने लगे—दरवाजा खोलिए ! खोलिए दरवाजा।

मिनती को समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। अगर कहीं डाकू आ घुसे हों ? डाकू अगर उस पर अत्याचार करें ? यूं भी रात को अपने कमरे में अकेले-अकेले सोने में उसे बहुत डर लगता। उस पर से यह खुराफात अब वह क्या करे ? किसे आवाज दे ? उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह डर के मारे थर-थर कांपने लगी।

कुछ ही देर में शोर-गुल सिर्फ उसी के कमरे के आगे नहीं, पूरी हवेली में गूंज उठा। ऐसा लगा, जैसे बहुत सारे लोगों ने मिलकर अचानक हमला बोल दिया हो।

आखिरकार मिनती के कमरे का दरवाजा, भयंकर आवाज करता हुआ अरअराकर टूट गया। यमदूत-सी सूरत-शक्लवाले कुछेक गुंडे धड़धड़ाते हुए उसके कमरे में दाखिल हुए।

उन्होंने कड़ककर पूछा, "आपके शौहर कहां हैं ? देवव्रत सरकार ?"

मिनती डर के मारे जहां-की-तहां जमकर पत्थर की बुत बन गयी।

तब तक वे लोग पलंग के नीचे, आलमारी के पीछे, खूंटी पर टंगे कपड़े-लत्तों को उलट-पुलटकर जाने किसे ढूंढते फिरे।

"बताइये, आपका शौहर कहां है ? देवव्रत सरकार कहां भाग गया, बताइये ?"

"वे मेरे कमरे में नहीं सोते।" उसने सहमकर कहा।

उनमें से किसी ने डपटकर पूछा, "देवव्रत सरकार आपके ही पति हैं न ? आप ही देवव्रत सरकार की पत्नी हैं न ?"

"हां !"

"आपके पति आपके कमरे में नहीं सोते ? ऐसा कहीं हो सकता है ? आप झूठ बोलती हैं। हम आपको भी गिरफ्तार करते हैं। चलिए, हमारे साथ।"

डर के मारे मिनती की आंखें छलछला आयीं।

"चलिए—"

बाकी कमरों में तलाशी जारी थी। मुकुन्द बाबू रोगी इंसान ! उस पर से बूढ़े !

उन्होंने डरते-डरते पूछा, "क्या चाहते हैं आप लोग ? कौन हैं आप लोग ?"

भीड़ में से एक ने कहा, "हम लोग पुलिस हैं।"

पुलिस का नाम सुनकर मुकुन्द बाबू कुछ-कुछ आश्वस्त हो आये। पहले उन्हें आशंका हुई कि डाकू घुस आये हैं। अंधेरे में उनका चेहरा भी तो साफ नजर नहीं आ रहा था।

उन्होंने कहा, "आप लोग इस हवेली में ? ऐसा कौन-सा अपराध किया है

हमने ?"

"हम देवव्रत सरकार को गिरफ्तार करने आये हैं।"

"क्यों क्या किया है उसने ?"

"डी० आई० धारा की तहत उसे हिरासत में···।"

"कौन-सी धारा बतायी आपने ?"

"डिफेंस ऑफ इंडिया ऐक्ट यानी भारत सुरक्षा नियम के तहत। अपने ऊपर वाले के हुक्म से आये हैं यहां।"

अब मुकुन्द बाबू क्या कहते ? वे तो डर और हैरत के मारे गूंगे हो आये। उनकी छाती बुरी तरह धड़क उठी। पुलिस के ऐसे निर्मम अत्याचार से पहले कभी उनका वास्ता नहीं पड़ा था। आज अपने बेटे की वजह से उनकी यह फजीहत हो रही थी।

ऐन मौके पर उनकी आंखों के सामने ही देवव्रत पुलिस के सामने आकर खड़ा हो गया। उसके हाथों में हथकड़ी पड़ी थी।

मुकुन्द बाबू से यह नजारा देखा नहीं गया। अब तक वे खड़े-खड़े बातें कर रहे थे, अचानक धप्प से जमीन पर लुढ़क पड़े।

देवव्रत ने भी देखा, उसके बापू उसकी आंखों के सामने ही बेहोश होकर गिर पड़े हैं। लेकिन उसकी जुबान से उफ तक नहीं निकला।

उसने सिर्फ इतना ही कहा, "कहां चलना है मुझे ? ले चलिए···"

पुलिस वहां रुकी नहीं। पुलिस का जत्था देवव्रत को लेकर हवेली से बाहर निकल गया। जाते-जाते भी देवव्रत के कानों में मां का करुण आर्तनाद गूंज उठा। मां के रुलाई भरे शब्द तो समझ में नहीं आये, सिर्फ इतना ही सुनायी दिया—"ओ रे मुन्ना ! मुन्ना रे···!"

देवव्रत सरकार को सीधे जेलखाने ले जाकर, उसे हवालात में ठूंस दिया गया।

सारी, दुनिया से कटकर तनहा इंसान की क्या दुर्गत होती है, जेलखाना इसकी जीती-जागती मिसाल है। सिर्फ देवव्रत ही नहीं, देवव्रत से पहले भी, अपनी जन्म-भूमि को प्यार करने के जुर्म में अनगिनत देश-प्रेमी जेल की हवा खा चुके थे। जेल आखिर कौन नहीं गया ? देशबंधु, देशप्रिय, भगतसिंह, सुखदेव, यतीन दास, गांधी, जवाहरलाल नेहरू, अबुल कलाम आजाद···हजारों-हजार, लाखों-लाख लोग जेल जा चुके हैं।

बहुतेरे तो महज जोश में आकर जेल चले गये। बहुत-से लोग आदर्श से प्रेरित होकर गये और ऐसे भी अनगिनत लोग हैं, जो जेल से वापस लौट आये और स्वतंत्रता संग्राम के हवाले से आजीवन पेंशन लूटते रहे हैं।

लेकिन देवव्रत का जेल जाना उन लोगों के जेल जाने जैसा नहीं था। देवव्रत का आदर्श था—देश की आजादी। आजादी की लड़ाई हिंसा-निर्भर होगी या अहिंसा-निर्भर, यह सवाल गौण था। यह आजादी कब कैसे हासिल होगी, यह उसके अलावा और कोई नहीं जानता था।

जो जानता था, वह था—कन्हाई मल्लिक ! मुहल्ले भर का दोस्त ! लेकिन अब वह भी नहीं रहा।

एक और इंसान जानता था, वे थे—विनय'दा !

लेकिन वे भी कुछ दिनों बाद राइटर्स बिल्डिंग में शहीद हो गये। उस दिन जिन तीन लोगों का गिरोह सिम्पसन साहब का खून करके राइटर्स बिल्डिंग पहुंचा था और हंसते-हंसते बलिदान हो गया था, उनमें विनय'दा भी थे।

उसके बाद बहुत सारे दिन-महीने-साल गुजर गये। मुमकिन है, लोग उन्हें भूल भी गये हों। मुमकिन है, किसी तरह उनका नामभर याद रखा हो। लेकिन देवव्रत अपने उस विनय'दा को कभी भुला नहीं पाया।

उसे आज भी सब कुछ ज्यों-का-त्यों याद था…वह दिन ! वह [illegible] दौलतपुर श्मशान की श्मशानेश्वरी मइया के चरण छूकर की हुई [illegible] कभी नहीं भूला।

जेल की सलाखों के पीछे बैठा-बैठा जब तक वह जागता रहता, [illegible] पर तिलमिलाता रहता। वह परेशान था कि वह अपनी [illegible] कर पाया ? देश और देशवासियों के लिए उसका सारा त्याग, [illegible] हो गयी।

जेल के अन्दर भी उसे किसी से मिलने नहीं दिया [illegible] उससे भेंट-मुलाकात के लिए कोई आता भी था, तो बस, [illegible]

जो कोई भी मुलाकाती आता, देवव्रत उनसे एक ही [illegible] को कोई खबर मिली, भाई ?"

वे लोग भी पलटकर सवाल करते, "कैसी खबर ? [illegible]

"अरे, नहीं ! नहीं, वो खबर नहीं…"

"आपकी पत्नी की खबर…?"

देवव्रत बुरी तरह झुंझला उठता। वह घर के कुशल-मंगल [illegible] भी चिन्तित नहीं था, यह बात वह कैसे समझाये ?

जेलखाने के अन्दर ही नहीं, [illegible] किया था। सब लोग महज [illegible] जरूरत से ज्यादा [illegible] दौलत के मालिक बनें, [illegible] सबका [illegible]

वना चुकी थी।

ये तमाम लक्षण, जिस शख्स को जितना ज्यादा नजर आता, वह उतना ज्यादा दु:खी होता। उसकी जान-पहचान के लोग, धूल-मिट्टी-कादे से सिर्फ अपना दामन वचाकर चलते थे, धर्म वचाकर चलने की कोशिश नहीं करते थे। देश और देश के लोग अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ इस कदर वौखला उठे थे कि वे लोग साक्षात् मौत से मुकावला करने को आ डटे और वमुश्किल सांस लेते हुए, किसी तरह वस, जिन्दा थे। सुविधावादी इंसान को उनकी फिक्र नहीं सताती थी। सुभाष वोस को आखिर क्या पड़ी थी कि उन्होंने आई०सी०एस० की नौकरी को लात मार दी? क्यों वे देश के लिए जेल में वन्द हुए? क्यों वे जेल से भागकर जापान गए और अपनी जान से हाथ धो वैठे? किसलिए? क्यों? इसकी वजह सब जानते हैं। फिर देश के लोग इतने ऐश्वर्य-लोभी और कायर क्यों वन गये? इतने स्वार्थी क्यों हो गए? सब अपने आप में इतने मोहग्रस्त क्यों हो गए?

देवव्रत ये तमाम सवाल खुद अपने से करता और खुद ही इसका जवाब भी ढूंढ़ता! दिन-रात, महीने, साल वस, सोचते-सोचते गुजर गए, लेकिन जवाव उसे कभी नहीं मिला।

यूं वहुत-से लोग जेल जाते रहे हैं। भारत की स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान ऐसा कोई लीडर नहीं था। जो जेल न गया हो। बाद में उन सबको अपने त्याग का इनाम भी मिला। कोई प्रधानमंत्री हुआ, कोई मुख्यमंत्री। जिन लोगों को पद नहीं मिला, उन्हें स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल होने के ऐवज जिन्दगी-भर के लिए पेंशन मिला।

लेकिन देवव्रत सरकार?

सुप्रभात ने कहानी की अगली कड़ी जोड़ी—.

देवव्रत सरकार विल्कुल अलग किस्म का इंसान था। अर्से पहले उसने दौलतपुर में श्मशानेश्वरी मइया के चरणों में प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा वह कभी नहीं भूला, इसीलिए जिन्दगी अव उसे वेतहाशा दौड़ा रही थी।

जेल के अन्दर ही उसे वाहरी दुनिया की तमाम खवरें मिलती रहतीं। पुलिस ने कव, किसे गिरफ्तार कर लिया; किसने क्या वयान दिया; जेल की चहारदीवारी पार करके ये तमाम खवरें उस तक पहुंचती रही थीं।

उन दिनों देश अजीव परिस्थितियों से गुजर रहा था। वहुत सालों पहले त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में सुभाष वोस वहुमत से कांग्रेस के प्रेसीडेंट वना दिए गये थे। गांधी जी चाहते थे, उनकी जगह पट्टभी सीतारमैय्या को प्रेसीडेंट वनाया जाए। जव ऐसा सम्भव नहीं हुआ, तो उन्होंने नाराज होकर कहा था—पट्टभी सीतारमैय्या की पराजय मेरी पराजय है। लेकिन वहुमत को उन्होंने भी सिर झुकाकर स्वीकार किया.

उसके बाद शुरू हुई साजिशें। कैसे सुभाष बोस को [illegible] द्वारा [illegible] जाए। अंत में कार्यकारी समिति के तमाम सदस्यों ने एक साथ इस्तीफा दे दिया। अब सुभाष बोस किसके दम पर कांग्रेस चलाते? वे नितान्त अकेले हो गए।

दरअसल, यह सारा कुछ सुभाष बोस के खिलाफ [illegible]

लेकिन इतिहास किसी को भी माफ नहीं करता। खुद [illegible] ने स्वीकार किया—सुभाष बोस देश के शत्रु नहीं हैं।

सुभाष बोस ने अपना एक नया दल तैयार किया और उसे नाम दिया—फॉरवर्ड ब्लॉक! उन्होंने फैसला किया कि वे अपने फॉरवर्ड ब्लॉक को ही किसी दिन कांग्रेस जैसा बड़ा दल बनायेंगे। लेकिन उनके [illegible] उधर जंग छिड़ गयी। सुभाष बोस उस वक्त जेल में थे।

सुभाष बोस को लगा, यही सुनहरा मौका है। इस मौके का सदुपयोग करना चाहिए। लेकिन कैसे? उन्होंने फैसला किया कि चाहे जैसे भी हो, वे जेल से फरार हो जायेंगे। लेकिन अंग्रेजों के जेल से फरार होना क्या इतना ही आसान था?

उन्होंने एक नई योजना बनाई। इस योजना पर किसी को कोई शक नहीं हो सकता था।

खैर, ये सब बातें आज सभी लोग जानते हैं।

अंग्रेजों को अपने देश से खदेड़ना इतना आसान भी नहीं था। उन्हें खदेड़ने के लिए त्याग की नहीं, आघात की जरूरत थी। जेलखाने के अन्दर से आघात करना असम्भव था।

जेल के अन्दर उसके दिमाग में यही सब उथल-पुथल चलती रहती। बाहर से जो थोड़ी-बहुत खबरें जेल के अन्दर पहुंचती थी, उन्हें लेकर उसके दिमाग में काफी उधेड़बुन मची रहती।

जो लोग जेल के अन्दर थे, कभी-कभार उनके नाते-रिश्तेदार उनसे [illegible] मुलाकात के लिए आया करते थे।

लेकिन देवव्रत सरकार से कभी कोई मिलने नहीं आया।

उनके साथी अक्सर पूछते, "अच्छा, देबू'दा, आपसे कोई मिलने [illegible], तो आता?"

देवव्रत सिर्फ हंस देता था। थोड़ा ठहरकर वह खुद ही [illegible] है कौन, जो मुझसे मिलने आये?"

"क्यों, आपके मा-बापू?"

"वे लोग [illegible] गुजर गए। इतनी दूर से [illegible]

साथियों में ही कोई फिर पूछता, "और कम-से-कम वे ही एक बार आपसे भेंट [illegible]

देवव्रत इन सवालों का कभी जवाब नहीं देता था। अपनी तरफ से वह सिर्फ इतना ही कहता, "मेरी बीवी को भी घर-गृहस्थी के ढेरों काम रहते हैं। अगर वह यहां भेंट करने आये, तो घर की देखभाल कौन करेगा ?"

उसके साथ तब भी बहस करने से बाज नहीं आते, "काम-काज के लिए तो ढेरों नौकर-चाकर हैं। इसके अलावा घर में और भी तो लोग हैं कभी वे ही आ जाते।"

"अरे, छोड़ो भी, नहीं आते, गनीमत है।"

"क्यों, गनीमत क्यों ? उन लोगों को देखने को कभी मन नहीं करता आपका ?"

"नहीं—"

देवव्रत का यह जवाब सुनकर लोग अवाक् रह जाते थे।

लोग हैरत से पूछते, "क्यों ? देखने का मन क्यों नहीं करता, देबू दा ?"

"असल में मुझे लगता है हर कोई हर किसी को सिर्फ इस्तेमाल करता है। बाप बेटे का प्यार करता है, सिर्फ अपने स्वार्थ के तकाजे पर। हर रिश्ता सिर्फ स्वार्थ की नींव पर टिका है। असल में कोई प्यार में बंधकर किसी के पास नहीं आता। इंसान के दिमाग में जरूरत के अलावा और कोई सोच नहीं पाते।"

देवव्रत की बातें उसके साथियों को हैरत में डाल देती थीं।

देबू'दा ने कहा, "यह जो तुम लोग देख रहे हो कि ये अंग्रेज हमारे मुल्क पर पिछले दो सालों से राज कर रहे हैं, इसकी भी बस, एक ही वजह है—जरूरत ! मुश्किल यह है कि जब तक उन्हें हम खदेड़ेंगे नहीं, वे नहीं टलने वाले !"

थोड़ा दम लेकर उसने फिर कहना शुरू किया—"और ये, जो हम लोग मौका पाते ही अंग्रेजों का खून कर रहे हैं, इसकी भी वही एक वजह है ! उन्हें खदेड़कर, किसी तरह वह खाली सिंहासन दखल करना ! ये अंग्रेज यहां छोटे लाट-बड़े लाट बनकर हम पर हुकूमत कर रहे हैं। जब वे चले जायेंगे, तो हम लोगों में से ही कुछ लोग उनकी छोड़ी हुई कुर्सियों पर कब्जा जमायेंगे। असल में हम देश को प्यार नहीं करते। हम अपने अलावा और किसी से प्यार नहीं करते।"

"इसे रोकने का उपाय ?"

"इसका एकमात्र उपाय है—चरित्र-गठन ! हमारे दौलतपुर के सुल्तान अहमद साहब जितने दिन भी जिन्दा रहे, यही सीख देते रहे। अगर हमने अपने-अपने चरित्र-गठन पर ध्यान नहीं दिया। तो इंडिया स्वाधीन होकर भी घाटे में ही रहेगी।"

उसकी ये बातें जेल के साथियों को हैरत में डाल देतीं।

किसी ने पूछा, "यानी जिन हजारों लोगों ने देश के लिए अपनी जान गंवाई या गंवा रहे हैं, उनकी कोई कीमत नहीं ?"

"नहीं, जितने दिन अंग्रेज यहां जमे हुए हैं, थोड़ी शांति है। जिस दिन वे लोग यह देश छोड़कर चले जायेंगे, उसी दिन से कुर्सी हथियाने की होड़ में मार-धाड़, लाठी-डंडा, खून-खराबा शुरू हो जायेगा।"

"यानी अंग्रेजों का खून करके भी कोई लाभ नहीं ?"

"ना—"

"क्यों ?"

"लाभ इसलिए नहीं कि हम सबके जीवन का असली मकसद है लेना; देना नहीं। हम लोग सब-कुछ पाना चाहते हैं, लेकिन देना कुछ भी नहीं चाहते। अंग्रेजों के चले जाने के बाद, लेने की लालसा और बढ़ेगी। हम सबके सब लोग प्रेसीडेंट बनना चाहेंगे, प्राइम-मिनिस्टर या मिनिस्टर बनना चाहेंगे। चूंकि ये सारे पद बहुत ज्यादा नहीं होंगे, तब दोस्त-दोस्त, भाई-भाई, बाप-बेटे के बीच तलवार खिंच जाएगी। तुम देख लेना, देश में कैसा कत्लेआम मच जाएगा और विदेशी ताकत भी हमारे मुल्क के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगी। हम आपस में राजा, मंत्री के चुनाव को लेकर झगड़ते रहेंगे यानी बड़े भयंकर दिन आने वाले हैं…"

सुप्रभात कहानी सुनाते-सुनाते अचानक चुप हो गया।

"लेकिन तूने झरना देवी के बारे में तो बताया ही नहीं।" मैंने बेसब्री से पूछा।

"बताऊंगा! बताऊंगा! वक्त आने पर, सब बताऊंगा।"

जेल के अन्दर जब ये सब कांड चल रहे थे, बाहर महायुद्ध समाप्त होने की घोषणा जारी हुई। जो लोग भारतीय सेना में काम कर रहे थे, उन्हें छुट्टी मिल गई। लेकिन अब उनका दिमाग बिगड़ गया।

सन् 1946! 18 फरवरी!

बम्बई के जहाज-घाट पर जिस वक्त एडमिरल गॉडफ्रे राउंड पर थे, पीछे से नौ-सेना के लोगों ने उन्हें अपमानित करने के लिए गाली-गलौज शुरू कर दिया। बिल्ली की आवाजें निकालने लगे।

गॉडफ्रे उनका रंग-ढंग देखकर डर गया।

इस किस्म की बेअदबी अब बर्दाश्त से बाहर थी। इसे बढ़ावा दिया गया, तो ये लोग हो किसी दिन उन्हें कुर्सी से हटा देंगे।

उसने छूटते ही हुक्म दिया, "सबको गिरफ्तार कर लो।"

हुक्म की तामील की गई। विरोध में जहाज के तमाम अफसरों ने अचानक हड़ताल की घोषणा कर दी। महा भयंकर हड़ताल! नौ-सेना ने एलान किया—हम न कोई काम-काज करेंगे, न कोई नियम-कानून मानेंगे। हम बगावत का एलान करते हैं। देखें, एडमिरल गॉडफ्रे हमारा क्या बिगाड़ लेता है।"

उन लोगों ने जहाजों के मस्तूल से 'इंडियन जैक' झंडा उतार दिया और उसकी जगह कांग्रेस की राष्ट्रीय पताका और मुस्लिम लीग की चांद-तारा अंकित पताका फहरा दी।

कलकत्ता बन्दरगाह भी इस बगावत से अछूता नहीं रहा। वहां के नौ-सेना अफसरों ने भी बगावत की तैयारियां शुरू कर दीं।

अंग्रेजों के लिए यह महा संकट के दिन थे।

ऐसे में इंग्लैण्ड के नये प्रधानमन्त्री लॉर्ड एटली ने घोषणा की—अब मैं इंडिया को आजाद कर दूंगा। इस काम के लिए मैं नये वायसराय, लॉर्ड माउंटबैटन को इंडिया भेज रहा हूं।

उधर मोहम्मद अली जिन्ना और वल्लभ भाई पटेल ने भी अखबारों के जरिये विद्रोहियों से हड़ताल खत्म करने की अपील की।

विद्रोहियों ने हड़ताल खत्म कर दी।

लॉर्ड एटली बखूबी समझ गए थे कि अंग्रेज अब इंडिया में नहीं टिक सकते। नतीजा यह हुआ कि इंडिया के जेलों में जितने स्वदेशी लोग बन्दी बनाये गये थे। वे लोग रिहा कर दिए गये।

जेल से बाहर निकलकर देवव्रत खुले आसमान तले, खुली सड़क पर आ खड़ा हुआ। वहां से वह सीधे काका के घर पहुंचा।

गोष्ठ उसी वक्त बाजार से लौटा था। हर टोले-मुहल्ले में उत्तेजना की लहर! अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों में दंगा करा दिया था। शाम के बाद कोई घर से बाहर नहीं निकलता। किसी को लौटने में देर हो जाये तो घरवालों को बुरी तरह घबराहट होने लगती। आदमी घर से बाहर आने के बाद, सही-सलामत लौट भी आयेगा, इसकी कोई निश्चितता नहीं थी।

गोष्ठ ने ही उसे पहले देखा।

"अरे, दादा बाबू आप? अभी कहां से आ रहे हैं?" गोष्ठ ने सुखद विस्मय से पूछा।

"सीधे जेल से!"

"आज ही रिहा हुए?"

"हां, इतने दिनों तो जेल में ही था। अब दौलतपुर जाऊंगा।"

दौलतपुर का जिक्र आते ही गोष्ठ कुछ कहने जा रहा था, लेकिन अचानक रुक गया।

"काका कहां हैं?" देवव्रत ने पूछा।

"बाबू दौलतपुर गए हैं।" गोष्ठ ने जवाब दिया।

"अरे? क्यों?"

"आपको खबर नहीं मिली?"

"मुझे कहां से खबर मिलती ? इतने दिनों मैं जेल के अन्दर था। वहा बाहर की कोई खबर नहीं पहुंचती थी।"

गोष्ठ ने बातचीत आगे नहीं बढ़ायी। उसने घर के अन्दर जाते-जाते कहा, "चलिए, अन्दर चलिए।"

"काका ही जब घर पर नही, तो अन्दर जाकर क्या होगा ? मैं भी दौलतपुर ही चला जाऊं।"

"नहीं-नहीं, पहले अन्दर आकर बैठिए। अभी-अभी तो आए हैं, जरा दम तो ले लीजिए। मैं नाश्ता तैयार करता हूं, आप नहा-धो लीजिए। इतने दिनों बाद आये हैं, अभी ही चले जायेंगे ?"

देवव्रत अन्दर चला आया। गोष्ठ दादा बाबू के लिए नाश्ता तैयार करने रसोई की तरफ चल दिया।

इन्सान जब पहले-पहल चलना सीखता है, तो कभी-कभार गिर भी पड़ता है। लेकिन इस डर से वह रुक नहीं जाता। भविष्य में बढ़ती हुई उम्र के साथ-साथ उसे लगातार चलते रहना है, गिरने से डरना उसके पावों को जड़ कर देगा। आने वाले दिनों में कोई उसका हमकदम बनकर उसका साथ नही देगा। अकेले ही सारा सफर तय करने का संकल्प लिए, वह दुर्गम राहों पर अग्रसर होता है।

ये सारी बातें उसने बचपन में अहमद साहब से ही सीखी थी। उसी दिन उसने समझ लिया था कि उसके चलने में, उसके तन-मन से ज्यादा उसकी निष्ठा साथ देगी। इसी निष्ठा के बल पर किसी दिन वह सचमुच इन्सान बन जायेगा। इसके लिए उसे हर तरह की तकलीफ उठाने को प्रस्तुत रहना चाहिए।

अगले दिन ही उसने गोष्ठ से कहा, "आज मुझे जाने दो, गोष्ठ, मुझे और देर नहीं करना चाहिए।"

गोष्ठ ने सुबह उसे नाश्ता कराया। किसी तैयारी का सवाल ही नही था, क्योंकि उसके साथ माल-असबाब या बक्सा-बिछौना कुछ भी नही था। पुलिस उसे जैसे खाली हाथ पकड़ ले गई थी और जेल में ठूस दिया था, उसी तरह खाली हाथ ही जेल से रिहा भी कर दिया गया।

"मुझे कुछ रुपये दे सकते हो, गोष्ठ ?"

"कितने रुपये चाहिए, बताइए ?"

"यही कोई दस-बारह रुपये ! दौलतपुर जाकर मैं तुम्हारे रुपये लौटा दूंगा। बस, ट्रेन के किराये का इन्तजाम हो जाए।"

गोष्ठ के रुपये लेकर देवव्रत फौरन दौलतपुर रवाना हो गया। सियालदह स्टेशन पहुंचकर बस, टिकट भर कटाने की देर थी। टिकट खरीदकर वह प्लेट-फार्म पर पहुंचा। ठीक उसी वक्त एक ट्रेन भी आकर रुकी। उसी ट्रेन से हजारों-

हजार लोग उतरने लगे।

पहले तो कभी इतने लोग, इतनी आपाधापी में नहीं उतरते थे। ऐसा लगा, जैसे सबके सब गांव छोड़कर भाग आये हैं। किसी के साथ अशक्त बूढ़े-बूढ़ी, किसी की गोद में बच्चा, उंगली थामे हुए बाल-बच्चे ! हर किसी के चेहरे पर आतंक की छाप ! सबके सब मानो बौखलाए हुए ! टूटे-फूटे !

अचानक उस भीड़ में काका पर नजर पड़ गयी।

"काका, आप !" देवव्रत सुखद आश्चर्य से भर उठा।

"अरे, तू ?" काका भी अचकचा गये।

दोनों एक-दूसरे को देखकर अवाक् !

"आप कहां से ? दौलतपुर से ? मैं भी दौलतपुर ही जा रहा था।"

"अब तुझे दौलतपुर जाने की जरूरत नहीं। मैं वहीं से आ रहा हूं। वहां अब कोई नहीं है ?"

"नहीं है, मतलब ?"

काका ने उसका हाथ थामते हुए कहा, "चल, पहले घर चल। तुझे सब बताऊंगा।"

उन्होंने एक टैक्सी बुलायी और देवव्रत के साथ घर की तरफ चल दिये।

देवव्रत टैक्सी में ही घर का कुशल-समाचार पूछने लगा, "दौलतपुर कैसा है, काका ? सब लोग खैरियत से तो हैं न ?"

काका ने उसका सवाल टालते हुए कहा, "इतने दिनों जेल में रहे, कोई खास असुविधा तो नहीं हुई ?"

"असुविधा तो थी ही। आराम करने के लिए तो कोई जेल जाता नहीं।"

काका कोई जवाब देने के बजाय चुप हो रहे !

कुछ देर बाद उन्होंने चुप्पी तोड़ी, "इधर देश की हालत बहुत संगीन है। तुमने कुछ सुना ?"

"ना, खास कुछ नहीं सुना। आप तो जानते हैं, मैं यूं भी फालतू बातें किसी से नहीं करता।"

"लेकिन, फिर भी कुछ तो सुना होगा ?"

"जो सुना, उस पर यकीन नहीं आता।"

"क्या सुना तुमने ?"

"सुना है, ब्रिटिश सरकार ने फैसला किया है कि वे लोग इंडिया छोड़कर चले जायेंगे। इसी इरादे से उन्होंने किसी लॉर्ड माउंटबैटन को वायसराय बनाकर भेजा है।"

"तुम्हें क्या लगता है, ये अंग्रेज यह देश छोड़कर वाकई चले जायेंगे ?"

"मुझे शक है।"

"मुझे भी शक है। इसीलिए तो उन-कमबख्तों ने देशभर में आग भड़का दी है।"

"कैसी आग?"

"हिन्दुओं के साथ मुसलमानों को भिड़ा दिया है।"

"अच्छा?"

"इसीलिए तो पार्क सर्कस इलाके में जितने हिन्दू थे, श्याम बाजार, भवानीपुर, अलिपुर भाग आये और इधर जितने मुसलमान थे। सबने भागकर पार्क सर्कस में पनाह ले ली। इतने दिनों तक शाम के वक्त कर्फ्यू लग जाती थी। यही सब देखकर तो मैं दौलतपुर चला गया था।"

"वहां क्या हाल है?"

काका कोई जवाब देते, इससे पहले ही ड्राइवर ने अचानक ब्रेक लगाया और टैक्सी एक झटके के साथ रुक गयी। पुलिस की एक दल ने सड़क पर आती-जाती गाडी-घोडा, बस-ट्राम पर रोक लगा दी थी—इधर जाना मना है। उनकी टैक्सी घिरी और रास्ते मुड़ गयी।

"ये अचानक फिर क्या हुआ? कहीं दुबारा दंगा तो नहीं हो गया?" काका सोच में पड़ गये।

हालांकि देवव्रत अभी कुछ देर पहले ही उसी रास्ते से गुजरा था, उस वक्त पुलिस का इतना जबर्दस्त पहरा नहीं देखा था। वह भी मिलिटरी पुलिस!

काका ने कहा, "कई दिनों पहले बहुत से लोग कत्ल हो गए थे। इसीलिए गांधी जी आजकल कलकत्ते आए हुए हैं। अगर वे न पहुंचते तो भयंकर खून-खराबा मच जाता।"

घर लौटने पर गोष्ठ ने पूछा, "अरे, इतनी जल्दी लौट आये, बाबू?"

"हां, काम-काज निपट गया, तो लौट आया।"

लेकिन उनके मन का डर अभी तक नहीं निकला था।

उन्होंने दुबारा सवाल किया, "क्यों, रे, शहर की क्या खबर है? फिर कोई खून-खराबा तो नहीं हुआ?"

"हां, बाबू, यहां भी खून की नदियां बह गयी। सांझ के बाद कोई घर से बाहर नहीं निकलता। आपके जाने के बाद यहां मार-धाड़ और बढ़ गयी थी। अब जाकर थोड़ा शांत हुआ है।"

देवव्रत ने बेसब्र आवाज में कहा, "तब मैं अभी ही चला जाऊं दौलतपुर। वहां घरवालों की भी खैर-खबर लूं। मेरे लड़के अब भी वहीं होंगे। उन्हें तो खबर ही नहीं कि मैं रिहा हुआ या नहीं। बहुत परेशान होंगे बिचारे।"

"देखो, देश की यह हालत है। इस वक्त तुम वहां जाकर क्या करोगे? जब हालत कुछ सुधर जाए, तब जाना।"

लेकिन देवव्रत दौलतपुर जाने के लिए अड़ गया। उसे वहां जाना ही होगा। क्लब के लड़कों की खैर-खबर लेना बहुत जरूरी था...

-

मैंने फिर पूछा, "उसके बाद क्या हुआ?"

1946 के अगस्त महीने से देश का हालचाल फिर बिगड़ने लगा। इसी तरह एक साल और गुजर गया। हालत बद-से-बदतर होती गयी। कलकत्ते में तो सन् 1925 से ही दो सम्प्रदायों के दरमियान खून-खराबा, लाठीबाजी चल रही थी, लेकिन 1946 में हुए खून-खराबे ने और भयंकर रूप ले लिया।

उसके बाद आया सन् 1947!

बलवा बहुत ज्यादा बढ़ चुका था। देवव्रत काका को बिना बताये ही दौलतपुर चल दिया। जब वह अपने गांव के लिए रवाना हुआ, काका घर पर नहीं थे।

घर लौटने पर देबू को न देखकर उन्होंने गोष्ठ से ही पूछा, "हां रे, तेरे दादा बाबू कहां गये?"

"वह तो मुझे नहीं मालूम, बाबू! वे तो सवेरे-सवेरे ही खा-पीकर घर से निकल गये।"

गोलकेन्दु बुरी तरह डर गये। दिन-काल बड़ा भयंकर जा रहा था। ऐसे भी लड़का गया कहां?

दो दिन बीत गये। फिर भी देबू नहीं लौटा। वे बुरी तरह परेशान हो उठे।

उन्हें समझ में नहीं आया कि वे कहां और किसके पास जायें। देबू का पता आखिर कैसे लगायें? उसका अता-पता किससे मिल सकता है? देबू कहीं दौलतपुर तो नहीं चला गया?

लेकिन सिर्फ देवव्रत की चिन्ता में डूबे रहने से तो काम नहीं चलेगा। आखिर उनका स्कूल भी है। छात्र हैं। उनकी तरफ भी तो ध्यान देना होगा।

उस दिन भी उनके छात्र पढ़ने के लिए जमा हो चुके थे। वे उन्हें पढ़ाने भी बैठे, लेकिन उनका मन देबू में ही अटका हुआ था।

देबू कहीं किसी आफत-विपद में तो नहीं फंस गया?

उन दिनों कलकत्ते की जो हालत थी, उसमें कुछ भी संभव था। किसी की जिन्दगी की कोई गारंटी नहीं। कोई भी किसी दिन गुम हो सकता था।

पूरे चार दिनों बाद देबू लौट आया। देबू की हालत देखकर गोलक एकबारगी चौंक उठे। उसके पूरे चेहरे, समूची देह पर जख्मों के निशान! कपड़े-लत्ते खून में सने हुए! देबू को बोलने में भी तकलीफ हो रही थी।

गोलक बाबू ने दरयाफ्त किया, "कहां लापता हो गये थे तुम? तुम्हारी यह हालत किसने की?"

देबू उनके पहले सवाल का ही जवाब नहीं दे सका।

उन्होंने दुबारा पूछा, "बोलो, देवू, तुम कहा गये थे ?"

देवू की जुबान गूंगी हो आयी।

गोलक बाबू ने गोष्ठ से कहा, "जा, भागकर डॉक्टर साहब को बुला ला···।"

डॉक्टर आ पहुंचा। जांच के बाद उसने राय दी, "लगता है, किसी ने वजनी चीज इनके सिर पर दे मारा।" उन्होंने दवा लिख दी और नींद की गोली देकर चले गये।

थोड़ी देर बाद देवू गहरी नींद सो गया।

कई घंटों बाद जब उसकी नींद खुली, गोलक ने दरयाफ्त किया, "क्या हो गया था तुम्हें ? तुम्हें मारा किसने ? मैंने तुम्हें बार-बार आगाह किया था कि बाहर मत निकलना। दिन-काल बड़ा खराब चल रहा है। आजकल तो जहां तक संभव हो, घर से बाहर निकलना ही नहीं चाहिए। फिर तुम क्यों गये बाहर ? किसने किया तुम्हारा यह हाल ? इस कदर जख्मी कैसे हुए ?"

देवू ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। उसकी आंखों में दुबारा नींद उतर आयी। काका ने भी सोचा, वह जितनी देर सो ले, बेहतर है। उसे सोता छोड़कर वे बाहर निकल आये। उनका भी तो स्कूल है, छात्र-छात्राएं हैं। उन्हें उस तरफ भी ध्यान देना होता था।

उस दिन देवू की तबीयत कुछ बेहतर नजर आयी।

काका ने करीब आकर पूछा, "कैसे हो, देवू ?"

उनके सवाल के जवाब में देवू खामोश रहा।

काका ने दुबारा पूछा, "तुम गये कहां थे ? कहां रहे दो दिन ?"

अब जाकर देवू ने जुबान खोली, "आपने मुझे दौलतपुर की एक भी खबर नहीं बतायी। बता देते, तो हर्ज क्या था ?"

"दौलतपुर की कौन-सी खबर ?"

"मेरे मां-बापू सब कत्ल हो गये, आपने तो मुझे बताया नहीं।"

"तुम दौलतपुर गये थे ?"

"हां···"

"तुम्हें दुःख होता, इसीलिए नहीं बताया। मान लो, अगर बता भी देता, तो क्या होता ? तुम इसका बदला तो नहीं ले सकते थे।"

"किसने कहा, मैं बदला नहीं ले सकता ? अगर उस वक्त मैं वहां मौजूद होता तो इतना अनाचार-अत्याचार मैं होने ही नहीं देता। मैं अपने क्लब के लड़कों के साथ मिलकर सबको बचा लेता। जरूरत होती, तो अपनी जान तक दे देता।

"वहां मेरे पहुंचने से पहले ही सर्वनाश हो चुका था। मैं दौलतपुर आया था। सारी कहानी सुनकर लौट आया। वैसे इतनी जल्दी लौटने की बात नहीं थी मेरी।

मैं तो वहां दो-चार दिन रहने गया था। लेकिन मेरे दौलतपुर पहुंचने के पहले ही सब लुट चुका था। मुमकिन है, मैं तब भी रुक जाता, लेकिन उन्हीं लोगों ने मुझे फौरन लौट जाने को कहा। उन्होंने ही बताया कि यहां के लोग गुस्से से पागल हो रहे हैं। अगर आप यहां रुक गये, तो हम आपको बचा नहीं पायेंगे।"

देवू सुनता भी जा रहा था और सवाल पर सवाल भी किये जा रहा था। लेकिन उसकी आंखों से आंसू बूंद भर भी नहीं टपका।

काका ने पूछा, "मिनती के बारे में भी सुन लिया न?"

"हां···।"

"लेकिन ऐसा कैसे हो गया, बोलो तो? मिनती इतनी शरीफ लड़की। उसने ऐसा क्यों किया? और कुछ नहीं, तो वह अपनी जान तो दे सकती थी। जो कुछ हुआ, उससे तो जान दे देना बेहतर था और वह कम्बख्त शाहबुद्दीन···तुम्हारी कितनी श्रद्धा करता था। प्राण का मोह क्या इज्जत से भी बड़ा हो गया? इज्जत बड़ी या जिन्दगी?"

थोड़ा ठहरकर उन्होंने दुबारा कहा, "खैर छोड़, जो हो चुका, उसे लेकर परेशान होने से क्या फायदा?"

देवू ने कहा, "आप भी जानते हैं, सुलतान अहमद साहब कितने महाप्राण इंसान थे। उनके बाद भी जाने कितने-कितने लोगों ने देश की आजादी के लिए निहायत बेदर्दी से अपनी जान को न्योछावर कर दिया। उसका नतीजा यह निकला?"

"दौलतपुर जाने के पहले अगर तुम मुझे बताते, तो तुम्हें इतनी तकलीफ नहीं उठाने देता।"

देवू खामोश हो रहा।

गोलकेन्दु ने थोड़ा ठहरकर दुबारा कहा, "और इस शाहबुद्दीन को देखो, तुमसे ऐसा दगा···? वह तो तुम्हारा छात्र था। था या नहीं?"

"आप तो सब जानते हैं।"

"हां, मुझे सब मालूम है! तुम तो व्याह के लिए भी राजी नहीं थे। यह बात सिर्फ मैं ही क्या समूचा दौलतपुर जानता है। मोची मुहाल या मुस्लिम मुहाल में कहां, कौन बीमार पड़ा है, कौन मुसीबत में है, कौन भूखों मर रहा है—तुम तो इन्हीं सब झमेलों में उलझे रहते थे। घर के सुख-दुख का ख्याल तुम्हें कभी नहीं आया। भइया, को यही दुःख तो हरदम खलता रहा। बहुत बार तो वे मेरे आगे भी अपने मन का दर्द खोल बैठते थे कि देवू बस, हमारा ही ख्याल नहीं रखता।"

देवू ने कोई जवाब नहीं दिया।

काका ने फिर पूछा, "गांव में किसी से तुम्हारी मुलाकात नहीं हुई?"

"दौलतपुर तक तो मैं जा ही नहीं पाया, काका!"

"क्यों?"

"स्टेशन पर उतरकर एक घोड़ा गाड़ी किराये पर ली और हवेली की ओर चल पड़ा। कुछ ही दूर गया था कि गुंडों ने गाड़ी रोककर मुझे घेर लिया।"

"अरे !"

"हां, मैंने देखा, मेरा जैसोर अब पहले जैसा नहीं रहा। इतनी जल्दी वहां का सब कुछ बदल चुका है। किसी के घर में रोशनी तक नहीं ! उन लोगों ने मुझे गाड़ी से खींचकर उतार लिया।"

"तुमने अपना नाम-धाम बताया था ?"

"हां, मेरा भी ख्याल था कि मेरा नाम सुनकर वे लोग मुझे पहचान लेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, काका ! उल्टे वे लोग तो गाली-गलौज पर उतर आये। हालांकि मैंने कोई कसूर नहीं किया था।"

"उसके बाद ?"

देबू ने वह हादसा भी कह सुनाया। आखिरकार एक बहुत पुराने दोस्त रसूल मियां से मुलाकात हो गयी। रसूल उस रास्ते से गुजर रहा था कि देबू पर निगाह पड़ गयी। उसने देबू को झट पहचान लिया।

"तुम देबू'दा हो न ?"

उस दिन अगर रसूल से मुलाकात न हुई होती, तो पता नहीं क्या हो जाता। उसी रसूल ने उसे गुंडों के हाथों से बचाया और अपने घर ले गया। दौलतपुर की सारी खबरें उसी के जरिये मिलीं। देवव्रत को पता चला, अचानक एक दल गुंडों ने उसकी हवेली में···जहां जो मिला···बापू, मां, राखाल···कोई नहीं बचा।"

"और मिनती···?"

"रसूल ने ही बताया कि उस हादसे से कुल एक दिन पहले शाहबुद्दीन वहां आया था और मिनती को लेकर कहीं भाग गया। उसके बाद से उनका अता-पता किसी को नहीं।"

"रसूल ने भी उसे ज्यादा दिन तक अपने पास रखने का खतरा मोल नहीं लिया। उसे ट्रेन पर सवार करा दिया। लेकिन देबू को तब भी रिहाई नहीं मिली जिस ट्रेन से वह आ रहा था, वह कलकत्ते तक पहुंची ही नहीं। किसी तरह 'दर्शना' स्टेशन तक आ पायी, उसके बाद वहीं ठप्प हो गयी। वहां से दो मील का फासला वह पैदल-पांव तय करके यहां तक पहुंचा। रास्ते में उसे कितनी तकलीफ कितने अत्याचार, कितनी फजीहत बर्दाश्त करनी पड़ी, हर चुंगी-नाके पर कितनी परेशानी उठानी पड़ी इसका कोई हिसाब नहीं। इस पार मुसलमानों को जितना अत्याचार सहन करना पड़ा, उस पार हिन्दुओं को भी उतनी ही जिल्लतें उठानी पड़ीं।"

सारी कहानी सुनकर गोलकेन्दु ने कहा, "इस कहानी का अन्त कहां है, मैं यही सोच रहा हूं। मेरी हालत भी तुम्हारे जैसी थी। मैं तो इसलिए बच गया, क्योंकि मैं अजनबी था और लोग यह तय नहीं कर पाये कि मैं हिन्दू हूं या

मुसलमान ! मैंने खुद भी किसी को अपना परिचय नहीं दिया। जैसे ही सुना भइया और भौजी का खून हो गया, मैं वहां एक पल भी नहीं रुका। उस दिन भी ट्रेन ठीक वक्त से आयी थी।"

सन् 1947 अगस्त महीना ! कलकत्ते के नारकेलडांगा के मैदान में लगभग एक लाख की भीड़ जमा थी। उसमें हिन्दू भी थे, ईसाई भी और मुसलमान भी ! गरीब और अमीर भी ! जो लोग अब तक दंगे के डर से बाहर निकलने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे, उस दिन वे भी वहां इकट्ठे हुए थे, सिर्फ यही नहीं आसपास की छतों और बरामदों में खड़े हजारों हजार लोगों की निगाहें उसी मैदान की तरफ लगी हुई थीं। हर किसी के मन में गांधीजी को देखने और उनका भाषण सुनने की तीखी उत्सुकता उनको अखबारों से पता चला था कि पंजाब और दिल्ली में लाखों-लाख इंसान कत्ल हो गये। लाखों-लाख लोग अपनी जमीन-जायदाद छोड़कर, अपनी जान बचाने पंजाब-पाकिस्तान की तरफ भाग खड़े हुए। उधर पंजाब की तरफ से लाखों इंसान अपनी जर-जमीन त्यागकर दिल्ली आ गये थे। नतीजा यह हुआ कि जाने कितने लोग कत्ल हो गयें इसका कहीं कोई रिकार्ड नहीं। जैसे-जैसे ये खबरें कलकत्ते शहर तक पहुंचती रहीं, कलकत्ते वाले भी अपनी जान के डर से आतंकित हो उठे थे। उधर पूर्वी पाकिस्तान में भी हंगामा शुरू हो चुका था। जो लोग पाकिस्तान से लौट रहे थे, उसकी निर्मम प्रतिक्रिया दिल्ली, कलकत्ता और ढाका में भी नजर आने लगी थी।

इन तमाम दंगे-फसादों के बीच, आशा की किरण लेकर आये—गांधीजी ! वे दिल्ली से कलकत्ता आ पहुंचे। किसी ऐसी मामूली बस्ती में ठहरे थे, जहां हिन्दू-मुसलमान मिल-जुलकर प्यार से रहते थे।

निश्चित समय पर वे भीड़ के सामने प्रकट हुए। लोगों के दुःख-कष्ट से परेशान होकर ही वे उनके पास दौड़े चले आये थे। उनका भाषण सुनने के लिए कलकत्ते के हिन्दू-मुसलमान, सबके सब उस जलसे में इकट्ठे हुए थे।

जब वह दुबला-पतला, डेढ़ हड्डी का महान इंसान मंच पर आसीन हुआ, रहस्यमयता की एक अद्भुत लहर लाखों-लाख इंसानों को मंत्रमुग्ध कर गयी।

—भाइयो और बहनो…

विस्मय-विमुग्ध विशाल जनसमूह उत्कर्ण मन से गांधीजी का भाषण सुन रहा था।

—लोग चारों तरफ से मेरा अभिनंदन कर रहे हैं। मैंने सुना है, कलकत्ते का साम्प्रदायिक मसला सुलझाने में सफल हुआ हूं मैं। लेकिन सच तो यह है, मैं कोई नहीं। यह सम्मान मेरा नहीं, आप लोगों का है। आप लोगों की शुभ-बुद्धि की वजह से ही यह संभव हो सका है। लेकिन यह शांति क्षणिक है या स्थायी, यह मैं

नहीं जानता। अगर यह क्षणिक शांति है, तो यह चरम भय की स्थिति है। इस क्षणिक शांति को स्थायी बनाने के लिए आप सबको मिलकर कोशिश करनी होगी। मुझ अकेले से यह हरगिज संभव नहीं। मुझसे जितना हो सकेगा, अपनी तरफ से कोशिश जारी रखूंगा। लेकिन मेरा असली आसरा-भरोसा आप लोग हैं। आप सबको मेरा साथ देना है। यह साम्प्रदायिकता असल में कैंसर का जख्म है। इससे निरोग होने के लिए इलाज की जरूरत है। वह इलाज है—अहिंसा! जिस देश की आजादी के लिए हजारों-हजार इंसानों ने अपनी जानें गवायीं, उनका त्याग झूठ पड़ जायेगा, अगर हम आपस में एक-दूसरे के विरुद्ध हिंसा और कलह में प्रवृत्त हो गये! याद रखें, हम सबको एक होना है; संयमी होना है। जिस दिन ऐसा संभव होगा, देश का मंगल होगा। हमारे देश की आजादी सार्थक होगी—

"उसके बाद?···"

"जो शख्स यह हवाला दे रहा था, उसका नाम तारक था! तारक सरकार गोलकेन्दु बाबू का छात्र! वह दक्षिण कलकत्ते में रहता था, लेकिन गांधीजी का भाषण सुनने के लिए वह कई लोगों के साथ नारकेलडांगा गया था।"

गोलकेन्दु बाबू ने सारी दास्तान सुनने के बाद पूछा, "उसके बाद? गांधीजी ने और क्या कहा?"

तारक ने फिर बताना शुरू किया—

"'उसके बाद उन्होंने कहा, मुझे विश्वास है कि कलकत्ते में बंगाली लोग मेरी बात सुनेंगे। लेकिन अफसोस की बात यह है कि इस कलकत्ते जैसे शहर में भी कुछेक ऐसे इलाके हैं, जहां रहने में हिन्दू लोग अभी भी डरते हैं। कुछ इलाके ऐसे हैं, जहां मुसलमान अभी भी बसने से सहमते हैं। ईश्वर की दृष्टि में हम सब एक हैं। अगर अब भी हर जगह, तमाम धर्म और तमाम सम्प्रदाय के लोग मिल-जुलकर न रह सकें, तो हमारी यह आजादी झूठी साबित होगी। अभी तो देश सिर्फ दो टुकड़ों में बंटा है, ऐसा न हो कि कई-कई टुकड़ों में बंट जाये···"

देवव्रत ने कहा, "अब इन सब बातों से क्या लाभ? गांधीजी ने उस वक्त कुछ नहीं कहा—जब अंग्रेजों ने देश का बंटवारा किया था? उस वक्त गांधीजी कहां थे? उस वक्त उन्होंने भूख-हड़ताल नहीं की?"

गोलकेन्दु ने कहा, "तुम चुप करो, देबू। अभी-अभी बीमारी से उठे हो। इतनी उत्तेजना तुम्हारे लिए ठीक नहीं।"

देबू ने झुंझलाकर कहा, "उत्तेजित मैं नहीं होऊंगा, तो और कौन होगा? अगर यही सब होना था, तो विनय'दा, दिनेश'दा, बादल'दा ने सिम्पसन साहब की जान क्यों ली? अपनी जान क्यों दी? भगत सिंह, गुरुदेव, यतीन'दा ने इस स्वाधीनता के लिए क्यों अपनी जान दी? वे लोग क्या इसी स्वाधीनता के लिए शहीद हुए थे? इतने सारे लोगों के आत्म-बलिदान से किसे सहूलियत हुई?"

गोलकेन्दु ने डपट दिया, "तू चुप कर, देवू ! उत्तेजित होने से तेरी ही तबीयत बिगड़ेगी।"

"मैंने कहा न, उत्तेजित मैं नहीं होऊंगा, तो और कौन होगा ? इस देश में क्या एक भी इंसान रह गया है ? यहां तो लोगों ने ठंडे दिमाग से सारा कुछ स्वीकार कर लिया है। वे लोग क्या इंसान हैं ? उन लोगों ने ढोंगी नेताओं का खून क्यों नहीं कर दिया ? मेरे मां-बाप कत्ल हो गये, आखिर किसके लिए ? शाहबुद्दीन मिनती को लेकर क्यों भाग गया ? इसके लिए आखिर कौन जिम्मेदार है ? कुछ लोग हैं, जो देश का सर्वनाश करके, अब शांति के बड़े-बड़े बोल सुनाते फिरते हैं। जितने दिन ऐसे लोग इस देश में मौजूद हैं, उतने दिनों इस देश का कभी भला नहीं होगा। कोई बात नहीं, इसका बदला मैं लूंगा—"

"तुम ? क्या बदला लोगे तुम ?"

"वैसे, पता नहीं, मैं बदला ले भी सकूंगा या नहीं ? अगर सच हो गया। तो नतीजा आपके सामने भी आयेगा।"

...उस दिन से देवव्रत सच ही बेहद अकेला पड़ गया। लेकिन उसे भरोसा था, इस अकेली लड़ाई में कभी कोई बेईमानी नहीं होती। तमाम लोगों ने देश को अपनी निजी सम्पत्ति समझ लिया है। इस सम्पत्ति को तुड़ा-तुड़ाकर हर कोई अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि में जुटा है। देवव्रत जितने दिनों बीमार था, बिस्तर पर लेटे-लेटे यही एक चिन्ता उसे खरोंच-खरोंचकर जख्मी करती रही। सब लोग ऐसे क्यों निकले ? जो लोग देश के कर्णधार हैं, वे लोग क्या कभी देश के लोगों की भी चिन्ता करते हैं ? लोगों की भलाई के लिए उन्होंने क्या किया ? जेल जाना क्या बहुत बड़ा त्याग है ? जो लोग देश के नेता हैं, वे तो जन्म से ही रईस थे। उन्होंने कभी कोई त्याग किया है ? उन लोगों ने तो हमेशा सिर्फ अपने स्वार्थ की चिन्ता की। उनकी सारी जिंदगी पैतृक सम्पत्ति के भोग-दखल में ही कट गयी। कोई विलायत गया बैरिस्टरी पढ़कर रुपये कमाने ! कोई पैतृक दौलत के बलबूते पर महान् बन गया। चूंकि कोई और काम-धाम नहीं था, इसलिए लोगों के सिर पर सवार होने के इरादे से राजनीति में आ धमके। लेकिन उनमें से कोई भी ऐसा नहीं निकला जो वाकई इन्सान का भला करना चाहता हो। जो शख्स सच ही देशभक्त था, वह अब नहीं रहा। अगर वह यहां होता, तो देश की ऐसी दुर्गति होती ? देश के यूं टुकड़े-टुकड़े होते ?

तारक ने ही बताया था, "देश जिस दिन स्वाधीन हुआ, उस दिन किसी ने भी बस-ट्राम-ट्रेन का किराया तक नहीं दिया था।"

"क्यों ? किराया क्यों नहीं दिया ?"

तारक ने ही बताया, "सिर्फ इतना ही नहीं, दद्दा ! लोग राजभवन के अन्दर तक पहुंच गये। लाटसाहब के अन्दर महल में घुसकर, जूतों समेत उनके बिस्तर

पर चढ़ गये और कूद-कूदकर नाचने-गाते रहे। दीवारों पर टंगी तस्वीरों पर छातों की मूठ चला-चलाकर चकनाचूर कर दिया। लाटसाहब का माल-असवाब तहस-नहस कर डाला।"

"क्यों? ऐसा क्यों किया?"

"उन्हें खुशी हुई थी, सो वे खुशियां मना रहे थे। पहले किसी की मजाल नहीं थी कि वह लाटसाहब की कोठी में दाखिल भी हो। इसलिए, जब उन्हें मनमानी करने का अधिकार मिल गया तो···"

"किसी ने मना नहीं किया?"

"ना—"

"इतने दिनों तक जो लोग कोठी की देख-रेख कर रहे थे, वे कहां थे उस वक्त?"

"वे लोग भी अपनी-अपनी ड्यूटी छोड़कर फुर्ती करने निकल गये थे। उन्हें भी पता लग चुका था कि अब वे आजाद हैं। ड्यूटी करें या न करें, उन्हें तनख्वाह मिलती रहेगी।"

देवव्रत ने मंतव्य कोई नहीं दिया, चुपचाप किसी गहरी सोच में डूब गया।

हर दिन की तरह उस दिन भी भोलकेन्दु ने उसके कमरे में पूछा, "आज कैसी तबीयत है, रे, देबू?"

"अच्छी नहीं है।"

"क्यों? क्या तकलीफ है?"

"अब यूं लेटे रहना अच्छा नहीं लगता।"

"लेटे रहना किसे अच्छा लगता है? लेकिन उपाय क्या है, बताओ। जब तबीयत ठीक हो जाये तो उठ जाना, घूमना-घामना, सैर करना।"

"जी नहीं, तबीयत तो ठीक है, मन ही ठीक नहीं है।"

"क्यों मन को क्या हुआ?"

"चारों तरफ का रंग-ढंग देखकर मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा—"

"ऐसा कौन-सा रंग-ढंग देख लिया तूने?"

"आप भी तो सब कुछ देख रहे हैं। आपको तकलीफ नहीं होती ये रंग-ढंग देखकर?"

"कौन-सा रंग-ढंग देखकर?"

"यही कुछ, जो मैं सुन रहा हूं। लोग ट्राम-बसों का किराया नहीं देते, टिकट नहीं खरीदते। कोई अपनी ड्यूटी नहीं करता। हर कोई अपने काम में फांसी देता है। ऐसी ही ढेर-ढेर बातें सुनता हूं, कुछ अखबारों में पढ़ता हूं। अगर यही राग-रंग रहा, तो इस देश का क्या होगा? यहां के लोगों का क्या होगा?"

"अच्छा! तो तुम यही सब सोचते रहते हो?"

"सोचूंगा नहीं ? मैं तो सारी जिन्दगी यही सब सोचता आया। उस वक्त मेरा ख्याल था कि अंग्रेज चले जायेंगे तो हम शरीफ हो जायेंगे···इन्सान बनेंगे। हम ठीक तरह काम-काज करेंगे। लेकिन, यहां तो उल्टा हो गया ?"

"क्या उल्टा हो गया ?"

"यही···हिन्दू मुसलमान का खून कर रहे हैं, मुसलमान हिन्दुओं को मिटा रहे हैं। किसी को भी अपनी करतूतों का होश नहीं। देश में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान हो गया, लेकिन खून-खराबा बंद नहीं हुआ। हर कोई, हर कुछ कर रहा है, बस, काम ही नहीं कर रहा। जो लोग जिन्दगी-भर तन-मन-धन से देश-सेवा में लगे रहे, उन्हें धकेलकर सुविधावादी लोग आगे-आगे दौड़ पड़े और बड़े-बड़े पदों से चिपककर बैठ गये। वे लोग एकदम से अगली कतार में जा बैठे। कौन किस पद पर डटा रहे, इसको लेकर आपस में मार-धाड़ शुरू हो गयी। अंग्रेजों के जमाने में ऐसा नहीं था। इससे तो अंग्रेजों का राज्य ही बेहतर था। उस वक्त कम-से-कम हुनर की कद्र, मेहनत का मोल और निष्ठा का पुरस्कार तो था। अब हमने अंग्रेजों को अपने देश से खदेड़ दिया है। हमारी जिम्मेदारी तो और बढ़ गयी है। अब विदेशियों का राजत्व भी नहीं रहा, अब तो और ज्यादा मन लगाकर काम करना चाहिए।"

देवव्रत लेटे-लेटे दिन-रात यही सब सोचा करता था और काका के कुछ पूछने पर इसी तरह बिफरने लगता था।

हालांकि कहां गुम गये उसके बापू ? कहां गयी उसकी मां ? कहां छूट गयी मिनती ? और कहां बेनिशान हो गया उसका दौलतपुर—इन बातों की वह कभी चर्चा नहीं करता था। वे लोग अब कभी उसे याद भी आते हैं या नहीं। यह भी आज तक किसी पर जाहिर नहीं हो सका।

गोलकेन्दु ने गोष्ठ को हिदायत दे रखी थी कि वह देवव्रत पर नजर रखे। कभी वह घर छोड़कर बाहर न निकल जाये।

गोष्ठ मौका निकालकर एकाध बार उसके कमरे में इस ढंग से झांक जाता था कि देवव्रत को यह न लगे कि उस पर निगरानी रखी जा रही है।

उसके दादाबाबू कभी अखबार या किताब पढ़ रहे होते, कभी चुपचाप कमरे की छतों को घूरते हुए अपने ख्यालों में खोये रहते, कभी मन-ही-मन कुछ बुदबुदा रहे होते।

"कौन ? कौन है वहां ?"

देवव्रत को लगता, कोई उसके कमरे में आया है। जब उसे अपने सवाल का जवाब नहीं मिलता, तो वह दुबारा चुपचाप लेट जाते।

गोलकेन्दु कमरे में आते ही सवाल करते, "आज तबीयत कैसी है ?"

"अच्छी—!"

"अगर अच्छी है, तो दिन-भर लेटे क्यों रहते हो ?"

"मेरा मन नहीं लगता।"

"क्यों नहीं लगता मन ?"

"कैसे लगे ! समूचा देश रसातल में चला गया। समूचे लोग भटक गये। सुभाष बोस ने क्यों अपनी जान लुटा दी ? विनय'दा ने क्यों मौत को गले लगा लिया ?"

देबू और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन अक्सर आवेग और उत्तेजना से उसकी आवाज रुंध जाती।

गोलकेन्दु ने देवव्रत को मानसिक रोग के डॉक्टर को भी दिखाया।

पूरी जांच के बाद डॉक्टर ने भी राय दी, "मरीज को बहुत ज्यादा शॉक लगा है। उसे ठीक होने में थोड़ा वक्त लगेगा।"

ऐसा हुआ ! उस डॉक्टर की दवा-दारू ने वाकई असर किया और कुछ ही महीनों में वह बिस्तर छोड़कर उठ बैठा। कुछ दिनों बाद उसने कमरे में ही चलना-फिरना भी शुरू कर दिया और अगले कुछ दिनों में कमरे से बाहर भी घूमने लगा। जब वह ठीक हो गया, काका को, विद्यार्थियों को पढ़ाने भी लगा।

देवव्रत का अध्यापन छात्रों को भी बहुत पसन्द आया। उससे ट्यूशन लेने की वजह से लड़कों को स्कूल-कॉलेज की परीक्षाओं में और बेहतर नम्बर मिलने लगे। यह सब देखने-सुनने के बाद एक दिन गोलकेन्दु ने उसे समझाया, "देख लिया न, देबू, दुनिया तुम्हारी मर्जी मुताबिक चले, यह जरूरी नहीं।"

देबू ने उसकी इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

गोलकेन्दु ने दुबारा कहा, "तुम चाहो या न चाहो, इतिहास हमेशा आगे बढ़ता जाता है। कभी-कभी पिछड़ भी जाता है, लेकिन फिर तेज कदमों से आगे निकल जाता है। यह तुम्हारे या किसी और के इशारे पर नहीं नाचता। गांधी जी चले गये तो क्या देश रुक गया ?"

थोड़ा दम लेकर उन्होंने दुबारा कहा, "शायद तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा, वह विद्यार्थी शाहबुद्दीन···शाहबुद्दीन की याद है न तुम्हें जो मिनती को ले उड़ा ? इन दिनों वह पाकिस्तान में मिनिस्टर बन गया है। मिनती से निकाह भी कर लिया है उसने।"

देवव्रत ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की।

गोलकेन्दु ने फिर कहना शुरू किया, "अब देख लिया न, इतिहास किसे कहते हैं। इतिहास तुम्हारा-मेरा, तुम्हारे मां-बाप···किसी की भी परवाह नहीं करता। हिटलर मुसोलिनी···इन लोगों ने भी इतिहास की धारा को बदल देना चाहा था, लेकिन उनकी चाह या मांग इतिहास ने पूरी की ? इसीलिए कहता हूं, तुम बेकार सोच-सोचकर अपना मन खराब मत करो। सिर्फ अपना कर्तव्य किए जाओ,

बेटे ! और कुछ करने का हक तुम्हें है ही नहीं ! तुम्हारा दौलतपुर भी अब पहले वाला नहीं रहा। हमारा कलकत्ता भी अब पहले जैसा नहीं रहा। तुम्हीं बताओ, अंग्रेज तो तुम्हारे दुश्मन थे। वे भी क्या अब पहले जैसे हैं ? जिन अंग्रेजों के वंशधर लोमैन, सिम्पसन और पेडी का खून करके, लोगों ने सोचा था कि अंग्रेज अब निरवंश हो गए, क्या सचमुच ऐसा हुआ ? वे लोग तो आज भी अमेरिका के दम-खम पर टिके हुए हैं। इसे ही कहते हैं—इतिहास ! असल में इंसान इतिहास को नहीं बदल सकता, इतिहास ही इंसान को बदल देता है। तुम भी इस हकीकत को कबूल कर लो और अपना काम किए जाओ।"

कुछ देर ठहरकर उन्होंने बातों की अगली कड़ी जोड़ी, "एक बात और सुनो ! हमारी सरकार एक नया स्कूल खोल रही है। वहां मैं तुम्हारी नौकरी की कोशिश कर रहा हूं। स्कूल के लिए उन्हें हेडमास्टर की जरूरत है। मैंने तुम्हारा नाम सुझाया है। अगर यह नौकरी तुम्हें मिल जाए, तो इंकार मत करना।"

इतना कहकर वे कमरे से बाहर चले गए। देवब्रत के सामने जो विद्यार्थी बैठे थे, देवब्रत ने उनसे मुखातिब होकर कहा, "आज, बस, यहीं तक ! मेरी तबीयत ठीक नहीं। बाकी कल पढ़ाऊंगा। कल तुम लोग इसी वक्त आ जाना !"

इतना कहकर देवब्रत उठ खड़ा हुआ और शिथिल कदमों से अपने कमरे की ओर चल पड़ा। कमरे में पहुंचकर उसने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया।

मेरे अचरज की सीमा नहीं रही। मैंने अचकचाकर पूछा, "अरे ! मिनती ने देवब्रत से ब्याह करने के बाद, फिर शाहबुद्दीन से भी निकाह कर लिया ? ऐसा कैसे हुआ ?"

सुप्रभात ने कहा, "इसीलिए तो पूरी दास्तान सुना रहा हूं तुम्हें ! किसी जमाने में पार्वती बाबू ने देवब्रत से अपनी बेटी के विवाह के लिए कितनी आरजू-मिन्नत, कितनी खुशामद की थी, तब जाकर कहीं वह ब्याह के लिए राजी हुआ था। उसी मिनती ने देवब्रत को छोड़ दिया और शाहबुद्दीन से निकाह कर लिया।

पहले दुनिया के नक्शे में पाकिस्तान नामक मुल्क का नामोनिशान तक नहीं था। सन् 1947 के अगस्त के महीने के बाद एक नया नाम आ जुड़ा। उसी तरह मिनती का जो पहला पति था, उसका नाम मिटाकर, उसकी जगह एक नया नाम लिख गया। पहले जो औरत किसी हिन्दू की पत्नी थी, अचानक किसी मुसलमान की बीवी बन गई। इतिहास-भूगोल के साथ-साथ इंसान का मन भी बदल जाता है, मिनती का जिन्दगीनामा इसी सच का सबूत था।

अगर कहीं यह हेर-फेर मुकुन्द और उनकी पत्नी या पार्वती बाबू के सामने हुआ होता, तो क्या होता ? उन लोगों का मन क्या हमें कबूल कर पाता ?

जो लोग 15 अगस्त, 1947 के बाद पैदा हुए, वे लोग कल्पना भी नहीं कर

सकते कि देश की आजादी के लिए उनके पुरखों ने किस कदर अपना खून-पसीना बहाया, कितनी जिल्लतें उठाईं। उन लोगों को कितना कुछ त्याग करना पड़ा।

उसका सुफल और कुफल आज जिन लोगों को भुगतना पड़ रहा है, वे लोग?

वे लोग निर्विकार, निर्विकल्प, निःसंकोच बस, देख रहे हैं। आजाद देश के लोग ही आजाद देश की सम्पत्ति चुराते हैं। आजाद देश के नागरिक बिना टिकट ट्रेन में सफर करके किराये में कांसी देते हैं। आजाद देश के लोग ही आय-कर को चकमा देकर आजाद देश की सम्पत्ति में सेंध लगाकर देश का नुकसान करते हैं। अंग्रेजों के जमाने में अत्याचार और अनाचार के लिए हम विदेशी फिरंगियों पर इल्जाम लगाते थे। अब इस आजाद देश में हम किसे जिम्मेदार ठहरायें? अब तो अत्याचार-अनाचार लाखों गुना ज्यादा फैल गया है। अब हम किसके विरुद्ध लड़ें?

मैंने कहा, "ये सब भाषणबाजी छोड़। उपन्यास लिखते समय ये ज्ञान-वार्ता मैं खुद ही जोड़ लूंगा कहानी में। तू मुझे वह बता, जो उसके बाद हुआ? इसके बाद देवव्रत और मिनती की भेंट हुई थी कभी?"

"हां, हुई थी भेंट।"

"कब? कितने दिनों बाद?"

"वह भी अभूतपूर्व घटना है। इंसान की जिन्दगी में कितनी-कितनी किस्म की घटनाएं-दुर्घटनाएं घटती रहती हैं, इसके बारे में सोचने बैठो, तो बेहद अचरज होता है। जो देवव्रत बचपन में सुल्तान अहमद जैसे महापुरुष की शिक्षा-दीक्षा में इंसान बना, विनय'दा जैसे शख्स से देश-सेवा की दीक्षा ली थी, वह क्या कभी, किसी से सुलह-समझौता करके जी सकता है?

वैसे आजकल तो सभी लोग बस, समझौतों के सहारे जिन्दा हैं। बड़े-बुजुर्गों के बजाय छुटभइयों को ही अपना आदर्श मानकर परम निश्चिन्त हो गए हैं। अगर छोटे-मोटे समझौते करके अपना अस्तित्व कायम रखा जा सकता है, तो किसी आदर्श के लिए विरोध की राह चलते हुए अपने को जख्मी करने से फायदा? हर इंसान के भीतर एक और इंसान कान पर कलम खोंसे छिपा बैठा रहता है। वह बाकायदा जोड़-घटाव का हिसाब लगाकर सपने में उस शख्स के आगे, उसके नफा-नुकसान की बेलेंस-शीट रख देता है और होशियार भी कर देता है। वह उसे नसीहत देता है—जो सब करते हैं, वही तुम भी करो। हर किसी के साथ ताल मिलाकर चलो। इसी में तुम्हारा इहलौकिक लाभ है। पारलौकिक लाभ की फिक्र फिजूल है। तुम्हारी मौत के बाद क्या भला-बुरा होगा है, यह सोचने की जरूरत नहीं। इसके लिए देश में अनगिनत लोग पड़े हैं। तुम सिर्फ अपनी और अपनी बीबी की चिन्ता करो। देश के बारे में वे लोग सोचें, जिन्हें तुमने वोट देकर मंत्री बनाया है। कहा न, तुम सिर्फ अपने और अपने लोगों में मस्त रहो।

यही है, शत-प्रतिशत लोगों की मानसिकता !

लेकिन देवव्रत सरकार ?

इसीलिए तो मैंने शुरू में ही लिखा—जैसे हर पहाड़ हिमालय नहीं, हर नदी गंगा नहीं, हर मृग कस्तूरी-मृग नहीं, उसी तरह हर इंसान देवव्रत सरकार नहीं।

इतिहास अपने भारी-भरकम रजिस्टर के एक-एक पन्ने, धीरे-धीरे पलटता जाता है और पिछले युग का सारा कुछ बदल देता है। भारतवर्ष में जिस दिन पठान-मुगल युग खत्म हुआ, अंग्रेजों ने पदार्पण किया। उस वक्त लोगों ने सूरी राजाओं को भुलाकर, दीवारों पर टंगी बादशाह-नवाबों की तस्वीरें हटा दीं और अंग्रेजों तथा बड़े लाट-छोटे लाट की तस्वीरें टांग दीं। जब बड़े लाट-छोटे लाट अंग्रेज चले गए, तो उनकी जगह जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी की तस्वीरें टांग लीं। उनकी भजनावली गाकर देश के लोग अपने को कृतार्थ मानने लगे।

यही नियम है !

लेकिन कई नियमों के व्यतीक्रम भी होते हैं। इस नियम का भी व्यतीक्रम मौजूद है।

इसलिए कुछ लोग सूर्य की पूजा करते हैं, कुछ अग्नि की और कुछ लोग पानी की। इस सूरज-अग्नि और जल का न कोई विकल्प था, न है, न होगा। भले युग बदलता रहे, वे अमर रहेंगे।

इसी किस्म का इंसान था—देवव्रत ! देश चाहे जितनी बार बदले, चाहे जितने टुकड़े-टुकड़े हों, चाहे जो लोग भी देश के राजा-रानी बनें, देवव्रत सरकार जैसे लोगों का आदर्श कभी नहीं बदलता। उनका आदर्श कभी नहीं बदलना चाहिए।

इसके बाद, हावड़ा पुल के नीचे से अबाध जल बह गया। उस जल के साथ ढेर-ढेर खून, ढेर-ढेर पाप, और अत्याचार बहते-उतरते बंगाल की खाड़ी में जा मिले।

देवव्रत के जीवन में सबसे बड़ा नुकसान था—काका की मृत्यु !

हालांकि देश की मौत के साथ गोलकेन्दु काका की मौत की तुलना बेमानी है। भारत के बंटवारे से उसे जितना आघात लगा था, उसके मुकाबले काका की मृत्यु कुछ भी नहीं।

सबसे बड़ा और अहम् था—वियोग !

चूंकि मां-बापू का वियोग उसकी नजर की ओट में हुआ था, इसलिए चोट भी इतनी संगीन नहीं थी। लेकिन काका की मौत की खबर पाकर, अड़ोस-पड़ोस के घरों से जो लोग मातमपुर्सी को आए, वे लोग भी देवव्रत की सूरत देखकर अवाक् रह गए।

पड़ोस के मकान में शैलेन रहते थे—शैलेन चक्रवर्ती ! उनकी गोलक बाबू से काफी घनिष्ठता थी ।

सिर्फ शैलेन ही क्यों, गोलकेन्दु के छात्र भी असंख्य थे । उनके निर्देशन में पढ़-लिखकर जिन्दगी में वे लोग काफी बड़े बन सके थे । बड़े यानी ऊंची ऊंची तनख्वाह वाली नौकरी !

गोलकेन्दु को श्मशान ले जाने में अभी कुछ देर थी । खून से लथपथ उनकी देह देखकर साफ जाहिर था किसी ने उनका खून किया था । पिछली रात को ही पुलिस ने सूचना दी कि आधी रात के बाद, सड़क पर किसी की लाश मिली है । पहली नजर में तो कोई उन्हें पहचान ही नहीं सका । लड़कों में से ही किसी लड़के ने पहचान लिया । उसी ने करीब वाले थाने में रपट लिखाई—इस मृत व्यक्ति का नाम गोलकेन्दु सरकार है ।

हादसे की खबर मिलते ही, वह रात को ही थाने में हाजिर हुआ और काका की शिनाख्त की ।

पुलिस अफसर ने जवाब तलब किया, "ये आपके काका हैं ?"

देवव्रत की पथराई निगाहें काका के चेहरे पर गड़ी थीं । जिस काका से उसने पिछली शाम तक बातें की थीं, वही शख्स इस वक्त निर्जीव, निष्प्राण पड़ा था । उनकी हालत से साफ जाहिर था कि किसी ने पीछे से उन पर हमला किया और छुरा घोंपकर उनकी जान ले ली ।

तारक सरकार ने मंतव्य दिया । आजकल कलकत्ते में यह रोजमर्रा की आम बात हो गई है । यही है कलकत्ते का हाल !

काका को उनके घर ले आया गया । तब तक लोगों को खबर मिल चुकी थी । काका के स्कूल में खबर पहुंचते ही, स्कूल में छुट्टी कर दी गई । छुट्टी के बाद सारे लड़के झुंड बांधकर काका के घर पर हाजिर हुए । अपने हेडमास्टर साहब की हालत देखकर छात्रों की आखें नम हो आयी ।

देखते-ही-देखते और भी काफी लोग जमा हो गए । उनके दरवाजे पर मुहल्ले वालों की भीड़ लग गई । हर किसी की आखों में आसू ! लोग गोलकेन्दु के पार्थिव शरीर के प्रति दूर से ही प्रणाम करके अपनी श्रद्धा अर्पित करते रहे ।

लेकिन हैरत है ! देबू को देखकर यह अन्दाजा लगाना असम्भव था कि उसे कहीं चोट लगी है । मानो वह नि:शब्द, नर्वाक, नि:शेष हो गया हो । उसके आसू भी मानो झरना भूल गए हों ।

आखिरकार देवव्रत ने ही जुबान खोली, "चलो, अब श्मशान घाट चलें ।"

लोग दल बांधकर अर्थी के पीछे-पीछे श्मशान की ओर चल पड़े ।

मुहल्ले के जिन लोगों ने भी वह दृश्य देखा, शोकार्त होकर कहते-सुनते रहे—एक महापुरुष उठ गया ।

सुप्रभात ने कहानी को आगे बढ़ाया, "उसके बाद से देवव्रत मानो नितान्त अकेला हो आया। सिर्फ अकेला ही नहीं, निःसहाय, निःसम्बल और निःसंग भी ! मां-बापू, सास-ससुर तो पहले ही इस दुनिया से जा चुके थे, उसके बाद गई उसकी जन्मभूमि ! लेकिन इनका वियोग उसे अपनी आंखों से नहीं देखना पड़ा था। दुनिया के बदलते हुए इतिहास—भूगोल की तरह उसके मन का इतिहास—भूगोल भी बदल गया था। अब उसके काका भी चले गए। फिर रहा कौन ?"

हां, एक गोष्ठ के अलावा अब उसका कोई भी नहीं रहा।

देवव्रत ने एक दिन गोष्ठ को बुलाकर कहा, "अगर तुझे भी मेरे साथ रहने में तकलीफ है, तो तू भी चला जा।"

"मैं चला गया, तो आपको देखेगा कौन ?" गोष्ठ ने पूछा।

"मैं ठहरा अकेला जीव ! चला लूंगा किसी तरह ! लेकिन तुम मेरे लिए क्यों तकलीफ भोगे ?"

"मेरा भी कोई नहीं, दादा बाबू, मैं भला कहां जाऊंगा।"

"तू भी मेरी तरह अकेला है।"

"हां, दादा बाबू, अपने के नाम पर जो मेरे सब-कुछ थे, जब वे चले गए, तो मैं भला कहां जाऊंगा ? यहीं पड़ा रहने दीजिए।" कुछ सोचते हुए उसने दुबारा कहा, "वैसे अगर आप मुझे न रखना चाहें, तो मुझे जाना ही होगा।"

"कहां जायेगा ?"

"और कहां जाऊंगा ? अपने देश चला जाऊंगा।"

"तेरा देश ? तेरा भी कोई देश है ?"

"हां, देश तो सभी का होता है, दादा बाबू।"

"कहां है तेरा देश ? हिन्दुस्तान में या पाकिस्तान में ?"

"यहीं ! नदिया में !"

"उस देश में तेरा कौन-कौन है ?"

"वहां मेरा एक ममेरा भाई बच रहा है। बाकी लोग तो भगवान को प्यारे हो गए।"

"लेकिन, तेरा भाई भी तो कभी तुझसे मिलने नहीं आया।"

"मैंने ही उन लोगों से कोई वास्ता नहीं रखा। बचपन से ही मैं बाबू के पास रहने लगा था, इसीलिए उनसे बड़ा मोह हो गया था। उस वक्त तो मलकिनी भी जिन्दा थीं। मां जी की मौत के बाद, बाबू की देखभाल करने वाला कोई नहीं रहा। इसलिए मैं भी इस घर को छोड़कर कभी नहीं जा सका। अब अगर आप मुझे रख लें, तो मैं रह जाऊंगा। कहीं नहीं जाऊंगा।"

गोलकेन्दु के जाने के बावजूद गोष्ठ पहले की तरह ही उस घर का हो रहा। घर काम-काज भी पहले की तरह ही चलने लगा। विद्यार्थी जैसे काका से पढ़ने के

लिए आया करते थे। उसी तरह देवव्रत के पास भी आने लगे। देवव्रत भी पहले की तरह स्कूल की नौकरी में व्यस्त हो गया। हालांकि स्कूल में नौकरी करते हुए, तनख्वाह लेने में उसे एतराज नहीं था, लेकिन जो छात्र घर पर पढ़ने आते थे, काका की तरह वह भी उन्हें मुफ्त पढ़ाता था। उनसे रुपये-पैसे या फीस नहीं लेता था।

काका की मौत के बाद स्कूल से तनख्वाह मिलते ही, वह गोष्ठ के हाथों में सौंप देता।

"ले, रख ! इस महीने की तनख्वाह !"

गोष्ठ ने शुरू-शुरू में आपत्ति भी की, "सारी की सारी तनख्वाह मुझे दे दी ?"

"तुझे नहीं दूंगा तो और किसे दूंगा ? घर में क्या मेरी बहुरिया बैठी है, जो उसे सौंप दूं ? सारा खर्च-पत्तर तो तू ही करता है। देखना, जरा हिसाब से चलना। जब कपड़े-लत्ते खरीदने होंगे, तुझसे रुपये मांग लूंगा।"

गोष्ठ और क्या कहता ?

कभी-कभार वही टोक देता, "आपकी यह कमीज फट गयी है, दादा बाबू ! नयी कमीज ले आइये—"

"अरे, धत ! कहां फटी है ? अभी तो लगभग नयी है।"

देवव्रत बड़े गौर से अपनी कमीज का मुआयना करता। उसे फटी जगह कहीं नजर नहीं आती।

अन्त में वह कहता, "नहीं, नहीं ! अभी इसी में चल जायेगा। बेकार रुपये बर्बाद करने से फायदा ?"

वह उसी कमीज में स्कूल चल देता। अगले दिन स्कूल जाने के लिए तैयार होते वक्त वह देखता, पुरानी शर्ट की जगह नयी शर्ट टंगी हुई है।

नयी शर्ट देखते ही देवव्रत ने चीखकर आवाज लगायी, "ओ ! रे ! गोष्ठ ! यह नयी शर्ट कहां से आ गयी ?"

गोष्ठ ने करीब आकर कहा, "नयी कमीज मैं खरीद लाया।

"और पुरानी वाली।"

"पुरानी वाली मैंने बर्तनवाली को देकर कांसे की कटोरी ले ली।"

अब क्या हो सकता था ? देवव्रत ने नयी कमीज पहनते हुए कहा, "अगर ऐसी नवाबी करता रहा, तो किसी दिन एकदम से दिवालिया ही हो जायेंगे। क्या मुझे धन्नासेठ समझता है ? तुझे पता नहीं हमारा देश गरीब है ? यहां नवाबी करना पाप है।"

सिर्फ कमीज ही क्यों धोती के मामले में भी वह नवाबी के विरुद्ध ... देश में साठ प्रतिशत लोग गरीब हैं, वहां [illegible] क्या ...

स्कूल में गणित के टीचर सुशील एकान्त में उससे पूछ बैठे, "अच्छा, देवव्रत जी, आप तो विद्यार्थियों को घर पर पढ़ाते हैं ?"

"जी हां, पढ़ाता हूं।"

"नहीं, पढ़ाना तो अच्छी बात है। लेकिन, हमारा नुकसान क्यों करते हैं ?"

"मैं आप लोगों का नुकसान करता हूं ? मतलब ?"

सुशील की बातें सुनकर वह मानो आसमान से गिरा। उसे याद नहीं पड़ा कि जिन्दगी में उसने कभी, किसी का नुकसान किया हो। लोगों का नुकसान करना तो दूर, सपने में उन्हें नुकसान पहुंचाने का इरादा भी कभी नहीं किया।

उसने कहा, "मुझे आपकी बात समझ नहीं आयी।"

"सुनिये, आप ही की वजह से मेरी कोचिंग क्लास में छात्र नहीं आते। आप अगर मुफ्त पढ़ाते हैं तो किसको पड़ी है कि वह हर महीने पैंतालीस रुपये खर्च करके मेरी कोचिंग क्लास में पढ़ने आये ?"

देवव्रत अवाक् ! उसकी जुबान से एक भी शब्द नहीं निकला।

सुशील ने उसे फिर समझाया, "चलो, मान लिया कि आपने शादी-ब्याह नहीं किया, संन्यासी जीव हैं। आप बिना पैसे के पढ़ा सकते हैं, लेकिन हमारे तो बीवी-बच्चे हैं। आजकल गृहस्थी चलाना कितना मुश्किल है, यह आपको क्या पता ?"

"किसने कहा, मैंने ब्याह नहीं किया ?"

"अरे ! आप शादीशुदा हैं ? आपकी पत्नी कहां हैं ?"

"देश के बंटवारे के बाद, सुना है, किसी और शख्स के साथ चली गयी। उस वक्त मैं जेल में था।"

यह खबर जितनी अनोखी थी, उतनी ही शर्मनाक !

लेकिन देवव्रत सरकार को यह जाहिर करने में रंचमात्र भी खेद नहीं हुआ।

यहां यह खबर किसी को ज्ञात नहीं थी।

सुशील ने पूछा, "जेल से बाहर आने के बाद भी आपको अपनी पत्नी का कोई अता-पता नहीं मिला ?"

"बाद में उसकी खोज करके भी क्या होता, बिरादर ? वह जहां भी रहे, खुश रहे।"

जो लोग देवव्रत सरकार को अब तक पागल समझते थे, इस घटना के बाद उनकी राय बदल गयी। उन्हें लगा शायद वह सचमुच भला इंसान है। कपड़े-लत्ते और बाहरी रंग-ढंग से भले ही वह बेवकूफ लगता हो, असल में वह आदमी परोपकारी, संयमी, निर्लोभी और विनम्र है।

उन दिनों देश का हाल-चाल बिलकुल ही बदल चुका था। किसी जमाने में जिस कलकत्ते शहर में रात को बाहर निकलना मुश्किल था, अब कुछ शान्ति थी।

लेकिन एक मामले में देवव्रत को कोई हरा नहीं सका। उसे जो सच लगता था, वह उसी का पालन करता था। उस सत्य की रक्षा में वह अपनी जान तक देने को प्रस्तुत रहता। किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कोई उसे अपने विश्वास और अपने सच से झकझोरना चाहे, तो, तो वह सूत भर भी नहीं हिलेगा।

मैंने फिर सवाल किया, "फिर क्या हुआ ?"

सुप्रभात ने तसल्ली दी, "चलो, अब तुम्हें अपने सारे सवालों का जवाब मिल जायेगा।"

अब शुरू हुई देवव्रत के जीवन की अग्निपरीक्षा ! तभी तो उसकी सच्ची परख हो सकी कि वह किस हद तक परोपकारी, संयमी, कठोर और अहंकार-मुक्त है।

'''उस दिन स्कूल से छुट्टी के बाद देवव्रत जब घर लौटा, तो घोर विस्मय से चौंक उठा। अचानक मिनती को देखकर अवाक् रह गया।

"तुम ? अचानक ?"

मिनती कोई जवाब नहीं दे सकी।

"और ये कौन है ?" देवव्रत ने दूसरा सवाल किया।

"मेरी बेटी है—सरला !"

देवव्रत ने मां-बेटी की तरफ गौर से देखा।

उसने तीसरा सवाल किया, "तुम लोग कलकत्ता कब आये ?"

"आज ही'''"

"ठहरे कहां हो ?"

"तुम्हारे पास ही। तुम्हें कोई एतराज है ?"

"मुझे भला क्यों एतराज होगा ? कितने दिन रहोगी यहां ?"

"जितने दिन तुम रहने दोगे।"

"मतलब ?"

"जब तक तुम रहने की अनुमति नहीं दोगे, कैसे बताऊं कि यहां कब तक रहूंगी ?"

"फर्ज करो, अगर मैं कहूं, तुम जिन्दगी भर यहीं रहो, तब ?"

"जिन्दगी भर साथ रखोगे ?"

"हां, जिन्दगी भर ! वादा रहा।"

"तो, मैं यहीं रहूंगी, हमेशा।"

"क्यों ? जहां तुम इतने दिनों रहीं, वहां से चली क्यों आयीं ?"

"मेरे शौहर का इन्तकाल हो गया।"

"अरे ! शाहबुद्दीन चल बसा ? क्या हुआ था उसे ? मैंने तो सुना था, पाकिस्तान में वह होम-मिनिस्टर वगैरह बन गया है ?"

"अचानक एक रेल दुर्घटना में हम सभी जख्मी हो गये। मेरे पति चल बसे। हम मां-बेटी बचकर लौट आये यहां। अस्पताल से छुट्टी मिलते ही, पासपोर्ट-वीसा लिया और सीधे तुम्हारे पास चली आयी। दुनिया में और कोई मेरा नहीं, जिसके पास पनाह मांगने जाती।"

देवव्रत कुछ देर को गहरी सोच में डूब गया।

उससे कोई जवाब न पाकर मिनती ने फिर पूछा, "तुम रखोगे हमें?"

"मैं कोई और बात सोच रहा था।"

"क्या बात?"

"सोच रहा था, मैं ठहरा बेहद गरीब! तुम इतने बड़े और अमीर पति की पत्नी हो, मुझ गरीब के घर कैसे रह सकोगी?"

"लेकिन तुम इस बात से तो मुकर नहीं सकते कि कभी तुमने मुझसे ब्याह किया था?"

"खैर, छोड़ो ये बातें! यह बताओ कि तुमने और तुम्हारी बेटी ने कुछ खाया-पीया भी या नहीं?"

गोष्ठ करीब ही खड़ा था। उसने कहा, 'मैंने भात पका लिया है। घर में आलू पड़े थे, भून लिया। दाल भी बना लिया है···"

गोष्ठ अपने दादाबाबू को बखूबी पहचान गया था। उसने फौरन अन्दाजा लगा लिया कि जो मेहमान आये हैं, वे दादाबाबू के जरूर कोई घनिष्ठ परिचित होंगे। खासकर, जब महिला की मांग में सिंदूर है और उसके साथ एक बच्चा भी है। अक्सर लोग किसी अपरिचित की शक्ल-सूरत से ही अंदाज लगा लेते हैं कि कौन उसका अपना है, कौन पराया! खासकर गोष्ठ फौरन पहचान लेता है। इस घर में वह बचपन से रहा है और बचपन से ही अपने दादाबाबू को देखता-चीह्नता आया है।

देवब्रत ने कहा, "इसे पहचान लो, मिनती। जब तक यह अपना गोष्ठ मौजूद है, तुम्हें किसी तरह के संकोच की जरूरत नहीं। तुम लोगों को जब, जिस चीज की जरूरत हो, गोष्ठ से बेझिझक मांग लेना। समझीं? इस घर में गोष्ठ ही सब कुछ है, दौलतपुर में जैसे राखाल था, यहां यह गोष्ठ है।" इतना कहकर वह चुप हो रहा।

देवव्रत को चिन्तित देखकर मिनती ने पूछा, "तुम कहीं जा रहे हो?"

"हां, आज हमारे स्कूल के इतिहास-टीचर फिर नहीं आये। उनके बारे में चिन्ता लगी है। वे कभी नागा नहीं करते। जरूर बीमार होंगे। मैं जरा उनकी खैरियत पूछ आऊं। बस, मैं गया और आया।"

उसने गोष्ठ से भी कहा, "सुन, गोष्ठ, अगर वे लोग आ जायें, तो उन्हें बैठाना, समझा?"

वह दुबारा मिनती की ओर मुड़ा, "तुम लोग रात को क्या खाओगे, गोष्ठ को बता देना। तुम लोगों के लिए वही बन जायेगा।"

इतना कहकर जैसे वह आया था, वैसे ही बाहर निकल गया।

यहां रहते हुए मिनती कुछ ही दिनों में समझ गयी, गोष्ठ ही इस घर का सर्वेसर्वा है। बाजार-सौदे से लेकर खाना पकाने तक, गृहस्थी की सारी चाबी-काठी उसी के जिम्मे है। देवव्रत सरकार भी उसी के निर्देश और सलाह-मशविरे पर चलता है। यहां तक कि उसके कपड़े-लत्तों का चुनाव भी गोष्ठ ही करता है।

ऐसी अजीब-गरीब गृहस्थी में अब मिनती और झरना भी शामिल हो गयीं। मिनती ने पूछा, "तुम्हारे यहां चाय-वाय नहीं चलती, गोष्ठ?"

"आप चाय पीयेंगी, बहूरानी? पहले क्यों नहीं बताया? अभी बाजार से चाय-पत्ती खरीद लाता हूं।"

गोष्ठ उसी पल चाय-पत्ती लाने बाजार दौड़ पड़ा। घर लौटकर उसने स्टोव जलाया और झटपट चाय तैयार कर लाया।

उसने कहा, "अगर आप मुझे पहले बता देतीं, तो आपको इतनी तकलीफ नहीं उठानी पड़ती।"

चाय सिर्फ मिनती ने ही नहीं, झरना ने भी पी।

मिनती ने पूछा, "तुम्हारे दादा बाबू चाय नहीं पीते?"

"ना—"

"तुम?"

"मैं भी चाय नहीं पीता।"

"पहले मैं और मेरी बेटी भी चाय नहीं पीते थे। लेकिन कभी-कभार चाय पीते-पीते, अब तो ऐसा नशा हो गया है कि सुबह-शाम चाय न मिले तो सिर दुखने लगता है।"

"कोई बात नहीं, बहूरानी, अब से चाय रोज बन जाया करेगी। चूंकि हमारे दादाबाबू चाय नहीं पीते, इसीलिए मैं भी नहीं पीता। हमारे दादा बाबू को तो चाय क्या, किसी भी चीज का नशा नहीं है। वे तो पान तक नहीं खाते।"

"क्यों नहीं खाते?"

"अगर वे नशा करेंगे, तो उनके छात्र भी नशा करेंगे। तब वे उन्हें मना नहीं कर पायेंगे।"

"तो तुम्हारे दादा बाबू क्या यह चाहते हैं कि उनके छात्र चाय या पान तक को भी हाथ न लगायें?"

"हां, हमारे दादा बाबू का कहना है, जो चीज खाने से कोई फायदा नहीं, वह न खाना ही बेहतर है।"

मिनती समझ गयी, इस घर में जस दादा बाबू, तस गोष्ठ! खूब जोड़ी मिली है।

गोष्ठ ने पहले ही दिन रात को दरयाफ्त किया, "आप लोगों का बिस्तर किस कमरे में लगाऊं, बहू जी?"

"किसी भी कमरे में लगा दो। तुम्हारे दादा बाबू किस कमरे में सोते हैं?"

"उनका कोई ठीक-ठिकाना नहीं। किसी भी कमरे में बस, पड़कर सो रहने से मतलब है।"

"इन दिनों वे किस कमरे में सोते हैं?"

"आप देखेंगी उनका कमरा? आइये, मेरे साथ।"

मिनती को लेकर वह सीढ़ियां चढ़कर दूसरी मंजिल पर पहुंचा और ताला खोलकर कमरा दिखाते हुए कहा, "यही है मेरे दादा बाबू का कमरा। रात को वे यहीं पीठ टिकाते हैं।"

मिनती और झरना ने कमरे के अन्दर निगाहें दौड़ायीं। जमीन पर पतला-सा शयन! मामूली-सी चटाई! उस पर एक पतली-मामूली चादर बिछी हुई। सिरहाने इंच भर ऊंचा एक तकिया। दीवार पर किसी की फ्रेमदार तस्वीर! कमरे में और कोई समान नहीं। बिलकुल सादा-सा कमरा!

झरना ने पूछा, "वे पलंग पर नहीं सोते?"

"ना—?"

"क्यों?" इस बार मिनती ने पूछा।

"दादा बाबू कहते हैं, सख्त जमीन पर सोने से स्वास्थ्य ठीक रहता है।"

"यह तस्वीर किसकी है?"

"वे दादा बाबू के गुरुदेव हैं।"

"गुरुदेव? मतलब? उन्होंने क्या दीक्षा भी ले ली है?"

गोष्ठ को यह नहीं मालूम कि उसके दादा बाबू के गुरुदेव कौन हैं। उनसे दादा बाबू ने दीक्षा ली है या नहीं, उसे इसकी भी जानकारी नहीं। कभी इस कमरे में काका बाबू सोया करते थे। तब यहां एक पलंग भी हुआ करता था। उनके स्वर्गवास के बाद दादा बाबू ने पलंग बाहर निकाल दिया। गोष्ठ ने वह पलंग अब पहले तल्ले के कमरे में बिछाकर उस पर एक बिस्तर डाल दिया है।

मिनती ने देवव्रत को पहले भी देखा है। ब्याह के बाद भी देखती रही है।

···जिस वक्त पूरे मुल्क भर में साम्प्रदायिक दंगे छिड़ गये थे, देवव्रत जेल में था। उसके बाद जब लोगों का सरेआम कत्ल होने लगा, खूनखराबा हद से ज्यादा बढ़ गया, उस वक्त अगर शाहबुद्दीन न होता, तो उसका बचना असंभव था। उसी शाहबुद्दीन ने उससे निकाह भी कर डाला वरना हिन्दू होने के जुर्म में उसका खून हो जाता। इतिहास के किसी दुर्लंघ्य निर्देश पर वह पूर्वी पाकिस्तान का मंत्री भी

बन गया। उनकी आंखों ने पहली बार चरम ऐश्वर्य, चरम विलास और चरम सम्मान का दमकता रूप भी देखा। मंत्री की बीवी होने की बदौलत समाज में उसकी इज्जत भी बढ़ गयी। उन्हीं दिनों झरना उसकी गोद में आयी।

ऐसा भयंकर वज्र शायद किसी की किस्मत पर नहीं गिरता, जैसा मिनती की जिन्दगी पर गिरा। उस वक्त उसने शायद कल्पना भी नहीं की होगी कि अब उसे एक बार फिर अपनी मांग में सिन्दूर भरना होगा। एक बार फिर दया की भीख मांगते हुए इसी देवव्रत की पनाह में लौट आना होगा। देवव्रत की इस फक्कड़ गृहस्थी के साथ जब वह शाहबुद्दीन की उस ऐशो-आराम वाली गृहस्थी की तुलना करती, तो उसे हंसी आने लगती। उन दिनों शाहबुद्दीन की मां मिनती को कितना लाड़ करती थी। उन दिनों सारे लोग एक सुर में तारीफ करते कि मिनती की खुशकिस्मती की बदौलत शाहबुद्दीन साहब पाकिस्तान के मंत्री बन गये।

लेकिन एक दिन वही लोग उसके खिलाफ हो गये।

अजब दर्दनाक हादसा था! शाहबुद्दीन साहब के साथ ट्रेन के खास सेलून में सवार मिनती और झरना ढाका जा रहे थे। मंत्रीजी के चमचे-मुसाहिब, लाव-लश्कर समेत बगल वाले डिब्बे में सवार थे। उस वक्त काफी रात हो चुकी थी। खाना-पीना निपटाकर लोग गहरी नींद में बेहोश! अचानक एक विकट धमाका हुआ और लोग हड़बड़ाकर जाग गये। उसी पल जाने क्या हुआ, सबके सब बेहोश हो गये···

···उसके बाद कुछ याद नहीं।

मिनति को जब होश आया तो उसने देखा, वह किसी अस्पताल की बेड पर पड़ी हुई है। होश में आते ही, उसे सबसे पहले झरना का ख्याल आया।

उसने किसी से पूछा, "मेरी बेटी कहां है?"

नर्स ने बगल वाली बेड की तरफ इशारा करते हुए कहा, "वो रही—"

"वह ठीक तो है न?"

"हां, पहले से बेहतर!"

"और मिनिस्टर साहब?"

नर्स का चेहरा अचानक करुण हो आया। मिनिस्टर साहब की खबर देने के बजाय उसने उसे कोई दवा पिलायी। मिनती दुबारा बेहोश हो गयी।

इस हादसे के काफी दिनों बाद उसे पता चला कि मिनिस्टर साहब नहीं रहे।

मिनती को याद है···यह खबर पाते ही वह बेहोश हो गयी थी। लेकिन अगले दिन से ही उसने महसूस किया कि अपने दिवंगत पति के संसार में वह और उसकी बेटी नितान्त अवांछित और उपेक्षित हैं।

उस दिन से ही उन मां-बेटी पर इल्जाम और लांछन के चाबुक पड़ने लगे। जो लोग 'बेगम साहिबा', 'बेगम साहिबा' कहकर उसका श्रद्धा-सम्मान करते थे, अब वे लोग ही उन पर अवहेलना और अपमान के तीर बरसाने लगे। पहले उसके सास-श्वसुर-देवर उससे इज्जत से पेश आते थे, इस हादसे के बाद वे लोग ही उनसे यथासंभव कतराने लगे। इस तरह भला और कितने दिन जिन्दा रहा जा सकता है? उसके मायके में भी अब ऐसा कोई नहीं बचा था, जिसके यहां वह शरण लेती। सबसे अलग-थलग, वह अपने ढंग से जिन्दगी जीये, यह भी संभव नहीं था। उसके तमाम जेवरात भी उसके ससुराल वालों ने छीन लिये थे।

अब सवाल यह था कि वह और उसकी बेटी जिन्दा रहने के लिए और किससे मदद मांगें? वे दोनों अपना पेट आखिर कैसे पालेंगी! अब अगर वह हिन्दू भी नहीं, मुसलमान भी नहीं, तो आखिर वह किस धर्म की पनाह में जीये? जिन्दगी के तकाजे पर दोनों को क्या किसी भी, जिस-तिस धर्म का सहारा लेना ही होगा? उन जैसे इंसानों को आखिर कहां पनाह मिलेगी? सिर्फ इंसान के नाम का तमगा लगाये, क्या कहीं किसी को जीने का हक नहीं? हर कोई हिन्दू या मुसलमान या ईसाई बन जाये? कोई इंसान न बने? सिर्फ इंसान बने रहने में आखिर क्या बुराई है?

हिन्दू लड़की होने के बावजूद मस्जिद में जाकर उसने अपना धर्म बदल डाला और हिन्दू से मुसलमान बन गयी। अब क्या वह फिर मन्दिर में जाकर दुबारा हिन्दू बन जाये? ऐसा मन्दिर कहां है? उस मन्दिर का पता-ठिकाना उसे कौन बतायेगा?

···उफ! कैसे भयंकर थे वे दिन! उन भीषण हादसों का हिसाब लगाते हुए, असहनीय दर्द से मिनती का सर फटने लगता।

झरना अक्सर पूछ बैठती, "अम्मी, पहले तो तुम सिन्दूर नहीं लगाती थीं, अब क्यों लगाती हो?"

उस वक्त झरना छोटी थी, इसलिए पिछली बातें उसे धुंधली-धुंधली याद थीं। रात के घुप्प अंधेरे में, झरना को गोद में लिये, मिनती घर से निकल पड़ी थी। उसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। ससुराल से निकलकर वह जायेगी कहां, यह भी निश्चित नहीं था।

आधी रात को नींद से जगाये जाने पर झरना ने रोना शुरू कर दिया।

उसने निहायत भोलेपन से सवाल किया, "'मुझे कहां ले जा रही हो, अम्मी?"

मिनती ने उसे बहलाते हुए कहा, "चुप कर! चुप कर! हम कलकत्ता जा रहे हैं।"

कभी जिस मिनती को, मिनिस्टर की बीवी होने की हैसियत से, हर तरह के सरकारी सम्मान, सुविधायें मिला करती थीं, उसी को कभी कुल एक साड़ी में,

खाली हाथ सबसे छिप-छिपाकर यूं सड़कों पर भटकना होगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

उसे याद है…उस दिन जाने किसी भाग्य-देवता का इशारा था या नहीं, उसे एक ऐसे महापुरुष मिल गये, जिससे उसका पहले कभी साक्षात्कार या परिचय नहीं हुआ था। उन्होंने खुद अपनी मर्जी से, उन दोनों मां-बेटी को कलकत्ता पहुंचा देने का जिम्मा उठा लिया।

उन्होंने तसल्ली देते हुए कहा, "मैं तो महज निमित्त मात्र हूं, बेटी, अगर मैं तुम लोगों के कोई काम आ सका, तो अपने को धन्य मानूंगा।"

मिनती ने पूछा भी, "आप मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते, फिर आप मेरी मदद क्यों कर रहे हैं?"

मिनती के सवाल पर वे हंस पड़े। उन्होंने कहा, "परिचय पूछने की क्या जरूरत? मुझे मालूम है, दुनिया में हर आदमी का जीवन जहर बन चुका है। किसी का ज्यादा, किसी का कम, जब तक कोई भयंकर मुसीबत न आयी हो, कोई औरत अपनी ससुराल छोड़कर सड़क पर आ सकती है? इस बारे में तुमसे पूछताछ क्यों करूं? जहां तक मेरे वश में होगा, मैं तुम्हें मुसीबत से बचा लूंगा। अगर फेल हो गया, तो उद्धार नहीं कर सकूंगा।"

…उन दिनों पाकिस्तान पार करके हिन्दुस्तान आना भी आसान नहीं था। लेकिन उस महापुरुष ने किसी तरह उस देश के सरकारी अधिकारियों की हमदर्दी हासिल कर ली। इसीलिए मुक्ति-पत्र पाने में भी खास वक्त नहीं लगा। उसके बाद ट्रेन में सवार होकर उन लोगों ने सरहद पार की और कलकत्ता आ पहुंचे।

लेकिन कलकत्ता भी कोई छोटा-मोटा शहर नहीं। विराट महानगर। मिनती को बस, भवानीपुर के गोलकेन्दु सरकार और उस स्कूल का नाम भर याद था, जहां वे हेडमास्टर थे। कहीं से उसे नन्हीं-सी खबर यह भी मिली थी कि देश-बंटवारे के बाद देवव्रत उसी काका के यहां रहने भी लगा है।

महज इतनी-सी जानकारी के सहारे वह अपरिचित इंसान, मिनती और झरना को इस घर के दरवाजे तक पहुंचा गया। लेकिन हैरत की बात यह थी कि इस उपकार के बदले में कोई प्रतिदान नहीं मांगा।

लेकिन यहां आ पहुंचने के बाद, मिनती ने घर का जो रंग-ढंग देखा, खुशी के बजाय उसका मन आशंकाओं से घिर गया। यह शख्स पहले भी असाधारण था, लेकिन अब, जैसे जरूरत से ज्यादा असाधारण हो उठा है। और ज्यादा कोमल, और ज्यादा कठोर; और ज्यादा जिद्दी; और ज्यादा धारदार!

झरना ने मां से अकेले में सवाल किया, "वो…कौन है, अम्मी?"

"…तुम्हारे अब्बू हैं, बेटे!"

झरना को मानो विश्वास नहीं आया। उसने फिर पूछा, "लेकिन तुमने तो कहा था, मेरे अब्बू मर गये?"

"नहीं, मरे नहीं, ये ही तुम्हारे अब्बू हैं।"

झरना को तब भी यकीन नहीं आया, अगर वे सचमुच उसके अब्बू हैं, तो उसकी 'पप्पी' क्यों नहीं लेते? उसे घुमाने क्यों नहीं ले जाते? घर आते वक्त उसके लिए खिलौने क्यों नहीं लाते? खाने की 'चिज्जी' क्यों नहीं लाते?

इन सवालों का जवाब झरना को कभी नहीं मिला। वह मन-ही-मन सिर्फ तौलती रही और गौर करती रही···

अचानक घर में एक औरत दाखिल हुई। खासी उम्रदार! खूबसूरत! अधेड़ होने के बावजूद, सिर के बाल सफेद!

"कहां हो, जी, बहुरिया? कहां गयीं?"

किसी औरत की आवाज सुनकर मिनती अपने कमरे से बाहर निकल आयी।

"कौन?"

उस औरत ने आगे बढ़कर कहा, "मैं हूं, बहुरिया, मैं! आल्ता मौसी।"

"आल्ता मौसी?"

"हां, बहुरिया, भरोसा नहीं आया? ई देखो, हमारे हाथ में क्या है? ई है आल्ता की शीशी! अउर ई है सेंधुर की डिबिया।"

उसने हाथ में थामी हुई शीशी और डिब्बी दिखायी।

मिनति के मन का शंकित विस्मय अभी तक कटा नहीं था।

आल्ता मौसी हाथ में शीशी लिये-दिये, धम्म से जमीन पर बैठ गयी।

"बैठो, बहुरिया, बैठ जाओ।" यह कहकर उसने अल्यूमीनियम की छोटी-सी कटोरी निकाली और उसमें थोड़ा-सा आल्ता उंडेल लिया।

"देखूं, बहुरिया, जरा पांव तो बढ़ाना—"

मिनती ने पांव आगे कर दिये। आल्ता मौसी ने बड़े एहतियात से उसके एक पांव में महावर रच दिया।

उसके बाद खुद ही तारीफ भी करने लगी, "तुम्हारे पांव कितने सुन्दर हैं, बहुरिया, मानो मक्खन; लाओ, अब जरा अपना दाहिना पांव इधर कर दो—"

मिनती को तब भी समझ में नहीं आया कि उसके पांवों में आल्ता रंगकर उस औरत को क्या फायदा होना है। बहरहाल, उसने आराम से अपना दाहिना पांव आगे कर दिया। जब उस पांव में आल्ता जगमगाने लगा। आल्ता मौसी ने उसके दोनों पांवों के बीचोंबीच अपने अंगूठे से गोल-सी बिन्दी भी बना दी।

आल्ता की शीशी में कॉर्क लगाकर, उसने सिन्दूर की डिबिया खोली, "अब जरा अपनी मांग दिखाओ—"

आल्ता मौसी के निर्देश के मुताबिक मिनती ने सिर झुका दिया। मौसी ने बेहद हौले हाथों से उसकी मांग में सिन्दूर भर दिया और माथे पर भी सिन्दूर की बड़ी-सी बिन्दी आंक दी।

आल्ता मौसी ने कहा, "भगवान करें, तुम अपने पति का घर उजियारा करो, जनम-जनम सुहागिन रहो, बहुरिया।"

वह उठ खड़ी हुई और कमरे से बाहर जाते हुए उसने दुबारा कहा, "मैं फिर आऊंगी, बहुरिया!"

गोष्ठ रसोई में खाना पका रहा था। आल्ता मौसी को जाते देखकर वह दौड़ा आया, "ये, लो, अपनी दक्षिणा लो लेती जाओ।"

"दक्षिणा दोगे? लाओ दो—"

आल्ता मौसी के जाने के बाद मिनती ने गोष्ठ से पूछा, "यह औरत कौन थी, गोष्ठ'दा?"

"वो···हैं, आल्ता मौसी।"

"आल्ता मौसी? मतलब?"

"यह औरत घर-घर जाकर सधवा औरतों को आल्ता-सेंदुर पहनाती है।"

"इससे उसको फायदा?"

"फायदा···कुछ भी नहीं।"

"तो तुमने उसे पैसे क्यों दिये?"

"पैसा वह मांगती नहीं। लोग उसे जोर-जबर्दस्ती दक्षिणा थमा देते हैं, वह ले लेती है।"

"ऐसा क्यों?"

"क्यों ऐसा है, यह मैं कैसे बताऊं, बहू जी?"

"रहती कहां है?"

"मुझे नहीं पता—"

"उसके घर में कौन-कौन है?"

"सुना है, उसका अपना कोई नहीं। उसका पति भी नहीं।"

मिनती ने विस्मय से पूछा, "उसका पति नहीं है? लेकिन उसकी मांग में सिंदूर···पांवों में आल्ता···?"

"लोग बताते हैं, उसका पति बहुत सालों पहले उसे छोड़कर चल दिया। लेकिन, इस औरत को विश्वास है कि उसका पति आज भी जिन्दा है। तभी से वह मुहल्ले की सुहागिन बहू-बेटियों को आल्ता-सिंदूर पहनाती फिरती है।"

"उसका गुजारा कैसे होता है?"

"अभी उसे मैंने एक रुपइय्या दिया न! इसी तरह हर घर से उसे थोड़ी-बहुत दक्षिणा मिल जाती है। बस, उसी में किसी तरह दो जून के रूखे-सूखे खाने

का इन्तजाम हो जाता है।"

मिनती काफी देर तक आल्ता मौसी के ख्यालों में गुम हो रही। कैसी अजीब औरत है। क्या उसे विश्वास है कि दूसरों की मंगल-कामना करने से अपना भी मंगल होता है? शायद यही बात हो।"

दो-एक दिन बाद ही आल्ता मौसी दुबारा आ पहुंची।

मिनती आल्ता लगवाते-लगवाते अचानक पूछ बैठी, "अच्छा, मौसी, हमारे मौसा कहां हैं?"

"पत्ता नहीं किस चूल्हे में गया—"

"इस तरह···दूसरों को आल्ता-सिंदूर पहनाकर भला तुम्हें क्या फायदा?"

"हाय, दइया, क्या कहती हो, बहुरिया, मेरा कोई फायदा नहीं?"

"बताओ न, क्या फायदा है?"

"दूसरों की भलाई में जो फायदा है, वही फायदा मुझे घर-घर की बहू-बेटियों को आल्ता-सिंदूर पहनाकर मिलता है। इस जनम में अगर इत्ता-सा भी पुन्न बटोर पायी, तो अगले जनम में फिर ऐसे ही मरद की सुहागिन बनूंगी। मेरे मरद जैसा मरद क्या आसानी से मिलता है, बहुरिया? ढेर-ढेर तपस्या करने के बाद, ऐसा पति नसीब होता है।"

"यानी तुम अपने अगले जन्म में भी ऐसा ही पति चाहती हो?"

"भला क्यों न चाहूं? औरत-मरद का रिश्ता क्या सिर्फ एक जनम का होता है, बहुरिया, जनम-जनम का रिश्ता होता है।"

"तो तुम्हें अकेली छोड़कर मौसा चले क्यों गए? यह क्या कोई भला काम किया?"

"वो तो मेरा ही पाप था, बहुरिया, मेरे पाप की वजह से ही···"

"तुम्हारा पाप? मतलब?"

"हां, पिछले जनम में मैंने ही कोई पाप किया होगा। तभी इस जनम में मेरा मरद मुझे छोड़कर चला गया। इसलिए बहुरिया, इस बार, इस जनम में तुम लोगों जैसी पिया-प्यारी सुहागिनों को आल्ता-सेंधुर पहनाकर पुन्न बटोरती फिरती हूं ताकि पिछले जनम का मेरा सारा पाप धुल-पुंछ जाए।"

आल्ता मौसी के विश्वास और संकल्प की कथा सुनकर मिनती ने भी मन-ही-मन काफी ताकत और भरोसा महसूस किया। ऐसी मामूली-सी अनपढ़ औरत, उसे ऐसी सीख देगी, उसने सोचा भी नहीं था। उसे लगा, काश, उसके मन में भी आल्ता मौसी जैसा विश्वास पनप उठता।

यूं ही दिन गुजरते जा रहे थे और मिनती को लग रहा था, मानो सालों गुजर गये···शायद पूरा एक युग बीत गया। किसी शख्स पर भरोसा करके इतनी तकलीफें उठाकर वह कलकत्ता आयी थी। जैसे-जैसे दिन और महीनों के

सादा खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।"

"तो हमारे लिए भी आज से मछली पकाने की कोई जरूरत नहीं। जो तुम लोग खाओगे, वही हम भी खा लेंगे। फिजूल...सिर्फ हमारे लिए मछली का झंझट क्यों ?"

गोष्ठ ने मिनती की एक न सुनी। वह अलग से उन दोनों के लिए मछली पका दिया करता।

असल में गोष्ठ ही इस घर का कर्ता-धर्ता था और घर की मालकिन भी ! देवव्रत तो उसके हाथ में तनख्वाह सौंपकर छुट्टी पा लेता, गोष्ठ भी उन्हीं रुपयों में गृहस्थी चलाने की कोशिश करता।

देवव्रत कभी-कभार गोष्ठ से दरयाफ्त भी करता, "क्यों, रे, तेरे पास रुपये-पैसे हैं न ? या और चाहिए ?"

गोष्ठ उन्हीं रुपयों में काम चला लेता। उसे निश्चिंत करते हुए जवाब देता, "नहीं ! और रुपयों की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

आल्ता मौसी को भी कभी-कभार रुपये-अठन्नी बख्शीश का खर्च भी वह इन्हीं रुपयों में से निकाल लेता।

कभी-कभार अगर आल्ता मौसी महीने के अन्त में आ जाती, तो वह पहले से ही साफ बता देता, "आज कुछ दे नहीं पाऊंगा, आल्ता मौसी।"

आल्ता मौसी भी वैसी ही ! रुपये न मिलने पर भी वह मुंह नहीं फुलाती। हर वक्त हंसमुख चेहरा ! हर वक्त उसकी जुबान पर एक ही जुमला—'मरद-औरत का रिश्ता सिर्फ एक ही जनम का होता है, बहुरिया ! यह रिश्ता तो जनम-जनम का होता है। भगवान करे, अगले जनम में भी तुम ऐसे ही पति की सुहागिन बनो।'

उस दिन मिनती ने कहा, "गोष्ठ'दा, तुम अकेले-अकेले क्यों खाना पकाते हो ? मैं तो बेकार बैठी रहती हूं। अब से मैं भी रसोई में तुम्हारा हाथ बंटाया करूंगी।"

"नहीं, नहीं, बहूरानी, यह नहीं हो सकता। अभी आप नयी-नयी आयी हैं। इतनी तकलीफ क्यों करेंगी ?"

"नहीं, गोष्ठ, चलो, आज मैं भी कुछ पकाती हूं। अगर बीच-बीच में कुछ पकाती न रही, तो खाना पकाना बिल्कुल ही भूल जाऊंगी।"

गोष्ठ सख्ती से मना कर देता, "नहीं, आप खाना बना रही हैं, दादा बाबू सुनेंगे, तो मुझे डांट लगायेंगे।"

"क्यों, डांटेंगे क्यों ?"

"दादा बाबू ने मुझे बार-बार हुकुम दिया है कि बहूरानी को कोई तकलीफ न हो।"

"लेकिन, उन्होंने खाना पकाने को क्यों मना कर दिया ?"

"मुझे नहीं पता, क्यों मना किया ? लगता है, वे नहीं चाहते कि आपको किसी तरह की तकलीफ हो। इसीलिए मना किया होगा।"

"भई, मुझे तकलीफ क्यों होने लगी ?"

"तकलीफ नहीं होगी ? आप लोग अमीर घर में पैदा हुई, अपने हाथों खाना पकाना···आप लोगों को सोहता है, भला ?"

"ये बातें भी क्या तुम्हारे दादा बाबू ने तुम्हारे कान में जड़ी हैं ?"

"नहीं, ये तो मैं कह रहा हूं।"

"नहीं, गोष्ठ'दा, नहीं ! तुम लोगों की तरह मैं भी गरीब घर में ही पैदा हुई थी। गृहस्थी के काम-काज की मुझे आदत है।"

लेकिन गोष्ठ मिनती को कोई काम नहीं करने देता था।

वैसे आदमी आखिर कितने दिनों यूं हाथ पर हाथ धरे बैठा रह सकता है ? जिसके पास स्वास्थ्य है, मन है और वक्त भी है, वह भला बैमय आराम में जी सकता है ?"

उस दिन अचानक मुख्य द्वार की कुंडी खड़क उठी। मिनती को समझ में नहीं आया कि अब वह क्या करे।

गोष्ठ किसी काम से बाहर गया हुआ था। झरना भी कमरे में किसी किताब की तस्वीरों में डूबी हुई थी।

सदर दरवाजे तक जाकर मिनती ने अन्दर से ही पूछा, "कौन है ? गोष्ठ'दा ?"

बाहर से किसी पुरुष की आवाज आयी, "देबू घर पर है ?"

"नहीं, वे घर पर नहीं हैं।"

बाहर वाले ने अनुरोध किया, "जरा, दरवाजा खोलिए। देबू के लिए एक किताब देनी है।"

बहरहाल मिनती को दरवाजा खोलना ही पड़ा। कोई अजनबी हाथ में एक किताब थामे खड़ा था। मिनती को देखकर वह जरा अचकचा गया। इस घर में कभी किसी महिला को देखने का ख्याल उसके लिए शायद अकल्पनीय था।

"यह किताब देबू को दे दीजिएगा। कहिएगा, सुशील आया था।" अजनबी ने कहा।

"जी अच्छा।"

आगत मेहमान मिनती को वह किताब थमाकर चला गया।

मिनती भी किताब लेकर यथारीति दरवाजे की सिटकिनी चढ़ाकर लौट आयी। उसने किताब पर नजर डाली, बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'भक्तियोग' लेखक : अश्विनी कुमार दत्त।

गोष्ठ के आने पर उसने सारी घटना कह सुनायी और वह किताब भी सौंप दी।

"मैं दे दूंगा दादा बाबू को।"

"यह सुशील कौन है, गोष्ठ'दा ?"

"दादा बाबू का कोई विद्यार्थी। कभी-कभी उसे एकाध किताब दादा बाबू पढ़ने के लिए दे देते हैं। यह सुशील ही नहीं, उनके अनगिनत छात्र हैं। छात्र ही क्यों, बहुत से भक्त भी हैं।"

"'कुछ ही दिनों बाद फिर एक कांड हो गया। मिनती ने देखा गोष्ठ सुबह से ही काफी व्यस्त है। पहले तो उसे कुछ समझ में नहीं आया। उसने गोष्ठ से भी कुछ नहीं पूछा। उनके दादा बाबू भी रोज की तरह सुबह-सवेरे बाहर निकल गए।

शाम होते ही घर पर बहुत सारे लोग आने लगे। एक-दो नहीं, बारी-बारी से दस-बारह लोग ! हर किसी के हाथ में फूलों का गुच्छा और मिठाई ! उनका स्वागत करते हुए गोष्ठ ही उन्हें कमरे में लाकर बिठा रहा था।

मिनती और झरना हैरत-भरी निगाहों से लोगों को आते-जाते देखती रही। ऐसा तो कभी नहीं देखा। घर में अचानक इतनी भीड़ क्यों ? माजरा क्या है ?

गोष्ठ बेतरह व्यस्त था। एक बार दौड़कर दुकान में जाता, लौटकर हांफता हुआ रसोई सम्हालने लगता। बाहरवाला कमरा भर चुका था।

हर किसी की जुबान पर एक ही सवाल था, "क्या हुआ, गोष्ठ, सर कहां हैं ?"

"आप लोग बैठिए, दादा बाबू, अभी आते होंगे।"

मिनती दूर से ही यह नजारा देख रही थी। झरना भी दर्शक बनी हुई थी। इतने लोग उनके यहां क्यों आए हैं ? ये लोग कौन हैं ?

थोड़ी देर में चार-पांच लोग और आ जुड़े।

मौका देखकर मिनती ने गोष्ठ से अकेले में सवाल किया, "आज घर में क्या है, गोष्ठ ?"

"आज हमारे दादा बाबू का जन्म-दिन है, बहूरानी।"

"अच्छा ? जन्म-दिन ? ये लोग कौन हैं ?"

"ये सब दादा बाबू के स्कूल के लड़के और मास्टर लोग हैं।"

"तो तुम्हारे दादा बाबू आज के दिन कहां गायब हो गये ?"

"उनका कोई ठीक-ठिकाना है बहूरानी। उन्हें तो कुछ याद भी नहीं रहता। उनके काम-काज की कोई गिनती है ?"

"इतना कौन-सा काम है ?"

"वो आप नहीं समझेंगी, बहूरानी, मामला किसी का भी हो, सरदर्द हमारे

दादा बाबू को ही…"

उनकी बातचीत चल ही रही थी कि बाहर वाले कमरे से किसी ने गोष्ठ को आवाज दी। वह उसी तरफ लपका! उसकी बात अधूरी रह गयी।

इधर लोग जब इन्तजार करते-करते बेसब्र हो उठे, देवव्रत आकर हाजिर हो गया। उसे देखकर लोगों में उल्लास की लहर दौड़ गयी।

इतने सारे लोगों को देखकर देवव्रत ने अचकचायी आवाज में पूछा, "क्या बात है, जी? तुम लोग अचानक? मामला क्या है?"

भीड़ में से किसी ने आगे बढ़कर देवव्रत के गले में फूलों की माला डाल दी।

"चक्कर क्या है? ये सब क्या है?"

उसके बाद माला-दर-माला, फूल-दर-फूल मालाओं के बोझ में देवव्रत दब-सा गया। वह मालायें उतार भी नहीं पा रहा था और ज्यादा माला पहनने की गुंजाइश भी नहीं थी।

"अरे, तुम लोगों को हो क्या गया है? अचानक मैंने ऐसा कौन-सा मैदान जीत लिया, जो तुम लोग इतनी-इतनी फूल-मालायें पहना रहे हो?"

सुशील ने कहा, "आज आपका जन्मदिन है, आप भले भूल जायें, हम लोग तो नहीं भूल सकते।"

"मेरा जन्मदिन?" देवव्रत ने छत-तोड़ ठहाका लगाया। अचानक उसने अपनी हंसी रोककर दुबारा कहा, "तुम लोगों ने मुझे वाकई अवाक् कर दिया। स्मरण-शक्ति वाकई तेज है तुम लोगों की।"

"इतनी रात तक तुम कहां थे, देवू?" सुशील ने पूछा।

"अरे, मत पूछो! अपने जतिन के बापू बहुत बीमार हैं। वहीं जाना पड़ा।

"जतीन? जतीन कौन?

"जतीन दत्त! दसवीं क्लास का विद्यार्थी! उसके बापू को अचानक दिल का दौरा पड़ गया। खबर मिलते ही मैं उनके घर दौड़ा। जाकर देखा उसके घरवाले बेतरह परेशान! बेचारों के पास डॉक्टर बुलाने के लिए रुपये भी नहीं! मेरा एक जान-पहचान का डॉक्टर था। मैं उसे बुला लाया। अभी डॉक्टर की गाड़ी से ही जतीन के बापू को अस्पताल में भर्ती कराया, तब लौटा हूं।"

"अब कैसी है तबीयत उनकी?"

"अच्छी तो नहीं कही जा सकती, कल सुबह एक बार फिर अस्पताल जाकर खोज-खबर लूंगा कि अब वे कैसे हैं।"

उसने वहीं से गोष्ठ को आवाज लगायी, "गोष्ठ, भई, कहां है तू?"

गोष्ठ वहीं खड़ा था, "मैं यहीं हूं।" उसने जवाब दिया।

"तेरे पास पचास रुपये हैं? मुझे दे सकता है?"

गोष्ठ ने पचास रुपये लाकर देवव्रत को थमा दिये। देवव्रत ने रुपये जेब में

रखते हुए कहा, "यह जतीन भी ऐसा अभागा है कि डॉक्टर की फीस देने के लिए घर में एक रुपया तक नहीं। इन रुपयों से कल उनके यहां हांड़ी चढ़ेगी।"

"अब जरा हमारी भाभी जी और झरना को भी बुलाइये न, देबू।" सुशील ने कहा।

"भाभी?" देवव्रत की अवाक् निगाहें भीड़ के चेहरे पर गड़ गयीं।

सुशील, सुव्रत, केदार—सब एक स्वर में बोल उठे, "आपने हम लोगों को कुछ नहीं बताया, देबू, लेकिन हम सब जान गये। चलिये, बुलाइये भाभी और झरना को। भई, गोष्ठ तुम ही भाभी और झरना को बुला लाओ।"

गोष्ठ के अन्दर जाकर मिनती से बात की।

मिनती ने सकपकाकर कहा, "मैं? वे लोग मुझे बुला रहे हैं?"

"जी, हां, आपको भी बुलाया है और बिटिया रानी को भी।"

मिनती ने कांपती आवाज में दुबारा पूछा, "वे लोग मुझे बुला रहे हैं? तुमने ठीक सुना गोष्ठ'दा?"

"हां, बहूरानी, मैंने बिल्कुल ठीक सुना। आपको और बिटिया रानी, दोनों को बुला रहे हैं। चलिये, काफी रात हुई, अब देर न करें।"

शाहबुद्दीन की गृहस्थी में मिनती जब बेगम मिनती बनी थी, तो उसे बहुत-सी मीटिंग और सभाओं में जाना पड़ता था, बहुत बार, बहुत-सी जगहों में उसे मामूली-सी कुछ बोलना भी पड़ता था। उन दिनों उसे इन सबका अभ्यास भी हो गया था। लेकिन अब? यहां उसका क्या परिचय है? वह कौन है? वह तो अब पत्नी नहीं, आश्रिता है। आश्रिता के अलावा अब उसका और कौन-सा परिचय या विशेषण है?

मिनती ने पूछा, "मुझे क्या ऐसे ही चलना है?"

"हां, हां, आप जैसी हैं, वैसी ही चलिये और बिटिया तुम भी चलो।"

अब क्या उपाय था?

मिनती जिन कपड़ों में थी, उसी में झरना को लेकर बाहर वाले कमरे में हाजिर हुई।

कमरे में हलचल मच गयी। सुशील, सुब्रत, केदार—सबने बारी-बारी से उसके हाथों में माला थमाते हुए, झुककर उसके चरण छुये। प्रणाम करने का यह पर्व मानो खत्म होने को ही नहीं आ रहा।

सुशील ने कहा, "पता है भाभी, आपके आने की खबर देबू ने हमें बतायी ही नहीं। शायद डर गया कि कहीं हम मिठाई न मांगने लगें।"

अब देवव्रत ने पूछा, "सच्ची, तुम लोगों को पता कैसे चला, सुशील?"

सुशील, सुव्रत, केदार—सभी ने कहा, "हमसे यह खबर आप कब तक छुपा सकते थे, देबू?"

"सच्ची, बताओ तो सही, तुम लोगो को मिनती की खबर कैसे लग गयी?"

सुशील ने बताया, "एक दिन मैं 'भक्तियोग' किताब वापस करने आया था, उस वक्त आप घर पर नहीं थे।"

"फिर?"

"फिर क्या? हम लोग भाभी को देखते ही पहचान गये, लेकिन आपसे कुछ नहीं बताया। सोचा, आपके जन्मदिन पर हम 'सरप्राइज' देंगे।"

"अच्छा, तो यह बात है!" देबू हंसने लगा।

उसकी हंसी में साथ देते हुए ठहाकों की धूम मच गयी।

लोगों ने अनुरोध किया, "आप दोनो जरा एक साथ'''पास-पास खड़े हो। एक तस्वीर ले लें।"

"तस्वीर?" देवव्रत का चेहरा अचानक गम्भीर हो आया। उसने सवाल किया, "तस्वीर क्यों लेना चाहते हो तुम लोग?"

"ऐसा मौका बार-बार नही आता। भाई और भाभी को एक साथ पाने का मौका बड़ी मुश्किल से मिलता है।"

"तुम लोगों को कैसे मालूम कि ये तुम्हारी भाभी हैं?" देवव्रत ने फिर पूछा।

"हमें पता चल गया था।"

देवव्रत ने इस बात का विरोध नही किया, सिर्फ इतना कहा, "चलो, ले लो तस्वीर!"

अगल-बगल खड़े दम्पति!

अचानक गोष्ठ बोल उठा, "तो झरना को क्यों छोड़ दिया? दादा बाबू और बहूरानी के साथ बिटिया बिचारी को भी ले लें न।"

झरना को उन दोनो के बीच खड़ा कर दिया।

"ओफ्फोह! बहुत बड़ी भूल हो गयी।" सुशील ने कहा।

"क्या?"

"भाभी अगर आपकी बायीं तरफ खड़ी हो जाएं, तो सही होता।"

"हां! हां! सुव्रत ठीक कहता है, भाभी! आप देबू की बायीं तरफ खड़ी हो जायें।" सुशील ने कहा।

पहले भी जाने कितनी-कितनी तस्वीरें उतारी गयी थी मिनती और शाहबुद्दीन की! पाकिस्तान के अखबारों में वो तस्वीरें छपती रहती थी। लेकिन अब सब गुजरा हुआ अतीत बन चुका है। अब उन बातो को याद करके कोई फायदा नही।

लेकिन चूंकि वह अतीत था, इसलिए क्या हमेशा के लिए झूठ पड़ गया? अगर वह सचमुच झूठ होता, तो उसकी जिन्दगी में झरना भी झूठ साबित होती। लेकिन अगर यह सब वाकई झूठ होता, तो उसे यूं बेशर्म बनकर आज इस घर में पनाह

नहीं लेनी होती।

तस्वीर पर्व समाप्त हुआ।

गोष्ठ ने कहा, "तस्वीर की एक कापी हमें भी दीजियेगा, लाट'साहब।"

देवव्रत एकदम से भड़क गया। उसने झुंझलाकर कहा, "तस्वीर लेकर तू क्या करेगा? घर में किताव-पत्तर रखने की तो जगह नहीं है, उस पर से तस्वीर! हुंह, कोई जरूरत नहीं है। सुव्रत, तस्वीर मत देना।"

"खैर, वाद की वातें वाद में!"

दल-वल विदा लेने को तैयार!

अचानक गोष्ठ ने एलान किया, "अभी आप लोग नहीं जा सकते, जरा वैठिये।"

देवव्रत अचकचा गया। उसने पूछा, "क्यों? अव तुझे क्या काम आ पड़ा?"

गोष्ठ कोई जवाव न देकर कमरे से वाहर आ गया। थोड़ी देर वाद लौटा, तो उसे देखकर सव अवाक् रह गये। मिट्टी की तश्तरी में रसगुल्ला, नमकीन, समोसा। उसने तश्तरी की ट्रे जमीन पर रख दी। जितने अतिथि थे, नाश्ते की उतनी ही सारी तश्तरियां!

सवके आगे नाश्ते की प्लेट रखकर गोष्ठ ने विनम्रता से कहा, "अव आप लोग दया करके, जरा मुंह जुठारें।"

देवव्रत उसकी करतूत देखकर दंग रह गया। उसे वहुत गुस्सा भी आया।

उसने डपटकर पूछा, "यह सव क्या कर रहा है, रे, गोष्ठ! किसने कहा तुझसे यह सव करने को?"

गोष्ठ ने कोई जवाव नहीं दिया। उसने उन लोगों से मुखातिव होकर कहा, "आप लोग नाश्ता कीजिये।"

"तू अचानक यह सव क्यों करने गया?" देवव्रत का गुस्सा अभी उतरा नहीं था।

"आज आपका जन्मदिन है। यह सव आज नहीं करूंगा तो कव करूंगा?

"जन्मदिन क्या पहली वार आया है? पहले कभी नहीं आया? पहले भी तो ये लोग कई वार जन्मदिन पर आये हैं। तव तो तूने यह सव कांड नहीं किया?"

सुव्रत ने नाश्ते की तश्तरी उठाकर खाना शुरू करते हुए कहा, "आप उसे इतना डांटिये नहीं, देवू! आज तो सवके लिए खुशी का दिन है। उसे खुशी हुई, इसलिए उसने यह सव किया।"

"उसे पता नहीं कि इस कलकत्ते में कितने सारे लोगों को खाना नसीव नहीं होता। कितने सारे लोगों के पास रहने को कोठरी तक नहीं। कितने अभागों को दो जून का खाना नसीव नहीं होता।" देवव्रत भाषण के मूड में आ गया था।

"चलिये, छोड़िये, अब उसे डांटना बंद कीजिये।"

लेकिन देवव्रत का गुस्सा अभी भी शांत नहीं हुआ था। उसने तिलमिलाकर कहा, "किसके रुपयों से खिला रहा है वह तुम लोगों को? मेरे रुपयों से! अगर लोगों को यह पता चले कि अपने जन्मदिन पर मैंने अपनी जेब से इतने सारे रुपये बर्बाद कर डाले। तो मैं उनको क्या जवाब दूंगा?"

"वो रुपये आपके हैं? सब मेरे हैं।" गोष्ठ भी भड़क गया।

"तेरे रुपये? तेरे रुपये का क्या मतलब?"

"आप तो तनख्वाह के सारे रुपये मुझे ही सौंप देते हैं न? वो रुपये मेरे नहीं हुए?"

"वो रुपये मैं तुझे घर-खर्च के लिए देता हूं।"

"घर-खर्च के रुपयों में से ही बचा-बचाकर मैंने ये रुपये न जमा किये होते, तो आज लोगों को मिठाई कहां से खिलाता?"

"तूने घर-खर्च से रुपये बचाये, इसीलिए ये रुपये तेरे हो गये? आज से तेरे हाथ में तनख्वाह के रुपये देने बंद।"

"न देना हो, तो मत दें। मेरा क्या? हर दिन आप ही को भूखा रहना पड़ेगा।"

"क्यों मुझे खाना नहीं मिलेगा? भला क्यों?"

"आप क्या सारे दिन घर पर रहते हैं, कि जब, जितने रुपये दरकार हों, झट से आपसे मांग लूंगा? मुझसे यह सब नहीं होगा।"

"अगर नहीं कर सकता, तो मुझे भी तेरी जरूरत नहीं। मैं कोई और आदमी देख लूंगा।"

गोष्ठ का चेहरा गंभीर हो आया। उसने आहत आवाज में कहा, "ठीक है, तो मैं चला जाता हूं।"

इतना कहकर वह रुका नहीं। जिस हालत में खड़ा था, उसी तरह सड़क पर निकल जाने को आगे बढ़ा।

लेकिन देवव्रत ने भी आगे बढ़कर खप् से उसका हाथ पकड़ लिया और पूछा, "जा कहां रहा है तू?"

"आपने कहा न, आपको मेरी जरूरत नहीं।"

"जाना है, तो चला जा। लेकिन पहले मेरे रुपये-पैसों का हिसाब दे जा।"

"हिसाब? आप मुझसे रुपयों का हिसाब मांग रहे हैं?"

"हिसाब नहीं मांगूंगा? जब रुपये मेरे हैं, तो रुपये मांगने का अधिकार भी मुझे है।"

सुशील ने बीच-बचाव करना चाहा, "देवू, इसे छोड़ दें। छोड़ दें इसे।"

"क्यों छोड़ दूं? वह मेरे रुपयों का हिसाब भी न दे और मैं उसे यूं ही छोड़

दूं ?"

गोष्ठ ने मेहमानों को सम्बोधित करके कहा, "देख रहे हैं न आप लोग ? मुझे खदेड़ भी रहे हैं और जाने भी नहीं दे रहे हैं। अजब मुसीबत है।"

"तू हिसाब दे दे और चला जा।"

अब गोष्ठ भी अड़ गया। उसने दृढ़ आवाज में चुनौती दी, "नहीं, हिसाब मैं नहीं दूंगा। आपसे जो करते बने, कर लीजिये।"

"पता है, रुपये गबन करने के अपराध में मैं तुझे पुलिस में दे सकता हूं ?"

"तो दे दीजिए न पुलिस में। तब तो मैं सच ही बच जाऊं। जेल में कम-से-काम किसी की जिम्मेदारी तो नहीं लेनी होगी।"

सुशील ने उसे शांत करते हुए समझाया, "अब तुम भी बात मत बढ़ाओ, गोष्ठ। चलो, शांत हो। देबू ने जो कहा, चुपचाप सुन लिया करो।"

गोष्ठ तब भी अपने फैसले पर अटल रहा। उसने अड़ियल लहजे में कहा, "नहीं, मैं ही चला जाऊंगा। आज रात ही को चला जाऊंगा।"

"चला जाऊंगा ? मतलब ?" देवव्रत ने चिल्लाकर पूछा।

"चला जाऊंगा, मतलब चला जाऊंगा।"

"नहीं, पहले तू मेरा काम-काज तो निपटा दे, फिर जाने दूंगा।"

"मेरा रसोई-पानी सब निपट चुका, सिर्फ थाली में परोसकर खाना बाकी है। आप लोग अपने लिए इतना भी नहीं कर सकेंगे ?"

"नहीं, थाली में तुझे ही खाना परोस देना होगा। तब मैं खाऊंगा। उससे पहले तुझे मेरी पूजा का भी इन्तजाम करना होगा। यज्ञ पूरा करने से पहले तो खा नहीं सकता। यह सब कौन करेगा ? मैं करूंगा ? मैंने किया है कभी यह सब काम अपने हाथों से जो आज करूंगा ?"

लोगों को घर जाने की देर हो रही थी। इसलिए सबने उसे मिलकर समझाया, "तुम अब और कुछ मत बोलो, गोष्ठ ! बस, चुप लगाये रहो। देबू की किसी बात पर नाराज मत हो।"

"आप लोगों के देबू तो बस, यह कहकर खलास हो गये कि मैंने आप सबके नाश्ते में इतना सारा रुपया बरबाद कर डाला। लेकिन आप ही लोग न्याय करें, इतने दिन बाद घर में बहूरानी आयी है। अब इस बात पर मैं खुश हुआ तो क्या अन्याय हो गया। देबू'दा के जन्मदिन पर आप लोग पहले भी आये हैं, तब मैंने कभी आप लोगों को नाश्ता कराया ? अगर आज बहूरानी और बिटिया घर पर नहीं होतीं, तो क्या आज भी मैं आप लोगों को खिलाता ? नहीं ! नहीं खिलाता, अगर यह अन्याय है, तो यही सही ! मैं हारा, ये जीते। अब से मैं पाई-पाई का हिसाब रखूंगा। आप लोगों के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अब से मैं इन्हें पैसे-पैसे का हिसाब दूंगा।"

देवव्रत ने उसका हाथ छोड़ दिया और मेहमानों की ओर मुखातिब होकर कहा, "देखा न, तुम लोगों ने ? यह गोष्ठ ऐसा ही घनचक्कर है। यूं यह बिलकुल टीक-ठाक है। बस, कहीं गुस्से का भूत सवार हो गया, तो दिमाग बिलकुल ही खराब हो जाता है।"

इसी तरह देवव्रत और मिनती की गृहस्थी चलती रही। लेकिन असल में क्या यह उसकी गृहस्थी थी ? नहीं, इस गृहस्थी का असली मालिक न देवव्रत था, न मिनती। असली मालिक था—गोष्ठ ! वही तो इस गृहस्थी का असली मालिक था।

उस दिन गोष्ठ यथारीति किसी काम में व्यस्त था।

मिनती ने करीब आकर कहा, "गोष्ठ'दा, मेरा एक काम कर दोगे ?"

"बताइये, बहूजी, क्या काम है ?"

"पता नहीं, तुम सुनोगे तो क्या कहोगे ? मुझे बताने में बहुत डर भी लग रहा है।"

"आप बताइये न, बहूरानी, डर काहे का ?"

"अगर तुम्हारे दादा बाबू कुछ कहें, तो ?"

"भला दादा बाबू क्या कहेंगे ? आप तो देख ही रही हैं। दादा बाबू जैसे इस घर के कुछ भी नहीं होते, वे तो, बस, अपने छात्र और स्कूल में ही मगन रहते हैं। अपनी तनख्वाह मेरे हाथ में फेंककर बस, खल्लास। बैंगन, आलू, परवल, सरसों के तेल का दाम कितना है, कभी इसमें सिर खपाया या खपायेंगे ? बस, उनके छात्र इन्सान बन जायें, वे तो इसी में खुश ! और किसी तरफ उनकी नजर ही नहीं···"

"ऐसे क्यों हुए तुम्हारे दादा बाबू, बोलो तो ?"

"इसका कारण मुझे क्या मालूम, बहूजी ?"

"तब भी तुम्हें कोई अन्दाजा तो होगा ? बताओ न, क्यों हुए ऐसे ?"

"मैं कैसे अन्दाजा लगा सकता हूं ? लेकिन, मैंने देखा है, अकेले में वे अक्सर रोते रहते थे।"

"रोते थे ? क्यों रोते थे ? किसके लिए रोते थे ? बापू-मां नहीं रहे, इसलिए ?"

"मुझे भी जब इसकी वजह समझ में नहीं आयी, तो एक दिन उन्हीं से पूछ लिया—'आपकी तबीयत खराब है, दादा बाबू ?'

"दादा बाबू मुझे देखते ही आंसू पोंछ लेते थे और मुझे डांटने लगते—'जा-जा, चला जा यहां से। जाकर अपना काम कर' ?"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद, एक दिन मैं मुहल्ले के डॉक्टर साहब को बुला लाया।

डॉक्टर साहब को बताया कि हमारे दादा बाबू अकेले में अक्सर रोते रहते हैं। आप उन्हें देखकर कोई दवाई लिख दें। जरूर वे बीमार हैं वरना, अकेले में यूं रोते क्यों हैं? सो, डॉक्टर बाबू भी चले आये।

"उन्हें देखकर दादा बाबू तो अवाक्!

"उन्होंने पूछा—क्या हुआ डॉक्टर साहब? इस घर में कौन बीमार है?

"दादा बाबू का सवाल सुनकर डॉक्टर तो और भी अवाक्!

"उन्होंने कहा—और कौन? गोष्ठ बता रहा था कि आप ही बीमार हैं! बता रहा था, अकेले-अकेले में दर्द से रो पड़ते हैं?

—मैं दर्द से रो पड़ता हूं? मैं? यह गप्प गोष्ठ ने आपको सुनायी?

"दादा बाबू ने मुझे बुलाकर पूछा—क्यों रे, तूने डॉक्टर साहब से यह कहा कि मुझे इतना दर्द होता है कि मैं अकेले में रोता रहता हूं?"

—हां-हां! मैंने अपनी आंखों से देखा है, आप दर्द से रोते हैं। जब मुझे देखते हैं, तो रोना बन्द कर देते हैं, इस डर से कि कहीं मैं डॉक्टर न बुला लाऊं।

—चल, भाग, कमबख्त! यहां से दफा हो! मुझे क्या पागल समझ रखा है? बिना बात ही मैं अकेले में रोता-बिसूरता रहता हूं? चल, फूट यहां से! और हां, डॉक्टर बाबू की फीस के चार रुपए दे दे।

"डॉक्टर साहब ने अचकचाकर कहा—ये चक्कर क्या है, देवव्रत बाबू, समझायेंगे मुझे? गोष्ठ ने जरूर आपको रोते देखा है, वरना वह मुझे झूठमूठ क्यों बुलाने जायेगा? सच क्या है, बताइये तो?

—सच बात यही है, डॉक्टर सहाब, मैं रोता नहीं हूं। मैं झूठमूठ क्या रोऊंगा भला? जो सचमुच रोते हैं, वे कोई और होते हैं! उन लोगों को न गोष्ठ देख पाता है, न कोई और! उन्हें सिर्फ मैं देख सकता हूं, एकमात्र मैं ही सुन पाता हूं उनकी रुलाई।

"डॉक्टर साहब ने अबूझ की तरह पूछा—कौन रोता है?

—ये गोष्ठ तो लिखना-पढ़ना जानता नहीं। पहले दर्जे का वज्र मूरख है। लेकिन, डॉक्टर साहब, आप तो पढ़े-लिखे हैं। अगर मैं आपको बताऊं तो शायद आप समझ सकें। कौन रोता है, पता है? भगवान! हां, भगवान रोते हैं।

—भगवान रोते हैं, मतलब?

—इन्सानों के जो भगवान हैं, वे ही रोते हैं?

—लेकिन क्यों? इन्सानों के भगवान रोते क्यों हैं?

—अरे, वाह! रोयेंगे नहीं? चार रुपये मन वाले चावल का दाम बढ़कर डेढ़ सौ रुपये हो गया है। आदमी खाये क्या? सोने का दाम बढ़ जाये, तो नुकसान नहीं होता, क्योंकि आदमी सोने का भात या रोटी नहीं खाता। लेकिन आलू, तेल, कोयला, काठ—ये सब चीजें तो गरीब-से-गरीब आदमी को भी खाने के

लिए चाहिए। लेकिन इनकी कीमत हज़ार गुना बढ़ क्यों गयी? पहले ज़माने में तो अंग्रेज थे। वे लोग यहां का सारा सामान लूट-पाट करके अपने देश ले जाते? लेकिन अब? अब कौन हैं वे लोग, जो यूं लूट-लूटकर खा रहे हैं? कौन हैं वे लोग, डॉक्टर बाबू?

डॉक्टर सहाब भला क्या कहते? ये सब बातें ब्रिटिश मेडिकल फार्माकोपिया में नहीं लिखी।

"दादा बाबू अपनी रौ में बोलते गये—पता है, डाक्टर बाबू! जब मैं गली-सड़कों से गुजरता हूं और मिट्टी के तेल की दुकान के सामने लोगों की लम्बी कतार देखता हूं तो उस वक्त मुझे भगवान की रुलाई भी सुनाई देती है। जब मैं सिनेमा-हॉल के सामने से गुजरता हूं, वहां भी लोगों की लम्बी लाइन देखकर भगवान की रुलाई सुनाई देती है मुझे। आपको सुनाई देती है वह रुलाई?

—ना, तो!—डॉक्टर साहब ने कहा।

"दादा बाबू उनका जवाब सुनकर जरा भी अचम्भित नहीं हुए।

"दादा बाबू ने फिर कहना शुरू किया—सिर्फ आप ही अकेले बहरे नहीं, जो भगवान की सिसकियां नहीं सुन पाते। हिन्दुस्तान की बड़ी-बड़ी हस्तियां, नेता, सुधारक, किसी के कानों तक नहीं पहुंचती वह रुलाई। ऐसे में मैं क्या करूं, बताइये? अच्छा, यह रुलाई आखिर थमेगी कैसे, डॉक्टर बाबू?

डॉक्टर चुपचाप मरीज का बयान सुनते रहे। उनकी किसी बात का कोई जवाब नहीं दे रहे थे, क्योंकि इन सवालों का जवाब उनकी ब्रिटि' मेडिकल फार्माकोपिया में नहीं लिखा।

दादा बाबू फिर शुरू हो गये—मैं क्या करूं, आप ही बताइये, डॉक्टर साब!

"डॉक्टर साहब ठहरे काम-काजी जीव! ऐसे पागल-छागल रोगी की संगति में ज्यादा देर बैठने से उनका काम नहीं चल सकता। अभी उन्हें और भी कई मरीजों के घर जाना था। मुहल्ले में भी मरीजों की भीड़ उनके इन्तजार में बैठी थी।

"डॉक्टर साहब जैसे ही बाहर जाने को उठे, मैं दुबारा कमरे में आया और उन्हें फीस थमाकर चला गया। डॉक्टर साहब भी कमरे से बाहर निकल गये।

"उनको जाते देखकर दादा बाबू ने पीछे से आवाज दी—डॉक्टर साहब, आप जा रहे हैं?

—जी, हां!

—कोई दवा वगैरह नहीं दी?

—कौन-सी दवा दूं आपको, बताइये?

—फिर मेरा क्या होगा?

—आपको कुछ भी नहीं हुआ। बेकार की चिन्ता-फिक्र न करें।

... चाहते हैं कि भगवान रो...

—नहीं-नहीं, ये सब बकवास है। आप जरा डटकर खाना-पीना करें, आराम से सोयें। आपको कुछ नहीं हुआ।

—लेकिन···

"डॉक्टर साहब के पास फालतू बातें सुनने की फुर्सत नहीं थी। उनके पास रोगी को निरोग करने की फुर्सत नहीं, इलाज की फुर्सत नहीं, रुपये गिनने तक की फुर्सत नहीं। डॉक्टर साहब की नजर में वक्त ही रुपइय्या था। इसीलिए वे चाहते थे, काश! दिन-भर में चौबीस घंटे के बजाय अड़तालीस घंटे होते···या फिर बहत्तर घंटे होते।"

जैसे-जैसे दिन गुजर रहे हैं, वैसे-वैसे दुनिया का नक्शा भी बदलता जा रहा है, वैसे-वैसे नक्शे का रंग भी बदलता जा रहा है। आज जिस देश का रंग लाल है, कल वह नीला हो जाता है। जैसे-जैसे देशों का रंग बदल रहा है, वैसे-वैसे इंसान भी बदलते जा रहे हैं। देश के लोगों का रंग भी बदलता जा रहा है।

लेकिन देवब्रत सरकार नहीं बदला!

उसका खाना-पीना, तौर-तरीका, चाल-चलन, आदर्श—इनमें कहीं एक बार भी रद्दोबदल नहीं हुआ।

गोष्ठ दादा बाबू को खाना परोसकर पास ही खड़ा था।

उसने पूछा, "थोड़ा-सा भात और दूं, दादा बाबू?"

देवब्रत ने सूखा-सा जवाब दिया, "ना···"

"सब्जी दूं?"

"ना···"

गोष्ठ इसरार करने लगा, "ऐसे कम-कम खायेंगे, तो सेहत खराब होगी ही। इत्ते-से खाने पर भला देह कैसे टिकेगी?"

"देह टिकाए रखकर क्या होगा, रे, बुद्धू? पता है, इसी कलकत्ते में डेढ़ लाख लोग फुटपाथों पर जिन्दगी जीते हैं और मर जाते हैं। एक बार उनके बारे में भी सोच···"

"इसके लिए आप उपासे रहेंगे? आप भूखे रहेंगे, तो वे बच जायेंगे?"

"धत, पागल! तू निरा गधा है। तेरी कमअक्ली की वजह से ही तेरा कुछ नहीं बना। कितनी कोशिश की तू कुछ पढ़-लिख जाए। तेरे लिए किताबें खरीदीं, ताकि जिन्दगी भर तू इस घर में चाकर ही न बना रहे। लेकिन तूने कुछ नहीं सीखा। मेरे यहां सिर्फ भात पकाने में जिन्दगी गुजार दी।"

"अगर मैं पढ़-लिखकर नौकरी करने लगता, तो आपको भात रांधकर कौन खिलाता?"

"अरे, मेरे खाने की चिन्ता में तूने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा?"

"क्यों ? आपकी चिन्ता न करूं ?"

"कलकत्ते में जिनके घर में गोष्ठ नही है, वे सब क्या उपवास करते हैं ? या होटल में जाते हैं ?"

"उनकी बात अलग है। आप तो उन लोगों जैसे नही हैं।"

"मैं उन लोगों जैसा नही हूं, तो कैसा हू ?"

"वह मैं नही बताऊंगा, वर्ना आप गुस्सा हो जाएंगे।"

"क्यों ? अच्छा, चल मैं नही होऊंगा नाराज ! चल, तू बता मैं सुनू।"

"उनकी देखभाल के लिए लोग हैं या बीवी-बच्चे हैं ! लेकिन आपका कौन है ?"

"क्यो ? मेरी बीवी नही है ? मेरी बेटी नही है ? तेरी बहूजी और झरना है न ! झरना अब स्कूल जाने लगी है, पढ़-लिख रही है। वे लोग करेंगे मेरी देखभाल।"

"छोड़िये, मैं आपसे बक-बक नहीं कर सकता। मुझे और भी काम हैं। मैं चलूं..."

गोष्ठ ने बाहर जाने को कदम बढ़ाया। लेकिन दादा बाबू उसके पीछे ही पड़ गए।

उन्होंने कहा, "कहां भाग रहा है ? बात सुन जा—"

गोष्ठ जाते-जाते ठिठक गया, "कहिये, क्या कहना है ?"

"तूने जो कहा, मेरे बीवी-बच्चे नही, तो वे लोग कौन हैं ? मिनती और झरना ? उन लोगों को मैं खाना-कपड़ा नही देता ? लिखाई-पढ़ाई नही सिखा रहा ?"

गोष्ठ की जुबान पर जो जवाब आकर ठहर गया, उसे जाहिर करने में उसे डर लगा। इस ख्याल से वह कांप उठा कि दादा बाबू उसका जवाब सुनकर कही आगबबूला न हो जाएं।

"क्या हुआ ? जवाब नही दे रहा ? चुप क्यो है ? मेरी बात का जवाब दे।"

गोष्ठ तब भी चुप रहा।

"अरे, भई, जवाब क्यो नहीं दे रहा ? अब जवाब दे—"

गोष्ठ बिचारा डरते-डरते बोला, "अगर आपकी अपनी बीवी और बेटी होतीं, तो आप रोते क्यों ?"

"मैं रोता हूं ?"

"आप रोते नही ? आप सोचते हैं, मैं कुछ समझता नहीं ? मुझे कुछ दिखाई नही देता ?"

गोष्ठ की बातों ने देवव्रत को कुछ देर के लिए गहरी सोच मे डाल दिया।

उसने गम्भीर होकर कहा, "ओ, रे, गोष्ठ, इस देश में एक भी ऐसा बन्दा

—नहीं-नहीं, ये सब बकवास है। आप जरा डटकर खाना-पीना करें, आराम से सोयें। आपको कुछ नहीं हुआ।

—लेकिन···

"डॉक्टर साहब के पास फालतू बातें सुनने की फुर्सत नहीं थी। उनके पास रोगी को निरोग करने की फुर्सत नहीं, इलाज की फुर्सत नहीं, रुपये गिनने तक की फुर्सत नहीं। डॉक्टर साहब की नजर में वक्त ही रुपइय्या था। इसीलिए वे चाहते थे, काश! दिन-भर में चौबीस घंटे के बजाय अड़तालीस घंटे होते···या फिर बहत्तर घंटे होते।"

जैसे-जैसे दिन गुजर रहे हैं, वैसे-वैसे दुनिया का नक्शा भी बदलता जा रहा है, वैसे-वैसे नक्शे का रंग भी बदलता जा रहा है। आज जिस देश का रंग लाल है, कल वह नीला हो जाता है। जैसे-जैसे देशों का रंग बदल रहा है, वैसे-वैसे इंसान भी बदलते जा रहे हैं। देश के लोगों का रंग भी बदलता जा रहा है।

लेकिन देवव्रत सरकार नहीं बदला!

उसका खाना-पीना, तौर-तरीका, चाल-चलन, आदर्श—इनमें कहीं एक बार भी रद्दोबदल नहीं हुआ।

गोष्ठ दादा बाबू को खाना परोसकर पास ही खड़ा था।

उसने पूछा, "थोड़ा-सा भात और दूं, दादा बाबू?"

देवव्रत ने सूखा-सा जवाब दिया, "ना···"

"सब्जी दूं?"

"ना···"

गोष्ठ इकरार करने लगा, "ऐसे कम-कम खायेंगे, तो सेहत खराब होगी ही। इत्ते-से खाने पर भला देह कैसे टिकेगी?"

"देह टिकाए रखकर क्या होगा, रे, बुद्धू? पता है, इसी कलकत्ते में डेढ़ लाख लोग फुटपाथों पर जिन्दगी जीते हैं और मर जाते हैं। एक बार उनके बारे में भी सोच···"

"इसके लिए आप उपासे रहेंगे? आप भूखे रहेंगे, तो वे बच जायेंगे?"

"धत, पागल! तू निरा गधा है। तेरी कमअक्ली की वजह से ही तेरा कुछ नहीं बना। कितनी कोशिश की तू कुछ पढ़-लिख जाए। तेरे लिए किताबें खरीदीं, ताकि जिन्दगी भर तू इस घर में चाकर ही न बना रहे। लेकिन तूने कुछ नहीं सीखा। मेरे यहां सिर्फ भात पकाने में जिन्दगी गुजार दी।"

"अगर मैं पढ़-लिखकर नौकरी करने लगता, तो आपको भात रांधकर कौन खिलाता?"

"अरे, मेरे खाने की चिन्ता में तूने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा?"

"क्यों ? आपकी चिन्ता न करूं ?"

"कलकत्ते में जिनके घर में गोष्ठ नहीं है, वे सब क्या उपवास करते हैं ? या होटल में जाते हैं ?"

"उनकी बात अलग है। आप तो उन लोगों जैसे नहीं हैं।"

"मैं उन लोगों जैसा नहीं हूं, तो कैसा हूं ?"

"वह मैं नहीं बताऊंगा, वर्ना आप गुस्सा हो जाएंगे।"

"क्यों ? अच्छा, चल मैं नहीं होऊंगा नाराज ! चल, तू बता मैं सुनूं।"

"उनकी देखभाल के लिए लोग हैं या बीवी-बच्चे हैं ! लेकिन आपका कौन है ?"

"क्यों ? मेरी बीवी नहीं है ? मेरी बेटी नहीं है ? तेरी बहूजी और झरना है न ! झरना अब स्कूल जाने लगी है, पढ़-लिख रही है। वे लोग करेंगे मेरी देखभाल।"

"छोड़िये, मैं आपसे बक-बक नहीं कर सकता। मुझे और भी काम हैं। मैं चलूं···"

गोष्ठ ने बाहर जाने को कदम बढ़ाया। लेकिन दादा बाबू उसके पीछे ही पड़ गए।

उन्होंने कहा, "कहां भाग रहा है ? बात सुन जा—"

गोष्ठ जाते-जाते ठिठक गया, "कहिये, क्या कहना है ?"

"तूने जो कहा, मेरे बीवी-बच्चे नहीं, तो वे लोग कौन हैं ? मिनती और झरना ? उन लोगों को मैं खाना-कपड़ा नहीं देता ? लिखाई-पढ़ाई नहीं सिखा रहा ?"

गोष्ठ की जुबान पर जो जवाब आकर ठहर गया, उसे जाहिर करने में उसे डर लगा। इस ख्याल से वह कांप उठा कि दादा बाबू उसका जवाब सुनकर कहीं आगबबूला न हो जाएं।

"क्या हुआ ? जवाब नहीं दे रहा ? चुप क्यों है ? मेरी बात का जवाब दे।"

गोष्ठ तब भी चुप रहा।

"अरे, भई, जवाब क्यों नहीं दे रहा ? अब जवाब दे—"

गोष्ठ विचारा डरते-डरते बोला, "अगर आपकी [illegible] हैं, तो आप रोते क्यों ?"

"मैं रोता हूं ?"

"आप रोते नहीं ? आप सोचते हैं, मैं कुछ [illegible] नहीं देता ?"

गोष्ठ की बातों ने देवव्रत को कुछ देर के लिए [illegible]

उसने गम्भीर होकर कहा, "ओ, रे, गोष्ठ, इस देर [illegible]

नहीं, जो रोता हो। मैं क्या अपने शौक से रोता हूं ? मेरे भगवान भी रोते है, रे।"

गोष्ठ चुप रहा।

देवव्रत ने दुवारा कहा, "लेकिन तुझे ये सब बताना बेकार है, रे, गोष्ठ ! बिल्कुल बेकार ! तेरा कोई दोष नहीं। तुझे मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया, तू तो बिल्कुल भी नहीं समझेगा। लेकिन हमारे देश के नेतागण ! विद्वान् लोग ! इंसानों का भगवान किस कदर रो रहा है; कितने दर्द से रो रहा है, वे लोग भी कोई नहीं सुन पा रहे ?"

"लेकिन, भगवान रोता क्यों है ?"

"रोये नहीं ? इतने करोड़ों-करोड़ लोगों का सर्वनाश हो गया। इतनी करोड़ों-करोड़ औरतें विधवा हो गयीं, करोड़ों-करोड़ लोग उजड़ गए—इन तमाम तकलीफों के लिए आखिर कौन जिम्मेदार है, तू ही बता ?"

गोष्ठ ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। दादा बाबू का चेहरा वह पहचानता है।

देवव्रत का खाना खत्म हो चुका था। उस वक्त आस-पास कोई नहीं था। रोज का खाना-पीना वह दुमंजिले के उस बित्ते भर की कोठरी में ही निपटा लेता था। पहले मंजिले से गोष्ठ ही उसकी थाली लगाकर ऊपर उसके कमरे में ले आता था। जितनी देर वह खा रहा होता, गोष्ठ उसके सामने हाथ बांधे खड़ा रहता और उसके खाने का ख्याल रखता।

उस दिन भी यही हुआ।

अचानक प्रसंग से प्रसंग निकला और बातचीत किसी और दिशा की ओर मुड़ गई।

देवव्रत ने उसे कोंचते हुए कहा, "क्यों, रे, मेरी बात का जवाब क्यों नहीं दे रहा ? जवाब दे ! बोल न, लोगों का जो इतना सर्वनाश हो गया, उसके लिए कौन जिम्मेदार है ?"

गोष्ठ हमेशा की तरह चुप रहा।

लेकिन देवव्रत ने उसे रिहाई नहीं दी। उसने खुद ही कहा, "तू जवाब दे भी नहीं सकता, मुझे मालूम है। लेकिन मुझसे तो सभी जवाब मांगते हैं, रे !"

"कौन जवाब मांगता है ?"

"कौन जवाब नहीं मांग रहा, तू यह पूछ ! अपने 'विनय'दा ही जवाब मांगते हैं।"

"कौन विनय'दा ?"

"तू विनय'दा को नहीं पहचानता ? वो देख, उस तस्वीर की ओर गौर से देख। वो विनय'दा हैं। मुझसे रोज जवाब मांगते हैं। विनय'दा, दिनेश'दा, बादल'दा—सब मुझसे जवाबदेही करते हैं—अगर यही सब होना था, तो हमने

फांसी का फंदा क्यों पहना ?"

थोड़ा दम लेकर देवव्रत दुबारा शुरू हो गया, "सिर्फ वही नहीं, खुदीराम, प्रफुल्ल चाकी से लेकर, चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल—सबके सब मुझसे दिन-रात जवाब तलब करते हैं। अगर तुम्हें गद्दी से ही चिपकना था, सिर्फ अपना ही स्वार्थ देखना था, तो हमने अपने प्राण क्यों दिए ? क्या इसीलिए कि तुम लोग प्रधान-मंत्री, उपमंत्री, मुख्यमंत्री बनकर ऐश से रहो ?"

वह शायद और कुछ भी कहने जा रहा था कि नीचे पहले मंजिल से अचानक मिनती की आवाज आई, "गोष्ठ'दा ! ओ गोष्ठ'दा !"

गोष्ठ ने ऊपर से ही जवाब दिया, "आया, बहूरानी !' उसके बाद देवव्रत की ओर देखकर कहा, "बहूरानी, बुला रही हैं। झरना को स्कूल छोड़ने जा रही हैं। मैं जरा दरवाजा बन्द कर आऊं। मैं बस, गया और आया। आप उठ मत जाइयेगा।"

देवव्रत सरकार का खाना अभी खत्म नहीं हुआ था। मिनती झरना को स्कूल पहुंचाकर घर लौट आएगी। शाम को उसे स्कूल से लेने भी जाएगी। यहां यह कैसा नियम है ? किसी जमाने में देवव्रत सरकार भी दौलतपुर के स्कूल में पढ़ने जाया करता था। उन दिनों तो कोई उसे स्कूल पहुंचाने नहीं जाता था।

सिर्फ देवव्रत सरकार ही नहीं, गांव के सभी रईसों के बच्चे स्कूल अकेले ही आते-जाते थे।

सिर्फ लड़के ही नहीं, लड़कियां भी अकेले-अकेले स्कूल जातीं। उनको लेकर किसी के भी मन में जोखिम की आशंका नहीं होती थी।

खैर, ये सब तो दौलतपुर की बातें हैं। उन दिनों वह कलकत्ता अपने काका के घर भी तो आया करता था। कलकत्ते में भी उसने देखा है, लड़के-लड़कियां अकेले-अकेले ही स्कूल जाते थे। उनकी पहरेदारी के लिए कोई साथ नहीं होता था।

लेकिन अब ऐसा क्यों नहीं होता ? आजकल लड़के-लड़कियां अकेले-अकेले स्कूल जाने से डरते क्यों हैं ? किससे डर लगता है ? अब तो अंग्रेज भी यह देश छोड़कर चले गए। देश के लोगों के सबसे बड़े शत्रु तो वही थे। अब कौन है शत्रु ? यानी देश के लोग ही शत्रु हैं ? मगर ऐसा क्यों होने लगा ? आजाद देश के लोग ही क्या देश के लोगों के शत्रु हैं।

इस बीच गोष्ठ लौट आया।

उसने कहा, "दरवाजे पर सिटकनी लगा आया हूं। और क्या चाहिए, बताइए ?"

"और कुछ नहीं चाहिए, रे ? तेरी जोर-जबर्दस्ती से मैं ज्यादा ही खा गया। पेट बिल्कुल गले तक भर गया है।"

देवव्रत उठ खड़ा हुआ।

गोष्ठ जूठे, बर्तन समेटकर ले जाते हुए बोला, "दिनोंदिन आप खाना कम क्यों करते जा रहे हैं, मुझे समझ नहीं आ रहा। यह तो बिल्कुल चिड़िया का खाना है। इतना-सा खाकर आपकी सेहत कैसे स्वस्थ रहेगी?"

देवव्रत ने हाथ धोते-धोते कहा, "तू मुझे ज्यादा-ज्यादा ठूंसाकर मार डालना चाहता है। तू न...मुझे जीने नहीं देगा।"

थोड़ा ठहरकर उसने दुबारा कहा, "तू तो अखबार भी नहीं पढ़ता, देश के हालचाल की भी खबर नहीं रखता। तुझे क्या मालूम है कि हमारे देश में सौ में साठ लोग आधा पेट खाकर जिन्दा रहते हैं?"

"जो लोग आधा पेट खाकर जिन्दा रहते हैं, उनकी बात छोड़िये। देश के लोग भूखे हैं, इस वजह से आप क्यों आधा पेट खायेंगे? आपको क्या पड़ी है?"

"तू क्या कह रहा है? पता है, ऐसी बातें सिर्फ पागल ही करते हैं। मैं क्या देश के लोगों का अपना नहीं? सौ में से साठ लोग अगर आधा पेट खाकर गुजारा करते हैं, तो ऐसी हालत में हम लोगों का भर पेट पकवान उड़ाना क्या उचित है? मैं भी तो इसी देश का ही हूं।"

उस वक्त गोष्ठ के बहुत सारे काम बाकी पड़े थे। ऐसे पागल-छागल से बत-कही में वक्त बर्बाद करने की उसे फुर्सत नहीं थी।

गोष्ठ ने कहा, "मैं चलूं। आपका पुराना कुर्ता-पायजामा धो दिया है। उसकी जगह नया—धुला कुर्ता-धोती रख दिया है। आप पहन लीजियेगा, भूलियेगा नहीं..."

"कहां हो, दुल्हिन जी?...बहुरिया?"

मुहल्ले का हर परिवार इस आवाज से परिचित!

"क्यों, जी, आल्ला मौसी, पिछले दो दिन तुम आई क्यों नहीं?" गोष्ठ ने पूछा।

"मेरे जजमान जो दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं! इस बुढ़ापे में...किधर-किधर सम्हालूं मैं।"

गोष्ठ मुस्करा दिया।

"हमारी बहुरिया कहां है?"

"बहू जी बिटिया रानी के इस्कूल गई है।"

"इस्कूल से लौटने में आज इतनी देरी क्यों?"

"आज झरना दीदी मणि के इस्कूल में नाच-गाना है।"

"नाच-गाना? झरना नाचती भी है?"

"हां, बहूरानी ने झरना को नाच इस्कूल में भी भर्ती करा दिया है।"

"अच्छा ! अच्छा ! बहुत अच्छा किया है। अच्छा, सुनो, इतनी देर में मैं जरा चक्कर मार कर आती हूं।"

"लेकिन, ज्यादा देरी मत करना। बहूरानी अभी आ जाएगी। तब तक चाय पीयो न ! मुरमुरे और चाय ला दूं ?"

"चलो, फिर चाय ही पिला दो।"

गोष्ठ की चाय तैयार होने से पहले ही मिनती बेटी को लेकर वापस आ गई।

"चलो, अच्छा ही हुआ।" यह कहकर गोष्ठ ने चाय की केतली में दो कप पानी और डाल दिया।

अन्दर आते ही मिनती की नजर आल्ता मौसी पर पड़ी।

उसने चहककर कहा, "अरे, मौसी, तुम ? कब से बैठी हो ?"

"ज्यादा देरी नहीं हुई। हां, बहुरिया, बेटी को नाच-गाना सिखा रही हो ?"

इस बीच मिनती ने कमरे में जाकर साड़ी बदल डाली।

उसने आल्ता मौसी के सवाल का जवाब देने के बजाय, प्रसंग बदलते हुए पूछा, "आज की नई-ताजी खबर क्या है, मौसी ?"

आल्ता मौसी जब भी आती, उसके पास मुहल्ले-भर के किस्से-कहानी मौजूद होते। कब, किस मुहल्ले की बहू अचानक विधवा हो गई; किस मुहल्ले की बहू मांग में सेंधुर सजाये, अर्थी पर सवार होकर मसान-घाट पहुंच गई...

"खूब पुण्य बटोर रही हो, मौसी ? कितने लोगों का आशीर्वाद कमा रही हो। देखना, एक-न-एक दिन अब हमारे मौसा जी जरूर वापस लौट आयेंगे।"

"तुम्हारी जुबान पर फूल चन्दन, बहुरिया ! मुझे बेभाव जलाता रहा वह मरदुआ ! लेकिन मैंने सुहागिन बहू-बेटियों को आल्ता-सेंधुर पहनाना नहीं छोड़ा।"

"लेकिन, मौसी तुम सुहागिनों को आल्ता-सिन्दूर—आखिर क्यों पहनाती हो ?"

"पहनाऊंगी नहीं ? तुम्हें क्या लगता है कि तुम्हारे मौसा ने मुझे कम जलाया है ? एक दिन मैं भी तुम्हारे मौसा से गिन-गिनकर बदले वसूल करूंगी। तभी दम लूंगी।"

"कैसे लोगी बदला, वे मिलेंगे कहां ?"

"मिलेंगे क्यों नहीं ? अरे, तुम्हारे मौसा भागकर जाएंगे कहां ? भागकर जहां भी जाएंगे, वहीं से खींच लाऊंगी मैं उन्हें।"

"कैसे खींच लाओगी, मौसी ?"

"इसी तरह ! तुम जैसी अहिवाती बहू-बेटियों को आल्ता-सिन्दूर पहनाकर।"

"अच्छा, मौसी, कितने दिन हुए, मौसा तुम्हें छोड़कर गायब हो गए ?'

"अरे, मैंने क्या इसका हिसाब जोड़ रखा है, बहुरिया ? लेकिन वह मरद, जो

मुझे छोड़कर फरार हो गया, इसका बदला लिये बिना मैं नहीं छोड़ने वाली ।"

"लेकिन, बदला लोगी कैसे ?"

"मैं कैसे बदला लूंगी ? मुझ अबला के लिए और कौन-सा रास्ता है भला ? इसीलिए तो यह आल्ता-सेंधुर का रास्ता पकड़ा है ।"

मिनती को आल्ता मौसी की बतकही बहुत दिलचस्प लगती थी । उसने ऐसी औरत पहले कभी नहीं देखी । सिर्फ मिनती ही क्यों, दुनिया में शायद ही किसी का ऐसी औरत से पाला पड़ा हो ।

मिनती ने पूछा, "उनकी कोई फोटो है तुम्हारे पास ?"

"तुम्हारे मौसा की फोटो रखे मेरी बला ! अरे, वह मरदुआ क्या इन्सान था ? वह इन्सान नहीं था, बहुरिया, कहीं से भी इन्सान नहीं ।"

"अरे, भला क्यों ?"

"इन्सान होता, तो मुझे छोड़कर इतने दिनों इतनी दूर-दूर रह पाता ? मेरे तो न बेटा, न बेटी ! कोई भी नहीं । उस मरदुए ने एक बार यह भी नहीं सोचा कि आखिर मेरा गुजारा कैसे होगा ! वह इन्सान नहीं, जानवर था, जानवर !"

"तुम मौसा को जानवर कहती हो ?"

"कहूंगी नहीं ? अगर वह इंसान होता तो अपनी ब्याहता को यूं अनाथ करके भाग खड़ा होता ?"

"तुमने पुलिस को खबर नहीं की ?"

"कैसे खबर न देती ? जब देखा कि पूरे छः महीने बीत गये, वह मरद-मानस नहीं लौटा, तो किसी ने मुझे पुलुस में रपट लिखाने की सलाह दी । वही किया मैंने । जाकर लिखा दी पुलुस में रपट । नाम-धाम-हुलिया सारा कुछ ! लेकिन होता क्या ? इतने साल गुजर गये···अभी तक कोई खबर नहीं दे सके वे लोग ।"

"उसके बाद···!"

"उसके बाद से ही मैंने यह रास्ता पकड़ा । घर-घर बहू-बेटियों को आल्ता-सेंधुर पहनाना शुरू कर दिया ।"

"उसके बाद ? कोई फल मिला ?"

"पागल हुई हो, बहुरिया, वह मरदुआ क्या इतना सीधा है ? जब तक मेरी चिता नहीं जला लेगा, भला मेरा पीछा छोड़ेगा ? वो तो मेरा हाड़-मांस तक भून डालेगा, तब रिहाई देगा ।"

मिनती ने पूछा, "अच्छा, मौसी, तुम्हें छोड़कर भाग जाने की आखिर वजह क्या थी ? क्या कसूर किया था तुमने ?"

"मुझसे भला क्या कसूर होना था, बहुरिया । मैं तो चिरकाल उस मरदुए की सेवा ही करती रही । दारू पीकर, जब घर लौटता, तो मुझ पर गाली-गलौज की बरखा कर देता । लेकिन फिर भी मैंने कभी, कुछ नहीं कहा, पता है ? लेकिन

एक दिन मेरा सबर टूट गया। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने उठायी लाठी और दे-दनादन'''पूरी तबीयत से पूजा कर दी उसकी।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद और क्या? उसके बाद भाग गया वह मरदूद। उस दिन जो गया, आज तक नहीं पलटा।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद, मैंने यह पुन्न काम शुरू कर दिया। घर-घर जाकर, सुहागिन मां-बहन, बहू-बेटियों को आल्ता-सेंधुर पहनाकर, जिन्दगानी के बाकी दिन, किसी तरह गुजार रही हूं। अब देखती हूं, तुम्हारे मौसा कैसे नहीं आते!"

"लेकिन, इससे क्या दुख खतम हो जायेगा? मौसा आ गये, तो तुम्हारा दुख तो और बढ़ जायेगा।"

"दुख भले न खतम हो, बहुरिया, लेकिन आखिर है तो वह मेरा पति! अगर अपना पति ही घर न हो, तो सुहागिन अउरत का मन भला सुखी रह सकता है? तुम ही बताओ, बहुरिया!"

मिनती क्या जवाब देती?

"अब अपने को ही लो। तुम्हारा पति-परमेसर घर में है, तभी तो तुम्हारे मन में सुख है। लेकिन मान लो, अपना पति ही घर में न रसा-बसा होता, तो? क्या होता, जरा सोचो।"

मिनती ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

अचानक उसने अगला सवाल किया, "इतने दिन गुजर गये'''मौसा ने तुम्हारी कभी कोई खोज-खबर नहीं ली? अपनी भी कोई खबर नहीं दी?"

"अरे, भला इतनी अक्किल कहां उस मरदुए में? अगर उसमें इतनी ही अक्किल होती, तो भला मेरी मिट्टी यूं खराब होती?"

पांव में आल्ता लगाने का पूरा काम हो चुका था। मांग में सिन्दूर भी जग-मगाने लगा। मौसी आल्ता-सेंधुर की पिटारी उठाकर जाने को तैयार हो गयी।

मिनती ने रोक लिया, "चाय तो पीती जाओ, आल्ता मौसी!"

"ना, बहुरिया, आज बैठने की फुर्सत नहीं। इसी मुहल्ले के भट्टाचार्य घर की बहू मरण-सेज पर पड़ी है। दुपहरिया को ही सुनकर आयी थी कि उसकी हालत अब-तब है। किस्मतवाली थी! सती-सुहागिन अपने पति के चरणों में मत्था टेककर चली गयी। पिछले जन्म में जरूर ही बहुत पुन्न किया होगा। वह कह गयी है'''उसे मसान-घाट ले जाने से पहले उसके पांवों में आल्ता और मांग में सेंधुर सजा दिया जाये—"

मिनती को बात समझ में नहीं आयी। उसने पूछा, "कह गयी है, मतलब?"

"भट्टाचार्य बहू बहुत दिनों से ही तो बीमारी भुगत रही थी। उसने तभी से

मुझसे कह रखा था, उसकी मौत से पहले उसे आल्ता-सेंधुर पहना दूं।"

अन्य दिनों की तरह गोष्ठ ने आकर आल्ता मौसी को एक रुपया थमा दिया। मौसी ने रुपया लेकर माथे से लगाया और पिटारी में रख ली।

इस घर में कदम रखने के बाद से ही मिनती वहां जो कुछ भी देखती, हैरत में डूब जाती। कैसी अजीब है यह गृहस्थी! जिसकी गृहस्थी है, उसकी नहीं मानो गोष्ठ'दा की गृहस्थी है। जो इस गृहस्थी का मालिक है, वह दिनभर में कितने घंटे टिकता है घर में? यूं दौलतपुर में भी उसने इस इंसान को बेहद करीब से देखा था। वहां भी यह शख्स संसार में रहकर भी मानो संसारी नहीं था। लेकिन उन दिनों तो उसके सास-ससुर जिन्दा थे। उस गृहस्थी में और भी बहुत-से लोग थे। लेकिन यहां…?"

मिनती की जिन्दगी के बीच वाले दिन मानो भयंकर दुःस्वप्न थे। उन खौफनाक दिनों की याद भर से आज भी उसके तन-बदन में कांटे चुभने लगते हैं। उन खौफनाक दिनों को भला किसने याद रखा है?

…अचानक आधी रात को…भीषण हो-हल्ला मचाते हुए, बलवाइयों के दल ने अचानक हवेली पर हमला बोल दिया। करुण आर्त-चीत्कार से आकाश-वातास कांप उठा।

"गया! गया!! सब गया।"

श्वसुर जी के कमरे से चीख गूंज उठी—मार डाला! मार डाला, रे!

साथ-ही-साथ, एक दल लोगों का प्रचंड उल्लास और चीत्कार के मुकाबले बाकी लोगों का आर्तनाद दब गया।

अचानक कुछेक अनजान लोग मिनती के दरवाजे पर जोर-जोर से धक्का मारने लगे, "दरवाजा खोलो। खोलो दरवाजा!"

मिनती थरथर कांप रही थी। उसने भरपूर ताकत से दरवाजे की सिटकिनी को जकड़े रखा।

कहीं दूर से आती हुई समवेत आवाजें—अल्ला हो अकबर! अल्ला हो अकबर!

"दरवाजा खोल! खोल दरवाजा!"

दरवाजे पर धक्के जितने तेज हो गये, मिनती उतनी ही काठ होती गयी। दांत-पर-दांत जमाये, वह जी-जान से सिटकिनी की हिफाजत करती रही।

अजीब रात थी! चरम दुःस्वप्न भरी रात!

अचानक धक्के और तेज हो गये। जाने कौन लोग थे, जो ताबड़तोड़ धक्के मार रहे थे। कुछ लोग लगातार चीख रहे थे—अल्ला हो अकबर! अल्ला हो अकबर!

अचानक उसे लगा, कोई उसका नाम लेकर आवाज़ दे रहा है—

"मिनती ! मिनती ! दरवाजा खोलो ! दरवाजा खोलो—मैं हूं शाहबुद्दीन !"

मिनती ने चौंककर पूछा, "तुम हो ! तुम हो, शाहबुद्दीन ?"

"हां, मैं हूं—शाहबुद्दीन। तुम्हें लेने आया हूं। दरवाजा खोलो, वर्ना तुम नहीं बचोगी।"

साथ-ही-साथ दूसरी तरफ कुछ लोगों की उल्लसित आवाज फट पड़ी—अल्ला हो अकबर ! अल्ला हो अकबर !

मिनती ने डरते-डरते दरवाजा खोल दिया। शाहबुद्दीन ने आगे बढ़कर उसे अपनी बांहों में समेट लिया। जितना शाहबुद्दीन हाफ रहा था उतना ही मिनती भी ! दोनों आपस में बंधे खड़े रहे। किसी ने अपने को मुक्त करने की कोशिश भी नहीं की।

"क्या हुआ है, शाहबुद्दीन ?"

"मैं तो शोर-शराबा सुनकर दौड़ा आया हूं। अब कोई फिक्र नहीं। मैं हूं ! अब कोई डर नहीं। दंगा हो गया है। अगर मैं न होता, तो वे लोग तुम्हें कत्ल कर देते।"

"कैसा दंगा ? कौन कत्ल करता मुझे ? तुम क्या कह रहे हो ?"

"मुसलमानों ने हिन्दुओं का घर-द्वार जलाकर राख कर दिया है। तुम्हारे सास-ससुर, बापू को भी मार डाला। मैं तुम्हें अपने घर ले जाऊंगा। चलो, मेरे साथ !"

वे तमाम दिन, तमाम खौफनाक हादसे मिनती की आंखों में आज भी अक्स है। जब भी वह अकेली होती है, पिछली दहशत भरी यादें प्रेत-प्रेतनी की तरह मिनती का पीछा किया करती हैं। उस रात शाहबुद्दीन के यहां पनाह न मिली होती, तो जाने उसकी क्या दशा होती। सारी रात शाहबुद्दीन और मिनती की आंखों में बूंद भर भी नींद नहीं। सिर्फ उसी रात ही नहीं, अगली कई-कई रातें मिनती सो नहीं पायी। उसके बाद जैसे-जैसे दिन गुजरते गये, उसकी दहशत बढ़ती गयी। उसका क्या होगा ? कहां जाये वह ? कहां मिलेगी पनाह उसे ? समूची दीन-दुनिया में उसका कोई नहीं। पति होकर भी 'ना' के बराबर ! बापू, सास-ससुर—सबके सब दंगे में मौत के घाट उतार दिये गये। मायकेवाला घर और ससुरालवाली हवेली—दोनों बेदखल ! उसे पति का आश्रय तो कभी मिला ही नहीं, सास-ससुर, मां-बापू का आश्रय भी निश्चिह्न हो गया।

उसी दौलतपुर में शाहबुद्दीन के यहां खबर आयी" कलकत्ता, दिल्ली, पंजाब, लाहौर में भी हिन्दू-मुसलमान-सिक्खों में दंगा छिड़ गया है और हजारों-हजार लोग बेनिशान हो गये। ट्रेन रोक-रोककर हिन्दू मुसलमानों का, मुसलमान

हिन्दुओं का खून कर रहे हैं।

मिनती ने शाहबुद्दीन से पूछा, "मेरा क्या होगा अब ?"

"तुम्हारे लिए कोई डर नहीं। मैं अपनी जान देकर भी तुम्हें बचाऊंगा। तुम डरो मत।"

"लेकिन मैं तुम्हारे घर में हूं, कहीं मुसलमानों को यह बात पता चल गयी, तो ?"

"किसी को कुछ पता नहीं चलेगा और तुमने तो मांग का सिन्दूर भी पोंछ डाला है। लोगों को पता कैसे चलेगा कि तुम हिन्दू हो ? मेरे अम्मी-अब्बू भी यहां नहीं हैं और फर्ज करो, किसी को शक हो भी गया, तो मैं कह दूंगा—तुम मेरी बेगम हो ! मेरी बीवी !"

"मैं तुम्हारी बीवी हूं ?"

"हां, जान बचाने की खातिर यह कहने में क्या गुनाह है ? यहां किसी को पता चलने से रहा कि तुम देवव्रत सरकार की ब्याहता पत्नी हो।"

"तुम्हारे अम्मी-अब्बू भी किसी-न-किसी दिन तो दौलतपुर आयेंगे ही, तब ? तुम उनसे क्या कहोगे ?"

"उनसे भी यही कहूंगा कि मैंने तुमसे शादी की है। कह दूंगा कि तुम मेरी बीवी हो। तुम्हें साड़ी-ब्लाउज में देखकर कौन समझेगा कि तुम हिन्दू की बेटी हो ? मांग में सिन्दूर, माथे पर सिन्दूर की बिंदी और पांवों में आल्ता न हो, बस ! हिन्दू और मुसलमान लड़कियों में सिर्फ यही फर्क है। इसलिए तुम बेखौफ रहो।"

मिनती अपने प्राण बचाने के लिए, मुसलमान बनी, उसके घर रहने लगी। किसी कोई शक नहीं हुआ।

कुछ दिनों बाद शाहबुद्दीन की अम्मी आ पहुंची। उस वक्त दौलतपुर, ढाका, मानिकगंज और नारायणगंज पूरी तौर पर पूर्व-पाकिस्तान बन चुका था।

अम्मा ने सवाल किया किया, "यह कौन है, रे, शाहबुद्दीन ?"

"इससे मैंने निकाह कर लिया है, अम्मी ! यह मेरी बीवी है—मिनती।"

"अच्छा ? कब किया निकाह ? इसका घर कहां है ?"

"इसके मां-बापू-भाई-बहन—सबको दंगे में हिन्दुओं ने मार डाला। इसको मुसीबत में देखकर मैं इसे मस्जिद में ले गया और कलमा पढ़ाकर, निकाह करके, अपने घर में डाल लिया। चूंकि वक्त नहीं था, इसलिए तुम लोगों को खबर नहीं दे सका।"

"वाह ! सुभान अल्लाह ! तेरी बीवी तो बड़ी खबसूरत है, रे !" मां निहाल हो गयी।

उसी वक्त से मिनती शाहबुद्दीन के घर ही बस गयी। अब उसे कोई खौफ

नहीं रहा। दौलतपुर में जितने हिन्दू बाशिन्दे थे, दंगे के समय सब कलकत्ते जा चुके थे। इसलिए मिनती का असली परिचय कोई नहीं जान सका। लोगों को यही खबर मिली कि शाहबुद्दीन ने जिस लड़की से निकाह किया है, उसके मां-बाप, भाई-बहन को दंगे के वक्त हिन्दुओं ने मार डाला।

एक दिन मिनती ने ही शाहबुद्दीन से सवाल किया, "अगर किसी दिन हम पकड़े गये, तब क्या होगा ? तुम्हारे साथ मेरा सचमुच का ब्याह तो हुआ नहीं ?"

"इस बात को तुम दफना ही दो ! अगर मैं ऐसा न करता, तो तुम्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ता।"

बात झूठ भी नहीं थी। कहां गये उसके बापू ! सास-ससुर ? कहां गया उसका वह मास्टर-पेशा पति, जिसके साथ उसका असली ब्याह हुआ था ? उस मर्द का संग-साथ तो दूर, उसके साथ हमबिस्तर होने का भी अधिकार उसे नहीं मिला और जिस शख्स के साथ उसका ब्याह नहीं हुआ, उसका सिर्फ संग-साथ ही नहीं, उसके साथ एक ही कमरे में, एक ही बिस्तर पर सोने की हकदार शादीशुदा बीबी का अभिनय करना पड़ा।

दुनिया में और किसी औरत के नसीब के साथ विधाता ने शायद ऐसा परिहास नहीं किया होगा। ऐसी किसी औरत की कहानी शायद इस ढंग से नहीं लिखी गयी।

लेकिन'''बहुत बार ऐसा होता है कि ऐक्टिंग करते-करते'''वही ऐक्टिंग सच हो जाती है, तब इंसान क्या करे ?

दुनिया के नक्शे में बदलते हुए रंगों के साथ-साथ इंसान के दिलों के नक्शों के भी रंग बदल जाते हैं ? शायद बदल ही जाते हैं, वर्ना झरना क्यों पैदा होती ? और उसकी सूरत शाहबुद्दीन की सूरत से इतनी मिलती-जुलती क्यों होती ?

झरना को देखकर शाहबुद्दीन के नाते-रिश्तेदार सभी यही कहते रहे—झरना की सूरत-शक्ल बिलकुल अपने अब्बू से मिलती है।

वैसे भी झरना के जन्म के साथ-साथ शाहबुद्दीन की किस्मत का पहिया भी घूम गया। जो शख्स कभी देवव्रत सरकार का अति प्रिय छात्र था, वह आज पूर्व-पाकिस्तान के राजनीतिक आकाश का ध्रुवतारा बन गया। चाहे पश्चिमी पाकिस्तान का कराची या इस्लामाबाद हो या पूर्व-पाकिस्तान का ढाका शाहबुद्दीन के बगैर कहीं कोई काम नहीं चलता। सिर्फ यही नहीं, खास-खास कामों के लिए उसे पाकिस्तान से बाहर इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका भी जाना पड़ता था। देवव्रत सरकार के नाम से जुड़ी रहकर मिनती का आखिर क्या बनता ? रसोई की दहलीज के अन्दर ही अटकी रह जाती।

लेकिन नेपथ्य में मिनती के भाग्य-देवता जरूर हंस रहे होंगे। भाग्य-देवता बड़े निष्ठुर होते हैं। उनका विधान भी बेहद कठोर होता है। उस पर किसी का

कोई वश नहीं।

अचानक वह ट्रेन दुर्घटना !

उसके बाद से ही मिनती जो टूटी, आज तक अपने को समेट नहीं पायी। बस, किसी तरह जिन्दगी का बोझ ढोये जा रही है। उसे कभी किसी से स्नेह, प्रीति, ममता, प्यार नहीं मिला। यहां कलकत्ता आकर भी उसे अपने पति देवव्रत सरकार से माफी तक नहीं मिली।

अब तो सिर्फ झरना ही उसकी एकमात्र उम्मीद है। जितनी तकलीफें उसे उठानी पड़ीं, उसकी बेटी झरना को उन तकलीफों से न गुजरना पड़े, बस, इसी आसरे-भरोसे वह जिन्दा है। इसी कामना में वह जिन्दगी के बाकी दिन गुजार देगी। जब वह अपने जीते-जी यह देख लेगी कि उसकी झरना शान से सर उठाकर खड़ी है, तभी वह अपने भाग्य-विधाता से मुक्ति की प्रार्थना करेगी और इस संसार से विदा लेगी। इससे पहले तो वह मर भी नहीं सकती।

उस दिन···आधी रात को देवव्रत के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी···

देवव्रत यूं भी हर दिन सुबह से शाम तक जी-तोड़ मेहनत करता है। रात सिर्फ तीन घंटे सोता है और भोर तीन-साढ़े तीन बजे उठ जाता है। उसके बाद जप-तप, पूजा-पाठ निपटाता है। दुनिया की तमाम समस्याएं उसे तकलीफ देती हैं, खासकर बंटे हुए भारत की समस्या।

इस आजाद हिन्दुस्तान का इंसान इतना खुदगर्ज क्यों हो गया है? इतना ऐश्वर्यलोभी, विलासप्रिय क्यों हो गया है, ये सब सवाल उसे बेहद परेशान करते हैं। इन्हीं सब चिन्ता-फिक्र के साथ वह सोता है और इन्हीं के साथ वह जागता है। चारों तरफ इतना लोभ, अर्थ-लोलुपता, अकारण विलासिता देखकर वह बेतरह कष्ट पाता है। अंग्रेजों को खदेड़कर देश की आजादी हासिल करने से आखिर क्या लाभ हुआ? यह आजादी आखिर किसके लिए? खुदीराम, गोपीनाथ, यतीनदास, भगतसिंह, शुकदेव, चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल वगैरह क्या इसी आजादी के लिए शहीद हुए थे?

पहली दस्तक पर उसकी नींद नहीं टूटी। दरवाजे पर दुबारा दस्तक पड़ी। देवव्रत जाग गया। उसे लगा शायद गोष्ठ को कोई जरूरी काम याद आ गया होगा।

लेकिन···गोष्ठ तो इतना नासमझ नहीं है। वह जानता है, उसके दादा बाबू दिनभर गधे की तरह खटने के बाद इसी वक्त जरा आराम करते हैं। पूरे दिन भर में यही कुछेक घंटे।

"कौन?" उसने पूछा।

किसी औरत की आवाज सुनकर वह अचकचा गया।

"कौन ?" उसने दुबारा पूछा।

"मैं ?" बाहर से कोई नारी कंठ सुनायी दिया।

अब कोई सन्देह नही रहा।

देवव्रत ने दरवाजा खोल दिया। उसका अन्दाजा सही था।

"तुम ?"

"हां, तुमसे कुछ बात करनी थी···" मिनती ने कहा।

"इस वक्त ?"

"इस वक्त के अलावा और कब आऊं ? और किसी वक्त तो तुम अकेले मिलते नही। तुम तो हर वक्त, हर पल व्यस्त रहते हो।"

"हां···चारों तरफ से काम का ऐसा बोझ आ पड़ा है कि सच ही फुर्सत नही मिलती। खैर, तुम बताओ, क्या बात करनी है ?"

"यहां···यूं खड़े-खड़े ही बात करनी होगी ?"

"खड़े-खड़े बात करना अगर बुरा लगे, तो चलो, छत पर चलकर बैठते हैं। वही बात कर लेंगे।"

"और···अगर मैं तुम्हारे कमरे मे बैठूं ?"

"मेरे कमरे मे ?"

"कमरे में बैठने में तुम्हें एतराज है ?"

"लेकिन···मेरा कमरा तो···सोने का कमरा है।"

"अभी भी तुम्हारे सोने के कमरे मे दाखिल होने का अधिकार मुझे नही है।"

"तुम्हें तो मैंने ब्याह से पहले ही कह दिया था। अब यह बात नये सिरे से क्यों।"

"लेकिन तुमने तो अग्नि को साक्षी मानकर मुझसे ब्याह भी किया था। आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूं। तुम इस बात से तो इन्कार नही कर सकते ?"

"तुम तो फिर गड़े मुर्दे उखाड़ने लगीं।"

"हां, मुझे मालूम है। मुझे सारी बातें याद भी हैं। लेकिन अब तो तुम्हारी मातृभूमि स्वाधीन हो चुकी है।"

"सिर्फ यह बताने के लिए, इतनी रात गये, तुमने मेरी नीद खराब की।"

"नही। और भी सैकड़ों बातें हैं। हमारा देश अब आजाद हो चुका है, इससे तो तुम इन्कार नही कर सकते ?"

"इस बात का जवाब मैं नही दूंगा। कोई और बात करो।"

"मेरा ख्याल था पाकिस्तान से तुम्हारे पास लौट आने के बाद···मुमकिन है तुम मुझे थोड़ा-बहुत प्यार दो—"

"मैं तुम्हें प्यार नहीं करता ? अगर ऐसा होता, तो गोष्ठ से तुम लोगों के

रहने और खाने-पीने का ख्याल रखने को क्यों कहता ?"

"रहने-खाने की तो कोई तकलीफ नहीं हमें..."

"हां, किसी भी किस्म की तकलीफ हो तुम बेहिचक गोष्ठ से कह सकती हो। मुझसे या उससे कहा, एक ही बात है। गोष्ठ मेरा बेहद विश्वासी है। स्कूल से मैं जितनी भी तनख्वाह लाता हूं, गोष्ठ के हाथों सौंप देता हूं, तुम्हें तो पता है।"

"पता है। लेकिन आदमी सिर्फ रोटी-कपड़ा और मकान में ही तो सुखी नहीं हो सकता ! उसकी क्या और कोई जरूरत नहीं होती ?"

"बताओ, और क्या जरूरत है तुम्हारी ?"

मिनती ने उसके इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया।

"बताओ न, और किस चीज की जरूरत है तुम्हें ? झरना के लिए कपड़े-जूते ?"

"ना—"

"तब तुम्हारे लिए साड़ी-ब्लाउज या सैंडल ?"

"ना—"

"तुम लोगों को जब, जिस चीज की जरूरत हो, तुम गोष्ठ से कह सकती हो, वह फौरन ले आयेगा। मैंने उससे कह रखा है।"

"गोष्ठ'दा ने हमारे लिए कभी कोई कमी नहीं की। कुछ उठा नहीं रखा—"

"फिर ?"

मिनती फिर चुप हो रही।

"झरना की पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

"ठीक-ठाक।"

"इम्तहान में उसके पर्चे कैसे हुए ?"

"ठीक ही हुए।"

"उसे खूब अच्छी तरह पढ़ाना ताकि वह देश में नारी जगत की रत्न बने। लोग यह कह सकें कि उसका नारी-जन्म सार्थक हुआ।"

"मैं ये सब बातें करने नहीं आयी। मैं तुमसे यह पूछना चाहती हूं कि मेरी जिन्दगी क्या इसी तरह अकारथ जाएगी ?"

"तो बताओ, तुम्हें और क्या चाहिए ?"

"आखिर, मैं तुम्हारी शादीशुदा बीवी हूं—"

"हां, सो तो है। मैंने भी कब इससे इन्कार किया ? हर कोई यही जानता है कि तुम मेरी पत्नी हो। उस दिन तुमने अपनी आंखों से देखा और मेरे स्कूल के मास्टर लोग आए थे, हम तीनों की तस्वीरें उतारी थीं। जो श्रद्धा-सम्मान मेरी

बीवी को देना चाहिए, तुम्हें वही दिया।"

"हां, दिया तो सही। लेकिन, वह तो हमारा बाहरी परिचय है। भीतरी…?"

"भीतर भी वही नहीं, यह किसने कहा?"

"सबकी नजरों की ओट में क्या हम सचमुच मियां-बीवी हैं?"

"यह तो तुमने काफी मुश्किल-सा सवाल किया, मिनती!"

"हां, यही मुश्किल-सा सवाल करने मैं आज…इतनी रात को बेवक्त आयी हूं।"

"अच्छा किया, तुमने यह सवाल पूछ लिया, क्योंकि यहां किसी को भी नहीं मालूम कि तुम सिर्फ मेरी ही पत्नी नहीं हो, किसी और की भी बीवी हो।"

"किसकी बात कर रहे हो? शाहबुद्दीन की?"

"हां, शाहबुद्दीन से भी तुम्हारा ब्याह हुआ था? यह बात सच है या नहीं?"

"नहीं, सच नहीं है?"

देवव्रत मिनती के जवाब पर अवाक् रह गया।

उसने अगला सवाल किया, "सच नहीं है? यह तुम कह रही हो?"

"नहीं, सच नहीं है। मैं बताती हूं, क्या हुआ था असल में…"

…"उस दिन देश के बंटवारे के वक्त दौलतपुर में भयकर मुसीबत टूट पड़ी। दंगे के उन्माद में हिन्दू-मुसलमान में जब अमानवीय अत्याचार-अनाचार चल रहा था, तब शाहबुद्दीन ने अपनी जान पर खेलकर उसे बचाया था। उसे अपने घर ले गया। कैसे और किन हालात में उसने अपनी अम्मी के आगे झूठ बोला, मिनती को अपनी बीवी घोषित किया—मिनती ने सारी कहानी सविस्तार कह सुनायी।

देवव्रत बड़े ध्यान से पूरी दास्तान सुनता रहा।

पूरी दास्तान सुनने के बाद उसने कहा, "शाहबुद्दीन तो अन्त में पाकिस्तान का विदेश मंत्री बन गया था और तुम भी उसकी बीवी की हैसियत से पूरी दुनिया की सैर करती रही?"

"हां, मैं कबूल करती हूं, मैंने साथ दिया।"

"और…अगर उस हादसे में शाहबुद्दीन का इन्तकाल न हो गया होता, तो तुम सारी जिन्दगी उसी के साथ गुजारती?"

मिनती ने कोई जवाब नहीं दिया।

"बोलो, जवाब दो। शाहबुद्दीन अगर जिन्दा होता, तो तुम मेरे पास कभी आती?"

"हां, मैं यह भी कबूल करती हूं, तब मैं तुम्हारे पास नहीं आती।"

"फिर तुम किसलिए चली आयीं?"

"ताकि मेरी बेटी झरना को पिता का नाम मिले। इसीलिए आना पड़ा।"

"पिता का नाम···क्यों ?"

"झरना मेरी नाजायज औलाद साबित होती। शाहबुद्दीन से भी असल में तो इस्लाम धर्म के मुताबिक मेरा निकाह नहीं हुआ था। मेरी जान बचाने के लिए ही उसने अपने समाज के सामने अपनी बीवी कहकर काम चला लिया वरना मैं हिन्दू औरत ही बनी रहती और उसकी रखैल कहलाती। यह उसने नहीं चाहा। मेरी भलाई के लिए ही उसने लोगों के सामने अपनी शादीशुदा मुसलमान बीवी कहकर मेरा परिचय दिया।

देवव्रत थोड़ी देर के लिए खामोश हो गया।

अचानक उसने अगली कड़ी जोड़ी, "देखो, लोगों के सामने मैं भी तुम्हारी झरना को अपनी सगी बेटी ही बताता हूं। इससे ज्यादा और क्या चाहती हो ?"

"मैं तुम्हारी सचमुच की पत्नी होना चाहती हूं।"

"भई, मेरी पत्नी तो तुम हो ही। मैं तो सरे-आम एलान करता हूं कि तुम मेरी पत्नी हो।"

"और लोग भले न जानें, लेकिन मैं तो जानती हूं, मैं तुम्हारी सचमुच की कोई नहीं। अपनी नजर में तो मैं गुनाहगार हूं। बोलो, यह सच है या नहीं ? मैं क्या सचमुच तुम्हारी सहधर्मिणी हूं ?"

"भीतर की बात चाहे जो हो, बाहर से तो सभी जानते हैं कि तुम मेरी सहधर्मिणी हो।"

"हां, बाहरवालों की नजर में मैं तुम्हारी सहधर्मिणी हूं, लेकिन भीतर मैं तुम्हारी आश्रिता हूं। यह भली बात नहीं। बाहर-भीतर क्या एक नहीं हुआ जा सकता ?"

"ना—"

"सच ही नहीं ?"

"यह सच नहीं हो सकता, इस बारे में तुमसे ब्याह के पहले ही काफी खुलकर बातचीत हो चुकी है। मैंने अपनी शर्त भी तुम्हें अच्छी तरह समझा दी थी। इसके बावजूद उस वक्त तुम मुझसे ब्याह के लिए राजी हुई थीं। अब तुम मेरी सहधर्मिणी क्यों होना चाहती हो ?"

"अब ये दर्द सचमुच मेरी बर्दाश्त के बाहर है, जी।"

"तुम अगर बर्दाश्त न कर पाओ, तो भला मैं क्या कर सकता हूं ?"

"लेकिन अब तो देश आजाद हो गया है। अब तो यह शर्त निभाने का कोई मतलब नहीं।"

"क्या कहती हो तुम ? देश आजाद हो गया है ? सचमुच आजाद हो गया है ?"

"क्यों ? देश आजाद नहीं हो गया ? अंग्रेज चले नहीं गए ?"

"नहीं, देश आजाद नहीं हुआ। मानता हूं कि अंग्रेज चले गए, लेकिन हमने इस आजादी के लिए तो लड़ाई नहीं लड़ी ।"

"मैंने ऐसी बड़ी-बड़ी बातें कभी नहीं सोचीं। मैं एक मामूली औरत हूं, सिर्फ अपनी सुख-सुविधा के बारे में सोचती हूं।"

"खैर, मामूली आदमी तो मैं भी हूं। मैं भी सिर्फ अपनी सुख-सुविधा के बारे में सोचना चाहता हूं, लेकिन जाने क्यों मुझे भगवान की रुलाई भी सुनायी देती है।"

"भगवान की रुलाई ?"

"हां, मिनती मेरा यकीन करो, वह रुलाई मुझे क्यों परेशान करती है ? हमारे देश के नेताओं, सुधारकों, विद्वानों को वह रुलाई सुनायी नहीं देती।" यह कहते-कहते देवव्रत किंचित उत्तेजित हो उठा। उसकी जुबान से निकले हुए शब्द—शब्द कैसे तो भजनी हो आए। अंधेरे में···वही चिरकाल की जानी-पहचानी सूरत देखकर मिनती चौंक उठी।"

"अरे, तुम तो रो रहे हो।"

देवव्रत ने धोती की छोर से झटपट आंसू पोंछते हुए कहा, "मैं क्यों रोता हूं, किसी को समझ नहीं आता। पता है, मिनती, कोई नहीं समझता, यही मेरा दुःख है।"

कुछ देर ठहरकर उसने अगली कड़ी जोड़ी, "मैं क्या करूं, बता सकती हो, मिनती ? दिनों दिन इन्सान खुदगर्ज होता जा रहा है। पहले हमारा सिर्फ एक दुश्मन था—अंग्रेज ! लेकिन अंग्रेजों के जाते ही हर कोई, हर किसी का दुश्मन बन गया। सभी का एक ही लक्ष्य—कैसे एक-दूसरे को हराया जाए। दूसरों को ठगकर अपना भंडार भरा जाए। आजकल के व्यापारी भी वैसे ही निकले। उनका लक्ष्य है—कैसे वे अपने माल में ज्यादा-से-ज्यादा मिलावट करें और ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफा कमायें। सामानों की कीमत सुन-सुनकर मैं तो और सकते में आ गया हूं। इससे कहीं ज्यादा सुखी हम अंग्रेजी राज में थे। सन् 1938 के विदेशी राज में सोने का दाम था, अड़तीस रुपये भरी ! और अब ? अब उसी सोने का दाम हो गया है हजार रुपये भरी। सोने के दाम दिनोंदिन आसमान छू रहे हैं··· अभी और बढ़ेंगे। तब ? एक बात और सुनोगी, मिनती, आजकल हमारे स्कूल के बच्चे, टिफिन के वक्त दारू की दुकान से दारू खरीदकर टिफिन करते हैं, कभी सोच सकती हो तुम ?" देवव्रत फिर रो पड़ा।

कुछ देर बाद उसने रुलाई रोककर कहा, "आज इसी जुर्म में मुझे अपने तीन छात्रों को स्कूल से निकाल देना पड़ा···"

मिनती के पास इन बातों का सच ही कोई जवाब नहीं था।

देवव्रत ने दुबारा कहना शुरू किया, "आज उन तीनों छात्रों के गार्जियन आए थे। मैंने उन्हें साफ बता दिया कि अब मैं उन तीनों को इस स्कूल में किसी शर्त पर भी नहीं रखूंगा। पता है, उन्होंने मुझसे क्या कहा? वे मुझे धमकी दे गये हैं कि स्कूल कमेटी से मेरी शिकायत करके मुझे नौकरी से निकलवा देंगे। अब पता नहीं मेरा क्या···। कल ही स्कूल कमेटी की मीटिंग है, देखो, मिनती, मेरे पास सबूत है कि उन लड़कों ने टिफिन के वक्त सचमुच दारू पी थी। दारू की दुकान के मालिक के पास मैं खुद गया था। उसने मुझे बताया कि हमारे स्कूल के कई लड़के टिफिन के वक्त दारू पीने आते हैं। अब बताओ, मैं क्या करूं?"

मिनती को कोई जवाब नहीं सूझा।

देवव्रत ने फिर कहा, "अब तुम ही बताओ, इतने सबके बाद भी भगवान रोयेगा नहीं? हालांकि यह रुलाई देश के नेताओं को नहीं सुनायी देती।"

मिनती ने शिथिल लहजे में कहा, "मैंने बेकार ही तुम्हारी नींद खराब की। तुम्हें परेशान किया। अब चलूं—"

वह फौरन वहां से हट गयी। सबके अनजाने में वह सीढ़ियां उतरने लगी···

"उसके बाद···" मैंने पूछा।

सुप्रभात फिर बताने लगा, "अगले दिन ही स्कूल की मीटिंग बुलायी गयी। इमरजेंसी मीटिंग! देश के गण्यमान लोग उस कमेटी के मेम्बर! जिन तीन छात्रों को देवव्रत सरकार ने स्कूल से निष्कासित कर दिया था, उनके गार्जियन भी मुहल्ले के प्रतिष्ठित-सम्पन्न लोग! एक करोड़पति बिजनेसमैन! कारोबार में हर साल करोड़ों-करोड़ रुपये कमानेवाले! दूसरा, देश के शिक्षा-मंत्री का सगा भाई! तीसरा, भारत सरकार के गृह-सचिव के जेठू का नाती! यानी तीनों समाज के श्रद्धाभाजन लोग।

शाम को चार बजे कमेटी की मीटिंग शुरू हुई। कमेटी के सभी सदस्य हाजिर थे। हेडमास्टर देवव्रत सरकार तो वहां था ही, वे तीनों निष्कासित छात्र और उन तीन अभियुक्तों के संभ्रान्त पिताश्री भी मौजूद थे। सभापति ने देवव्रत सरकार को कमरे से बाहर चले जाने का हुक्म दिया। देवव्रत अपने कमरे में चला आया।

···स्कूल का नाम—'नव विधान चरित्र गठन हायर सेकंडरी स्कूल।' अंग्रेजों के जमाने में किसी देशभक्त ने इस स्कूल की स्थापना की थी। इस स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए—स्वर्गीय गोलकेन्दु सरकार। उनके स्वर्गवास के बाद

स्कूल कमेटी के निर्देश पर ही देवव्रत को पद पर नियुक्त किया गया।

देवव्रत के कार्य-काल में सेकंडरी परीक्षा में हर वर्ष पहले दस पुरस्कृत छात्रों में से इस स्कूल का एक-न-एक छात्र, कोई-न-कोई स्थान जरूर हासिल करता। किसी-किसी साल इस स्कूल के किसी-न-किसी छात्र को मोटा वजीफा भी मिलता था। अतः इस स्कूल की नाम-प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी थी। अंग्रेजी-राज में स्थापित इस स्कूल में पढ़े हुए छात्र सर्वभारतीय परीक्षाओं में भी सफल होकर, काफी ऊंचे-ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

लेकिन पहले जो कमेटी बनी थी, कई-कई सालों के अन्तराल में बदलती रही और अब नयी-नयी कमेटी गठित होती रही। अब देश आजाद हो चुका है। लोग-बाग बदल चुके हैं, साथ-ही-साथ कमेटी के सदस्य भी बदल चुके हैं।

जिन्होंने इस स्कूल की प्रतिष्ठा की थी, उनकी ख्वाहिश थी कि छात्रों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ, चरित्र गठन की भी शिक्षा दी जाए।

देवव्रत जब हेडमास्टर बना, उसके लिए बिल्कुल नया कार्यक्रम बनाया। वही शुरू हुआ विरोध! शुरू शुरू में स्कूल के अध्यापकों की तरफ से विरोध हुआ, बाद में स्कूल-कमेटी ने भी उसका समूचा कार्यक्रम नामंजूर कर दिया। अध्यापकों के कोचिंग स्कूल को लेकर बहसें हुई और ट्यूटोरियल होम शुरू करने के प्रस्ताव पर भी काफी बवेला हुआ।

देवव्रत अपने कमरे में बैठा-बैठा इन्हीं सब ख्यालों में डूबा हुआ था।

उधर कमेटी-मीटिंग पूरे तीन घंटे तक चलती रही। अन्त में दारू की दुकान के मालिक ननीलाल साहा को भी बुलाया गया। टिफिन के वक्त जिन तीन छात्रों को दारू पीने के जुर्म में निष्कासित किया गया था, उनकी भी पेशी हुई।

ननीलाल से सवाल किया गया, "आपने इन तीनों लड़कों को अपनी दुकान पर शराब पीते देखा है?"

ननीलाल काफी देर तक उन तीनों को पहचानने की कोशिश करता रहा, लेकिन शिनाख्त नहीं कर सका।

उसने कहा, "मैं तो सारे दिन अपने कैश में उलझा रहता हूं। ग्राहकों की ओर नजर डालने की मुझे फुर्सत ही नहीं···"

कमेटी के प्रेसिडेंट ने उससे अगला सवाल किया, "एक बार फिर, इन तीनों बच्चों की ओर गौर से देखो।"

ननीलाल की निगाहें उन तीनों बच्चों पर पड़ गयीं।

"इन्हें पहचानते हैं?

"नहीं—"

बस! फैसला हो गया। जो लोग कमेटी के सदस्य नहीं थे, वे लोग भी आस-पास से ताक-झांक करते हुए मजा ले रहे थे, क्योंकि उन्हें कमरे में कदम रखने की

इजाजत नहीं थी।

हेडमास्टर को लेकर आपस में वोली-आवाजें भी कसने लगे।

सुब्रत ने कहा, "सुनिये, सुनिये! हमारे हेडमास्टर साहब की आदरणीया पत्नी मिनती देवी को देखा है आप लोगों ने? सुना है, पाकिस्तान का विदेश मंत्री, किसी जमाने में उन्हें ले उड़ा था।"

"अच्छा? सच्ची?"

उसके वाद विचारे शाहवुद्दीन साहव ट्रेन दुर्घटना में भगवान को प्यारे हो गये और उसके वाद, वही औरत'''यानी हमारे स्वनामधन्य मास्टर की सती-सावित्री पत्नी'''फिर लौट आयी हमारे हेडमास्टर के पास'''"

जिन लोगों को यह किस्सा मालूम था, उन्हें चटखारे लेने के लिए मानो चटपटी खुराक मिल गयी। सबने सुब्रत को घेर लिया।

कमरे के अन्दर कमेटी-मीटिंग उसी जोशो-खरोश से जारी थी। विचार-सभा में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श चल रहा था। हेडमास्टर साहब को इस किस्म का हुक्म जारी करने का अधिकार है भी या नहीं! जिन तीन छात्रों को निष्कासित किया गया है, वह कानूनी है या गैर कानूनी। इस सवाल को लेकर छात्रों और अध्यापकों में खासी गर्मागर्म चर्चाएं शुरू हो गयीं, वाकायदा हंगामा मचा हुआ था। कमेटी-रूम के वाहर-भीतर, दोनों जगह शोर-शरावे का माहौल।

सेक्रेटरी साहव ने कहा, "अव हेडमास्टर साहव को तलव किया जाये।"

सहायक-सचिव ने कहा, "अव उन्हें वुलाने की क्या जरूरत! स्कूल-निकाला का ऑर्डर कैंसिल कर दिया जाये, वस, उन वच्चों ने शराव पी, इसका कहीं, कोई सवूत नहीं।"

सेक्रेटरी साहव ने दुवारा दलील दी, "लेकिन उन्हें यहां वुलाने में हर्ज क्या है? मुमकिन है उनके पास कोई सवूत हो। उन्हें भी मौका दे लें'''"

सहायक सचिव ने उनकी वात काटते हुए कहा, "जव शराव की दुकान के मालिक ने खुद गवाही दी कि वह उन तीनों को नहीं पहचानता, तव तो झगड़ा ही खत्म।"

सेक्रेटरी ने अंतिम राय दी, "नहीं, फिर भी'''इस सिलसिले में मुमकिन है, वे कोई सफाई पेश करना चाहें। उनकी भी वात सुन लेना वेहतर है। उसके वाद उनका ऑर्डर तो खारिज कर ही दिया जायेगा।"

गार्जियन वर्ग के प्रतिनिधि रामरतन सान्याल ने भी सख्त एतराज उठाया, "मैं अभी तक चुप था, लेकिन अव मुझसे चुप नहीं रहा जा रहा—"

सवने समवेत स्वर में पूछा, "क्यों? क्यों? क्या हुआ?"

रामरतन वावू ने फरमाया, "जिन महानुभाव ने इस स्कूल की प्रतिष्ठा की थी, उन्होंने छात्रों को सिर्फ स्कूली शिक्षा देने के लिए ही यह स्कूल नहीं खोला

था। उनकी इच्छा थी कि बच्चों का स्वास्थ्य-गठन भी हो। लेकिन हुआ क्या? यह देवव्रत सरकार क्या वैसा काबिल मास्टर साबित हुआ? इसके खुद के चरित्र का कौन-सा ठीक-ठिकाना है? इस शख्स का अपना चरित्र ही क्या अनुकरण योग्य है? क्या आदर्श चरित्र है? वरना इसकी ब्याहता पत्नी क्यों इसे छोड़ गयी और जाकर एक मुसलमान से निकाह कर बैठी? इस आदमी के घर झरना नामक जो बच्ची है, क्या वह इसकी सगी बेटी है?"

उनकी बातें सुनकर लोग हत्वाक रह गए।

सबने समवेत स्वर में कहा, "ठीक है! अब हेडमास्टर को बुलाया जाये और उससे इसका जवाब तलब किया जाये।"

ऐसा ही किया गया। देवव्रत सरकार को तलब किया गया। देवव्रत सरकार, हाजिर हो।

सेक्रेटरी ने पहला सवाल दागा, "अच्छा, देवव्रत साहब, आपने जिन तीन छात्रों को स्कूल से निकाल बाहर किया है, उनके खिलाफ आपकी शिकायत है कि वे तीनों टिफिन के वक्त शराब की दुकान पर जाकर शराब पीते थे। कमेटी यह जानना चाहती है कि उन्हें शराब पीते हुए क्या आपने अपनी आंखों से देखा?"

"न—ही!" देवव्रत का चेहरा सख्त हो आया।

"तब आपने किस सबूत पर उन तीनों का बहिष्कार किया?"

"मैंने भले अपनी आंखों से न देखा हो, लेकिन जिस आदमी से मुझे यह खबर मिली, उसकी बात पर मैं अविश्वास नहीं कर सकता।"

"कौन है वह?"

"वह मेरे घर पर काम करता है—गोष्ठ! उसका देखना ''मतलब मेरा देखना''"

"यानी आपका नौकर? यानी एक अदने से नौकर की बातों में आकर आपने तीन-तीन छात्रों की जिन्दगी बर्बाद कर दी?"

"वह शख्स मेरे घर का नौकर नहीं है। मेरे कोई बेटा नहीं। वह शख्स मेरे सगे बेटे से भी बढ़कर अपना है। वह हर सप्ताह उस दिन दोपहर को राशन लाने जाता है। वह जितनी बार राशन लाने जाता था, उतनी बार उसने उन लड़कों को शराब पीते देखा।"

"फिर भी ''! एक नौकर की बात पर आपने तीन छात्रों का भविष्य तबाह कर दिया?"

"मैंने भी पहले-पहल गोष्ठ की बातों का यकीन नहीं किया था। अन्त में एक दिन मैं खुद ही टिफिन के वक्त बाजार की तरफ गया। जाकर देखा गोष्ठ की खबर सोलह आने सही है। मैंने दूर से देखा, वे तीनों छात्र शराब की दुकान में दाखिल हुए। उसके बीस मिनट बाद उन्हें निकलते भी देखा। मैंने वहीं ''उन्हें रंगे हाथों

इजाजत नहीं थी।

हेडमास्टर को लेकर आपस में बोली-आवाजें भी कसने लगे।

सुव्रत ने कहा, "सुनिये, सुनिये! हमारे हेडमास्टर साहब की आदरणीया पत्नी मिनती देवी को देखा है आप लोगों ने? सुना है, पाकिस्तान का विदेश मंत्री, किसी जमाने में उन्हें ले उड़ा था।"

"अच्छा? सच्ची?"

उसके बाद बिचारे शाहबुद्दीन साहब ट्रेन दुर्घटना में भगवान को प्यारे हो गये और उसके बाद, वही औरत''' यानी हमारे स्वनामधन्य मास्टर की सती-सावित्री पत्नी''' फिर लौट आयी हमारे हेडमास्टर के पास'''"

जिन लोगों को यह किस्सा मालूम था, उन्हें चटखारे लेने के लिए मानो चटपटी खुराक मिल गयी। सबने सुव्रत को घेर लिया।

कमरे के अन्दर कमेटी-मीटिंग उसी जोशो-खरोश से जारी थी। विचार-सभा में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श चल रहा था। हेडमास्टर साहब को इस किस्म का हुक्म जारी करने का अधिकार है भी या नहीं! जिन तीन छात्रों को निष्कासित किया गया है, वह कानूनी है या गैर कानूनी। इस सवाल को लेकर छात्रों और अध्यापकों में खासी गर्मागर्म चर्चाएं शुरू हो गयीं, बाकायदा हंगामा मचा हुआ था। कमेटी-रूम के बाहर-भीतर, दोनों जगह शोर-शराबे का माहौल।

सेक्रेटरी साहब ने कहा, "अब हेडमास्टर साहब को तलब किया जाये।"

सहायक-सचिव ने कहा, "अब उन्हें बुलाने की क्या जरूरत! स्कूल-निकाला का ऑर्डर कैंसिल कर दिया जाये, बस, उन बच्चों ने शराब पी, इसका कहीं, कोई सबूत नहीं।"

सेक्रेटरी साहब ने दुबारा दलील दी, "लेकिन उन्हें यहां बुलाने में हर्ज क्या है? मुमकिन है उनके पास कोई सबूत हो। उन्हें भी मौका दे लें'''"

सहायक सचिव ने उनकी बात काटते हुए कहा, "जब शराब की दुकान के मालिक ने खुद गवाही दी कि वह उन तीनों को नहीं पहचानता, तब तो झगड़ा ही खत्म।"

सेक्रेटरी ने अंतिम राय दी, "नहीं, फिर भी''' इस सिलसिले में मुमकिन है, वे कोई सफाई पेश करना चाहें। उनकी भी बात सुन लेना बेहतर है। उसके बाद उनका ऑर्डर तो खारिज कर ही दिया जायेगा।"

गार्जियन वर्ग के प्रतिनिधि रामरतन सान्याल ने भी सख्त एतराज उठाया, "मैं अभी तक चुप था, लेकिन अब मुझसे चुप नहीं रहा जा रहा—"

सबने समवेत स्वर में पूछा, "क्यों? क्यों? क्या हुआ?"

रामरतन बाबू ने फरमाया, "जिन महानुभाव ने इस स्कूल की प्रतिष्ठा की थी, उन्होंने छात्रों को सिर्फ स्कूली शिक्षा देने के लिए ही यह स्कूल नहीं खोला

था। उनकी इच्छा थी कि बच्चों का स्वास्थ्य-गठन भी हो। लेकिन हुआ क्या? यह देवव्रत सरकार क्या वैसा काबिल मास्टर साबित हुआ? इसके खुद के चरित्र का कौन-सा ठीक-ठिकाना है? इस शख्स का अपना चरित्र ही क्या अनुकरण योग्य है? क्या आदर्श चरित्र है? वरना इसकी ब्याहता पत्नी क्यों इसे छोड़ गयी और जाकर एक मुसलमान से निकाह कर बैठी? इस आदमी के घर झरना नामक जो बच्ची है, क्या वह इसकी सगी बेटी है?"

उनकी बातें सुनकर लोग हत्‌वाक् रह गए।

सबने समवेत स्वर में कहा, "ठीक है! अब हेडमास्टर को बुलाया जाये और उससे इसका जवाब तलब किया जाये।"

ऐसा ही किया गया। देवव्रत सरकार को तलब किया गया। देवव्रत सरकार, हाजिर हो।

सेक्रेटरी ने पहला सवाल दागा, "अच्छा, देवव्रत साहब, आपने जिन तीन छात्रों को स्कूल से निकाल बाहर किया है, उनके खिलाफ आपकी शिकायत है कि वे तीनों टिफिन के वक्त शराब की दुकान पर जाकर शराब पीते थे। कमेटी यह जानना चाहती है कि उन्हें शराब पीते हुए क्या आपने अपनी आंखों से देखा?"

"न—ही।" देवव्रत का चेहरा सख्त हो आया।

"तब आपने किस सबूत पर उन तीनों का बहिष्कार किया?"

"मैंने भले अपनी आंखों से न देखा हो, लेकिन जिस आदमी से मुझे यह खबर मिली, उसकी बात पर मैं अविश्वास नहीं कर सकता।"

"कौन है वह?"

"वह मेरे घर पर काम करता है—गोष्ठ! उसका देखना···मतलब मेरा देखना···"

"यानी आपका नौकर? यानी एक अदने से नौकर की बातों में आकर आपने तीन-तीन छात्रों की जिन्दगी बर्बाद कर दी?"

"वह शख्स मेरे घर का नौकर नहीं है। मेरे कोई बेटा नहीं। वह शख्स मेरे सगे बेटे से भी बढ़कर अपना है। वह हर सप्ताह उस दिन दोपहर को राशन लाने जाता है। वह जितनी बार राशन लाने जाता था, उतनी बार उसने उन लड़कों को शराब पीते देखा।"

"फिर भी···! एक नौकर की बात पर आपने तीन छात्रों का भविष्य तबाह कर दिया?"

"मैंने भी पहले-पहल गोष्ठ की बातों का यकीन नहीं किया था। अन्त में एक दिन मैं खुद ही टिफिन के वक्त बाजार की तरफ गया। जाकर देखा गोष्ठ की खबर सोलह आने सही है। मैंने दूर से देखा, वे तीनों छात्र शराब की दुकान में दाखिल हुए। उसके बीस मिनट बाद उन्हें निकलते भी देखा। मैंने वहीं उन्हें रंगे हाथों

पकड़ लिया और उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया। इसके बावजूद वे नहीं सुधरे। अन्त में उनके अभिभावकों को बुला भेजा। उन्हें सारी बातें कह सुनायीं। उनकी बातचीत के लहजे से लगा, उन लोगों ने मेरी बात को रत्ती भर भी अहमियत नहीं दी। उनके बाद, जब मैंने देखा कि उन तीनों की देखा-देखी और दो लड़के भी शराब पीने वाले दल में शामिल हो गये हैं। तब मुझे बेहद अफसोस हुआ। मैंने उन्हें स्कूल से निकाल दिये जाने का हुक्म दिया।"

सेक्रेटरी ने जिरह जारी रखी, "क्या आप जानते हैं कि उन तीनों छात्रों के अभिभावक काफी इज्जतदार घराने के लोग हैं।"

"हो सकता है। लेकिन मैं जिसे जुर्म समझता हूं। किसी इज्जतदार घराने का आदमी भी अगर वह जुर्म कर बैठे, तो भी जुर्म आखिर जुर्म ही कहलायेगा। जुर्म के मामले में सबके लिए कसौटी एक बराबर है।"

अब रामरतन बाबू ने अपनी फाइल से एक तस्वीर निकालकर देवव्रत के सामने रख दी।

उन्होंने सवाल किया, "बता सकते हैं, यह किसकी तस्वीर है?"

देवव्रत ने तस्वीर पर एक नजर डालकर जवाब दिया, "यह मेरी पत्नी और मेरी बेटी की तस्वीर है।"

"आपकी पत्नी कभी पाकिस्तान के मिनिस्टर शाहबुद्दीन साहब के साथ छू-मन्तर हो गयी थी?···और आपकी यह बेटी झरना, उसी मुसलमान की नाजायज औलाद है?"

देवव्रत जरा भी विचलित नहीं हुआ।

उसने शान से सिर उठाकर जवाब दिया, "जी हां! आपने बिल्कुल सही कहा।"

रामरतन बाबू ने फैसले के लहजे में कहा, "तब तो आप 'नवविधान चरित्र गठन हायर सेकेंडरी स्कूल' से हेडमास्टर बनने के कतई काबिल नहीं, क्योंकि अपने छात्रों के चरित्र गठन के बजाय आप अपने चरित्र गठन पर ध्यान दें, तो बेहतर होगा। इस स्कूल से पहले आप जैसों का बहिष्कार करना चाहिए।"

"तो फिर आप ऐसा ही करें। कल से मैं इस स्कूल में नहीं आऊंगा। अगर किसी दिन भगवान की रुलाई थम गयी, तो फिर लौट आऊंगा, उससे पहले नहीं।"

"नहीं, आना तो आपको पड़ेगा। हमारे नये हेडमास्टर के हाथों में चार्ज सौंपना होगा।"

कमेटी की मीटिंग उस शाम बर्खास्त हो गयी।

लेकिन नया हेडमास्टर किसे चुना जाये?

यह भी निश्चित किया गया कि नये हेडमास्टर का चुनाव अगली मीटिंग में तय किया जायेगा।

"फिर क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

सुप्रभात बताने लगा, "उस दिन काफी रात गये तक गोष्ठ और मिनती देवव्रत सरकार के इन्तजार में बैठी, उसकी राह देखती रही। देवव्रत का कोई अता-पता नहीं। अगले दिन भी नहीं ! स्कूल से निकलकर कहां गुम हो गया, किसी को पता ही नहीं चला।

कोई नहीं जान सका, देवव्रत कहां चला गया। स्कूल के सीनियर टीचर गुणोन्द्र बाबू, ट्यूटोरियल-होम खोलकर जिन्होंने काफी दौलत कमायी थी, वे ही, 'नव विधान चरित्र गठन हायर सेकेंडरी स्कूल' के हेडमास्टर नियुक्त हुए, उनसे ज्यादा सुशिक्षित और शरीफ आदमी शायद चिराग लेकर ढूंढ़ने से भी नहीं मिला।

बहुत-बहुत सालों पहले महात्मा गांधी ने कहा था—मैं ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूं, जिसमें भारत का दरिद्र-से-दरिद्र आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका अपना देश है। उसे लगे, इस देश में उसकी भी एक भूमिका है। उस भारत में अस्पृश्यता'''छुआछूत का अभिशाप हरगिज नहीं होगा और न शराब का जहर होगा—यानी जहां शराब निषिद्ध होगी।

मैंने पूछा, "उसके बाद क्या हुआ ?"

सुप्रभात फिर कहानी सुनाने में जुट गया, "उसके बाद और क्या ? दुनिया में जो अस्पृश्य हैं, उस दिन से वे लोग किसी तरह जिन्दगी के दिन गुजार रहे हैं। जो लोग दारूबाज हैं, उनकी दारूबाजी का नशा और'''और बढ़ता गया। वैसे, शराब को अब कोई शराब नहीं कहता। शराब को एक फैशनेबुल नाम देकर उसकी इज्जत और बढ़ा दी गयी है। शराबबाजी को अब नाम दिया गया है—कॉकटेल पार्टी !

और वह कंसाठीपाड़ा वाला मकान ?

मिनती देवी ने अब वह मकान और बड़ा करा लिया है। वहां अब झरना सरकार का लम्बा-चौड़ा नाच-स्कूल बन चुका है—नृत्य कला केन्द्र ! कलकत्ते के नामी-गिरामी अमीर-रईसों की बेटियां उस केन्द्र में नाच सीखने आती हैं। मिनती देवी भी वहां महीने में एक-दो बार कॉकटेल पार्टी देकर जश्न मनाती हैं। उस कॉकटेल पार्टी में सभी आते हैं—मिनिस्टर, स्पीकर, एम० एल० ए०, एम० पी० वगैरह सभी यानी देश के मुखोज्ज्वलकारी तमाम लोग उस पार्टी में शरीक होकर अपने को धन्य मानते हैं।

लेकिन, आल्ता मौसी अब भी आल्ता की सिन्दूर की डिबिया लेकर हाजिर होती है।

आते ही आवाज लगाती है—"कहां हो जी, बहुरिया ? कहां गयी ?"

और बहुरिया के आते ही उसके दोनों पांवों में आल्ता रंगते हुए तसल्ली भी देती है, "तुम देख लेना, बहुरिया, तुम हो सती-लक्ष्मी ! मैं शरत लगाकर कहती हूं, एक-न-एक दिन दादा बाबू तुम्हारे पास जरूर ही जरूर वापस लौटेंगे। मेरा आल्ता-सेंधुर सजाना कभी झूठ नहीं पड़ सकता। आज तक कभी झूठ नहीं हुआ। दादा बाबू एक दिन जरूर लौटेंगे।"

"और देवव्रत सरकार ?"

"उस दिन के बाद से उसे किसी ने नहीं देखा। उसका ख्याल था, उसका देश अभी स्वाधीन ही नहीं हुआ। अंग्रेज जरूर चले गये, लेकिन फिर भी उसके देश को आजादी नहीं मिली। नेताओं ने गरीबी हटाने के नारे लगाये थे, लेकिन फिर भी गरीबी इस देश से नहीं हटी। राजनीतिज्ञ पक्षधरों ने बड़ी ऊंची-ऊंची आवाज में वादा किया कि वे कालाबाजारियों को लैम्प-पोस्ट से लटकाकर फांसी चढ़ा देंगे। लेकिन आज तक किसी भी कालाबाजारी को लैम्प-पोस्ट से लटकाकर फांसी नहीं दी गयी, इसलिए देवव्रत सरकार का भगवान अभी तक रो रहा है। देवव्रत की नजर में उसका देश आज भी पराधीन नहीं हुआ।

···हां, बहुत दिनों पहले, जब इस मकान को 'नृत्य कला केन्द्र' में बदलने की तोड़-जोड़ में मरम्मत का काम चल रहा था, उस वक्त देवव्रत सरकार के व्यक्तिगत सामान और किताबें वगैरह फेंकते समय, एक बकसिया के अन्दर से नहाया हुआ एक टुकड़ा कागज भी मिला था···

मिनती पढ़ने लगी। उस कागज में लिखा था—

'मैं देवी मइया को अर्पित हूं। मैं अपना जीवन देश के लिए बलिदान करने को प्रतिश्रुतिबद्ध हूं। देश को आजाद कराने के लिए, मैं सब-कुछ न्योछावर करने को प्रस्तुत रहूंगा। वंदेमातरम !"

यह दास्तान खत्म करने के बाद सुप्रभात ने मुझे एक कागज निकालकर दिखाया।

"यह तुम्हें किसने दिया ?" मैंने पूछा।

"गोष्ठ ने ! ये लोग इस कागज को भी रद्दी मानकर, बाकी कूड़ा सामानों के साथ फेंकने जा रहे थे। लेकिन मैंने उसे संभालकर अपने पास रख लिया। देवव्रत सरकार को किसी ने भी याद नहीं रखा। न उसकी पत्नी ने, न उसकी बेटी झरना ने ! लेकिन शाहबुद्दीन की उस नाजायज बेटी झरना का, 'पद्मश्री' उपाधि मिलने की खुशी में अभिनन्दन किया गया, क्योंकि उस अभिनंदन के बदले में, हमें उस हवेली में शानदार कॉकटेल-पार्टी की दावत मिलेगी। कीमती खाना और दारू पीने का जश्न मनाया जायेगा। उस पार्टी में जितने भी मंत्री,

वी०आई०पी० तशरीफ लायेंगे, हमें भी उनसे मिलने-जुलने, हेल-मेल, का सुनहरा मौका मिलेगा। इन मौकों से यह फायदा होगा कि बड़े-बड़े कामों के लिए हमें सरकार से परमिट, लाइसेंस और कॉन्ट्रैक्ट हासिल होगा। इसके अलावा सम्मान मिलेगा, इज्जत मिलेगी। *जिन्दगी में इससे बड़ी प्राप्ति और क्या होगी? क्या हो सकती है?*

मैंने आखिरी सवाल पूछा, "लेकिन तुम्हें इतनी भीतरी कहानी कहां से पता चली?"

सुप्रभात ने जवाब दिया, "गोष्ठ से सुनी थी यह कहानी। मैं उसी गोष्ठ का'''वही ममेरा भाई हूं।"

